९
८

श्रीः ।

बृहद्वास्तुमाला

काशीस्थमारवाड़ीसंस्कृतमहाविद्यालयप्रधानज्यौतिषशास्त्रा-
ध्यापकेन ज्यौतिषाचार्य्यज्यौतिषतीर्थ पं० श्रीरामनिहोर
द्विवेदेन संगृहीता-तेनैव हिन्दीभाषयानुवादिता च ।

काशीस्थहिन्दूविश्वविद्यालयप्रधानज्यौतिषशास्त्राध्यापकेन ज्यौ०
पं० श्रीरामयत्न शर्म्मणा संशोधिता ।

काशीस्थहिन्दूविश्वविद्यालय श्रीरणवीरसंस्कृतपाठशालाध्यापकेन
मिश्रोपनामकज्यौतिषाचार्य पं० श्रीरामानन्द शर्म्मणा
(ज्यौ० वि०) टिप्पण्यादिभिः समलङ्कृता ।

अस्य पुनर्मुद्रणाद्यधिकारः
सम्पादकाधीनः ।
प्रकाशक—
दैवज्ञ समितिः काशी ।

श्रीरामेश्वर पाठकेन तारा यन्त्रालये, मुद्रिता ।

सं० १९८७ मूल्यम् सार्द्धरूप्यकम्

ो उपपत्तियां भी दे दी गई हैं, जिनकी उपपत्तियाँ नहीं दी गई हैं वे उपपत्तियां न्हीं उपपत्तियों से सिद्ध होती हैं। ग्रन्थ को सुन्दर बनाने में बहुत कुछ त किया गया है, केवल जब पुस्तक यन्त्रस्थ हुई तो पूज्य पिताजी की ीमारी के बढ़ जाने से मुझे चञ्चल रहना पड़ा इसलिये कहीं कहीं छपाई ी भूल रह गई है जिसके लिये शुद्धि पत्र भी दे दिया गया है। तथापि जो छ त्रुटियाँ रह गई हों उसे सहृदय पाठकगण प्रथमावृत्ति के लिये क्षमा करें।

भूमिका ।

श्रीविक्रमादित्यगुरोः पदाब्जे संपातसंभावितशेखरोऽहम् ।
ज्योतिर्विदामग्रसरस्य पादौ श्रीरामयत्नाख्यगुरोर्नमामि ॥ १ ॥

गृहनिर्माण सम्बन्धि बातों को जानने के लिए सर्वसाधारण को [आ]वश्यकता है, प्राचीन सब ग्रन्थों में इसकी चर्चा और संक्षिप्त बातें मिलतीं हैं [पर]न्तु सब बातों का संग्रह एकत्र मिल जाय इस प्रकार की पुस्तक आज तक [को]ई देखने में नहीं आई इसलिये मेरे अनेक मित्रों ने अनुरोध किया कि वास्तु [स]म्बन्धि सब बातों का संग्रह प्रमाण सहित एकत्र प्रकाशित हो जाय तो [वि]द्वानों को बड़ी सुगमता होगी—इस आवश्यकता पूर्ति के लिए मैंने बहुतही [प]रिश्रम से ऋषिप्रणीत अनेक ग्रन्थों को एकत्रित कर यह अद्वितीय ग्रन्थ [तै]यार किया है। इस पुस्तक को लिखते समय जहां २ विवादग्रस्त (मतभेद) [की] बातें आ पड़ी हैं उसके लिए काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् गुरुवर ज्यौ० [पं]० रामयत्न ओझाजी प्रधान ज्यौतिषशास्त्राध्यापक हिन्दू विश्वविद्यालय तथा [ज]गद्विख्यातकीर्ति गुरुवर ज्यौ० पं० हृषीकेशोपाध्यायजी-प्रधानगणितशास्त्रा-[ध्य]ापक गवर्नमेएट संस्कृत कालेज-बनारस, दोनों महानुभावों के निर्णय द्वारा [र]खी गई है। कैसे स्थान पर गृह बनाना चाहिए अर्थात् भूमि शोधन की [स]भी बातें-मकान के किस भाग में कितने दूर पर जलाशय आदि को रहना [च]ाहिए गजपृष्ठ, कूर्मपृष्ठ आदि का लक्षण पिण्डनिर्माण ऋषियों के मत से [‘अ]कार्गल’ वृक्षायुर्वेदाध्याय, मण्डलेश, सिद्धपिण्ड और पिण्डसारणी शिलान्यास [आ]दि का मुहूर्त चरणी विचार अनेक प्रकार के चक्र, देवमन्दिर निर्माण का [वि]चार सभी बातें अनेक ग्रन्थों के पर्य्यालोचन से सप्रमाण दिए गए हैं। [औ]र सर्वसाधारण इस विषय को समझ सकें इसलिये सरल हिन्दी भाषा [में] सब श्लोकों का अनुवाद उदाहरण सहित लिख दिया गया है, तथा अन्त [में] शिलान्यास वास्तुशान्ति सम्बन्धी सब विधि स्वर्गीय महामहोपाध्याय [पं]० प्रभुदत्तजी अग्निहोत्री के पुत्र विख्यात कर्मकाण्डी काशी हिन्दू [वि]श्वविद्यालय धर्म विज्ञान विभाग के अध्यक्ष पं० श्रीविद्याधरजी की कृपा से [प्रा]प्तकर उसका भी संनिवेश कर दिया गया है। परिशिष्ट में पिण्डानयन [क]ी उपपत्तियां भी दे दी गई हैं, जिनकी उपपत्तियाँ नहीं दी गई हैं वे उपपत्तियां [इन्ह]ीं उपपत्तियों से सिद्ध होती हैं। ग्रन्थ को सुन्दर बनाने में बहुत कुछ [यत्न] किया गया है, केवल जब पुस्तक यन्त्रस्थ हुई तो पूज्य पिताजी की [बी]मारी के बढ़ जाने से मुझे चञ्चल रहना पड़ा इसलिये कहीं कहीं छपाई [क]ी भूल रह गई है जिसके लिये शुद्धि पत्र भी दे दिया गया है। तथापि जो [कु]छ त्रुटियाँ रह गई हों उसे सहृदय पाठकगण प्रथमावृत्ति के लिये क्षमा करें।

मैंने केवल जनता के उपकारार्थ इसका सम्पादन किया है आशा है यदि विद्वान् लोग एक वार भी इस ग्रन्थको आद्योपान्त पढ़ कर इसकी उपयोगिता समझेंगे तो मैं भी अपना परिश्रम सफल समझूंगा। इस पुस्तक के सम्पादन में जिन लोगों ने मुझे प्रोत्साहित किया है तथा यथा साध्य सहायता दी है उन लोगों का मैं कृतज्ञ हूँ।

विनीत—

आश्विन कृ ६ सं० १९८७ | रामनिहोर द्विवेदी
मारवाड़ी संस्कृत कालेज, काशी।

पुस्तक मिलने का पता—

श्रीरामानन्द मिश्रः
भदैनी बनारस।

श्रीरामनिहोर द्विवेदी
धर्मकूप काशी।

अथानुक्रमणिका ।

शुभम्

* श्रीविन्ध्यवासिन्यै नमः *

बृहद्वास्तुमाला ।

मङ्गलं दिशतु नो विनायको मङ्गलं दिशतु नः समुद्रजा ।
मङ्गलं दिशतु नो महेश्वरी मङ्गलं दिशतु नः सरस्वती ॥१॥
रामभक्तं हनूमन्तं सीताशोक-निवारकम् ।
लक्ष्मण-प्राणदातारं नित्यं वन्देऽञ्जनीसुतम् ॥ २ ॥
ध्यायं ध्यायं रामचन्द्रस्य पादं स्मारं स्मारं श्रीरमायाः पदाब्जम् ।
वारम्वारं श्रीबृहद्वास्तुमालां दैवज्ञानां रञ्जनाय प्रवच्मि ॥ ३ ॥

अथ गृहनिर्माणे हेतुमाह—

स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजननं धर्म्मार्थकामप्रदम् ।
जन्तूनामयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम् ॥
वापीदेवगृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते ।
गेहं पूर्वमुशन्ति तेन विबुधाः श्रीविश्वकर्म्मादयः ॥ ४ ॥

स्त्री पुत्रादिकों के भोग, सुख, और धर्म, अर्थ, काम को देने वाला तथा जन्तुओं के सुख का स्थान शीत, वात, धूपादि कष्टों को दूर करने वाला गृह ही है । केवल गृह निर्माण करने से ही वापी देवलयादि सभी का पुण्य होता है— इसी लिये श्री विश्वकर्मादि देवताओं ने गृह बनाने को पहले कहा है ॥ ४ ॥

कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृण्मये दशसंगुणम् ।
इष्टिके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्तं फलं गृहे ॥ ५ ॥

तृण का गृह बनाने से कोटि गुणा पुण्य होता है—मृण्मय (मिट्टी का) घर बनाने से उससे दश गुण पुण्य होता है । इष्टिका (ईंटा) का घर बनाने से सौगुण पुण्य होता है । और पत्थर के गृह में अनन्त पुण्य होता है ॥ ५ ॥

अथ जीर्णोद्धार फलम् ।

वापी-कूप-तडागादि-प्रासाद-भवनानि च ।
जीर्णान्युद्धरते यस्तु पुण्यमष्टगुणं लभेत ॥ ६ ॥

वापी कूप तडाग प्रासाद और गृह का जो जीर्णोद्धार करते हैं उनको अष्टगुण पुण्य मिलता है ॥ ६ ॥

परगृहवास फलम् ।

परगेहकृतास्सर्वाः श्रौतस्मार्तक्रियाः शुभाः ।
निष्फलाः स्युर्यतस्तासां भूमीशः फलमश्नुते ॥ ७ ॥

दूसरे के गृह में की गई श्रौतस्मार्तादि जितनी शुभ क्रियायें हैं वे सभी निष्फल होती हैं—क्योंकि उस का फल भूमि का स्वामी पाता है ॥ ७ ॥

द्वारशुद्धिं निरीक्ष्यादौ भशुद्धिं वृषचक्रतः ।
निष्पञ्चके स्थिरे लग्ने द्व्यङ्गे वालयमारभेत् ॥ ८ ॥
त्यक्त्वा कुजार्कयोश्चांशं पृष्ठे चाग्रे स्थितं विधुम् ।
वुधेज्यराशिगं चार्कं कुर्याद्गेहं शुभाप्तये ॥ ९ ॥

पहिले द्वार शुद्धि देखकर वृषचक्र से नक्षत्र शुद्धि देखना पञ्चक को परित्याग करके स्थिर या द्विस्वभाव लग्नमें गृहारम्भ शुभ है । मङ्गल रविका अंश आगे पीछेका चन्द्रमा और मिथुन कन्या धनु मीन के सूर्यका परित्याग करके गृहारंभ शुभ होता है ॥ ८-९ ॥

अथ ग्रामवासे शुभाशुभचक्रं नराकारमाह—

मस्तके पञ्चलाभाय मुखे त्रीणि धनक्षयः ।
कुक्षौ पञ्च धनं धान्यं षट्पादे स्त्रीदरिद्रता ॥ १० ॥
पृष्ठे चैकं पादहानिर्नाभौ चत्वारि सम्पदः
गुह्ये चैकं भयं पीडा हस्ते चैकन्तु क्रन्दनम् ॥ ११ ॥
वामे चैकं करे भेदो ग्रामचक्रं नराकृतिः ।
गणयेज्जन्मनक्षत्रं ग्रामनक्षत्रतस्सदा ॥ १२ ॥

ग्रामके नक्षत्रसे इस नराकृति ग्राम चक्रका सर्वदा विचार करना चाहिये। जैसे पांच ५ नक्षत्र मस्तक में होने से लाभ होता है, मुखमे ३ नक्षत्रसे धन क्षय होता है, कुक्षि में ५ नक्षत्र होने से धनधान्य का लाभ होता है, और छः ६ नक्षत्र पादमें होने से स्त्रियों की कमी होती है। एवं पीठमें १ नक्षत्रसे पादपीड़ा नाभिमें ४ नक्षत्रसें धन सम्पत्ति गुदामें १ नक्षत्र भयपीडा दक्षिण हाथमें १ नक्षत्र युद्ध और वाम हाथमें १ नक्षत्र भेदको करता है॥ १०-१२॥

अथग्रामवासे शुभाशुभबोधनाय शिवावलिस्तत्र—

निशीथे चैकान्ते भक्तमांसादिसंयुक्तं पात्रं भूमौ निधाय कियद्दूरं गत्वा तच्छब्दं चिन्तयेत् ॥

ईशाने मरणं प्रोक्तं चोत्तरे कुरु सर्वतः।
वासं वायव्यकोणेषु भयं किञ्चित्प्रजायते ॥ १३ ॥

पश्चिमे वासकरणादानन्दः परिकीर्तितः।
नैर्ऋत्ये हि शिवा रौति तदावासं न कारयेत् ॥ १४ ॥

दक्षिणे रौति कल्याणं वह्निकोणे भयं महत्।
पूर्वेप्युच्चाटनं ज्ञेयं कलिर्वा रिपुभिस्सह ॥ १५ ॥

अष्टदिक्षु यदा रौति तदा वासं न कारयेत्।
निश्शब्दे सर्वलाभः स्यादिति गर्गादिभाषितम् ॥१६॥

आधी रातको एकान्तमें भात और मांसादिकों को मिट्टीके पात्रमें रखकर कुछदूर जाकर शब्द (आवाज) का विचार करै! ईशानमें शब्द हो तो मरण, उत्तरमें अच्छी तरह वास, वायव्यमें कुछभय, पश्चिममें आनन्द, नैर्ऋत्यमें शिवाका शब्द होतो वास नहीं करना चाहिये, दक्षिणमें होवे तो कल्याण हो, अग्निकोणमें अत्यन्तभय, पूर्वमें हो तो उच्चाटन वा शत्रुके साथ कलह हो, यदि चारों तरफ शब्द हो तो कभी भी वास नहीं करना, और कुछ शब्द न हो तो बड़ालाभ होता है, यह गर्गादि महर्षियों का मत है॥ १३-१६ ॥

अथ वर्गज्ञानम्।

वर्गाष्टकस्य पतयो गरुड़ो विडालः
सिंहस्तथैव शुनकोरग-मूषकैणाः ॥

मेषःक्रमेण गदिताः खलु पूर्वतोऽपि,
यः पंचमः स रिपुरेव बुधैर्विवर्ज्यः ॥ १७ ॥

अवर्गादि, आठ वर्गों के स्वामी क्रमसे गरुड़, बिडाल, सिंह, श्वान, सर्प, मूषक, मृग, और मेष होते हैं। और पूर्वादि दिशाओं के भी ये स्वामी हैं। अपने वर्ग से पांचवां शत्रु होता है-उसको त्याज्य करना चाहिये ॥ १७ ॥

अथ काकिणी-विचारः ।

स्ववर्गं द्विगुणं कृत्वा परवर्गेण योजयेत् ।
अष्टभिस्तु हरेद्भागं योऽधिकः स ऋणी भवेत् ॥१८॥

अपने वर्ग को दूना करके दूसरे का वर्ग जोड़ना फिर आठ से भाग देने पर जो शेष रहै उसकी काकिणी संज्ञा होती है। दोनों की काकिणियों में जिसकी अधिक हो वह अर्थ देनेवाला होता है ॥ १८ ॥

राशिभेदाद्ग्रामवासविचारः तत्र रामः ।

गोसिंहनक्रमिथुनं निवसेन्नमध्ये
ग्रामस्य पूर्व-ककुभोऽलिझषाङ्गनाश्च ।
कर्कों धनुस्तुलभमेषघटाश्चतद्व-
द्वर्गाः स्वपंचमपरा बलिनःस्युरैन्द्याः ॥१९॥

वृष, सिंह, मकर, मिथुन, राशिवालों को ग्राम के बीच में १ और पूर्व, अग्नि, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम वायव्य, उत्तर ईशान्य में क्रमसे-वृश्चिक मीन कन्या कर्क धनु तुला मेष कुम्भ राशिवालों को निवास नहीं करना चाहिये। अकारादि वर्ग पूर्वादि दिशा विदिशाओं में क्रम से बली होते हैं। और अपने वर्ग से पांचवा वर्ग शत्रु होता है। यथा अवर्गवालों को पश्चिम दिशा में द्वार या निवास करना मना है ॥ १९ ॥

अथ ग्रामः स्वस्य शुभोऽशुभो वेति ज्ञानम्—नारायणभट्टः ।

नामर्क्षाद्द्विसुताङ्कदिग्भवगतो ग्रामः शुभोनान्यथा ।

तथाचान्यः—

स्वनामराशेर्यद्राशिर्द्विशराङ्कशदिग्मितः ।
स ग्रामः शुभदः प्रोक्तस्त्वशुभः स्यात्ततोऽन्यथा ॥ २० ॥

अपने नाम की राशि से दूसरे पांचवे नवमे दशवें ग्यारहवें राशिवाले-ग्राम में निवास करना शुभ है अन्यथा अशुभ होता है ॥ २० ॥

अथ दिग्दशाज्ञानम् ।

गजशरर्त्तुयुगाश्वमहीगुणा द्विसहिता मघवादिदिशि क्रमात् ।
गृहपतेरभिधापुरदिङ्मिता नवहृता भवनस्य दशा भवेत् ॥२१॥

वास्तुप्रदीपे ।

अथाष्टवर्गाः क्रमतोऽष्ट८वाण५
तर्का६ब्धि४सप्ते७न्दु १ गुणा३शिव२भश्च
नृग्रामदिग्वर्णमिताङ्कयोगे
सूर्याद्दशेशाः नवभिर्विशेषात् ॥ २२ ॥

सूर्येन्दुभौमास्त्वगुजीवमन्दसौम्याश्च केतुर्भृगुजः क्रमेण ।
षड्दिङ्नगाधृत्यवनीश्वरांकचन्द्राघनास्सप्त नखास्तदब्दाः २३
स्वेस्वेषु वर्षप्रमितेषु तेषां दशाफलं तत्र निवासिनां च ।
तदुत्तरादुत्तरतो दशेशफलं विकल्प्यं च दशाक्रमेण ॥२४॥

पूर्वादि दिशाओं के क्रम से अकारादि वर्ग के ८, ५, ६, ४, ७, १, ३, और २, ये अंक होते हैं यथा पूर्व में ८ अग्नि कोण में ५ दक्षिण में ६ नैऋति में ४ पश्चिम में ७ वायु में १ उत्तर में ३ और ईशान में २ गृहेश के नाम का वर्गाङ्क ग्राम और दिशा का वर्गाङ्क जोड़ कर नव ९ का भाग देने से क्रम से र. चं. मं. रा. जी. श. बु. के. और शुक्र की दशा होती है ॥ इन ग्रहों के दशावर्ष क्रम से ६, १०, ७, १८, १६, १९, १७, ७, और २० ये हैं ॥ उन उन ग्रामों में वास करनेवाले मनुष्यों को ग्रह अपने अपने वर्ष तुल्य समय तक फल देते हैं । पहले जिसकी दशा है-वही फल देता है-बाद उत्तरोत्तर क्रम से ग्रह फल देते हैं ॥ २२-२४ ॥

अथ दिग्दशा फलमुक्तं तत्रैव ।

उद्विग्नचित्तः परिपूर्णवित्तो वह्न्याभिभूतो ज्वरपीडिताङ्गः ॥
सौख्यान्वितो रोगयुतः सुखाढ्यो दुःखान्वितः सर्वसुखान्वितश्च

---

१ विभक्तादितिपाठः साधुः ।

रवि की दशा चित्त में उद्वेग, चन्द्रमा की वित्तपूर्ण मङ्गल की अग्निभय राहु की ज्वर से पीड़ा, गुरू की सुख, शनि की रोग, बुध की सुखी, केतु की दुःखी, और शुक्र की दशा सर्व सुख देती है ॥ २५ ॥

अथवास्तुराजवल्लभोक्तदिग्दशाज्ञानमाह ।

नृग्रामदिग्वर्गमिताङ्कयोगे सूर्य्याद्दशेशा नवभिर्विभक्तात् ।
आचंकुराजीशबुकेशुपूर्वा दशा ग्रहाणां कथिता मुनीन्द्रैः२६
शुभस्य शुभदा ज्ञेया दशा पापस्य चाधमा ।

जिसके नाम से गृह बनाना है उस मनुष्य का वर्ग, ग्राम वर्ग और दिशा का वर्ग इन तीनों के योग में नव का भाग देने से क्रम से एकादि शेष में, सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, राहु, वृहस्पति, शनि, बुध, केतु और शुक्र की दशा होती है ॥ शुभ ग्रह की दशा में शुभ और पाप ग्रह की दशा में अशुभ फल होता है ॥ २६ ॥

अथवर्णपरत्वेन भूमिलक्षणमुक्तं तद्यथा ।

शुक्ला मृत्स्ना च या भूमिर्ब्राह्मणी सा प्रकीर्तिता ॥२७॥
क्षत्रिया रक्तमृत्स्ना च हरिद्वैश्या उदाहृता ।
कृष्णा भूमिर्भवेच्छूद्रा चतुर्धा परिकीर्तिता ॥ २८ ॥

श्वेत मृत्तिका (मिट्टी) की भूमि ब्राह्मणी-रक्तवर्ण की क्षत्रिया, हरिद्वर्ण वैश्या और कृष्णवर्ण शूद्रा कही जाती है ॥ २७-२८ ॥

तथा चान्यः—

ब्राह्मणी भूः कुशोपेता क्षत्रिया स्याच्छराकुला ।
कुशकाशाकुला वैश्या शूद्रा सर्वतृणाकुला ॥ २९ ॥

कुश युक्त भूमि ब्राह्मणी, शर (मुञ्ज) व्याप्त क्षत्रिया, कुशकाश युक्त वैश्या और सर्व तृण युक्त भूमि को शूद्रा कहते हैं ॥ २९ ॥

अथैतासां फलानि ।

ब्राह्मणी सर्वसुखदा क्षत्रिया राज्यदा भवेत् ।
धनधान्यकरी वैश्या शूद्रा तु निन्दिता स्मृता ॥ ३० ॥

ब्राह्मणी भूमि सर्वसुख देती है। क्षत्रिया राज्य देती है, वैश्या-धनधान्य से युक्त करती है, और शूद्रा भूमि निन्दित है ॥ ३० ॥

तथा च भूमिलक्षणमुक्तं कल्पद्रुमे ।

सुगन्धा ब्राह्मणी भूमी रक्तगन्धा तु क्षत्रिया ।
मधुगन्धा भवेद्वैश्या मद्यगन्धा च शूद्रिका ॥ ३१ ॥

तथा च—

अम्ला भूमिर्भवेद्वैश्या तिक्ता शूद्रा प्रकीर्तिता ॥
मधुरा ब्राह्मणी भूमिः कषाया क्षत्रिया मता ॥ ३२ ॥

सुगन्धाभूमि ब्राह्मणी, रक्तगन्धा क्षत्रिया, मधुगन्धा वैश्या और मद्यगन्धा भूमि को शूद्रा कहते हैं ॥ ३१ ॥ तथा आम्लरसयुक्ता वैश्या, तिक्तरसयुक्ता शूद्रा, मधुरस युक्ता ब्राह्मणी और कषायरसयुक्ता भूमि क्षत्रिया कहलाती है । इसका फल ३० वें श्लोक के अनुसार जानना चाहिये ॥ ३२ ॥

तथा च वसिष्ठः—

श्वेता शस्ता द्विजेन्द्राणां रक्ता भूमिर्महीभुजाम् ।
विशां पीता च शूद्राणां कृष्णान्येषां विमिश्रिता ॥३३॥

ब्राह्मणों को श्वेत क्षत्रियों को लाल वैश्यों को पीत (पीली) शूद्रों को काली और अन्य वर्णों के लिये मिश्रित (मिली हुई) भूमि शुभदा है ॥ ३३ ॥
एवमेव नारदोऽपि—

घृतासृगन्नमद्यानां गन्धश्च क्रमशोभवेत् ॥ ३४ ॥

ब्राह्मणादि चारों वर्णों के लिये क्रम से, घृतगन्धा, रक्तगन्धा, अन्नगन्धा, और मद्यगन्धा भूमि शुभ होती है ॥ ३४ ॥

अथ कारिकायां भूमेरष्टदिक्प्लवत्वफलमुक्तम् तद्यथा—

श्रियं दाहं तथा मृत्युं धनहानिं सुतक्षयम् ।
प्रवासं धनलाभं च विद्यालाभं क्रमेण च ॥ ३५ ॥
विदध्यादचिरेणैव पूर्वादिप्लवता मही ।
मध्यप्लवा मही नेष्टा न शुभा प्लवतत्परा ॥ ३६ ॥

पूर्व दिशा में भूमि का प्लव (ढार) हो तो लक्ष्मी प्राप्ति । अग्निकोण में दाह, दक्षिण में मृत्यु, नैऋत्य में धन हानि, पश्चिम में पुत्र नाश, वायव्य में प्रवास (विदेश वास) उत्तर में धन लाभ, ईशान में विद्या प्राप्ति होती है । मध्य में गहरी भूमि शुभ नहीं होती है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अन्यैरप्येवमुक्तम्—

शम्भुकोणे प्लवा भूमिः कर्तुः श्रीसुखदायिनी ।
पूर्वप्लवा वृद्धिकरी धनदा तूत्तरप्लवा ॥ ३७ ॥
मृत्युशोकप्रदा नित्यमाग्नेयी दक्षिणप्लवा ।
गृहक्षयकरी सा च भूमिर्यानिर्ऋतिप्लवा ॥ ३८ ॥
धनहानिकरीचैव कीर्तिदा वरुणप्लवा ।
वायुप्लवा तथाभूमिर्नित्यमुद्वेगकारिणी ॥ ३९ ॥

ईशानकोण में भूमि की ढार हो तो गृहकर्ता को धन सुख देती है। एवं पूर्व में वृद्धि उत्तर में धन लाभ, अग्निकोणप्लवा मृत्यु और शोक, दक्षिण प्लवा गृह को नाश करती है। नैऋतिप्लवा धन हानि पश्चिम प्लवा कीर्ति नाश और वायु प्लवा भूमि निरन्तर उद्वेग करती है ॥ ३७-३९ ॥

मुहूर्तमार्तण्डे नारायणभट्टः ।

सौम्यादि-प्लवभूतले विरचयेद्विप्रादिकोऽग्र्योऽखिले ।
नान्येषां नियमोऽथ यत्र निखिलाः कुर्युर्गृहं हृत्स्थिरम् ॥४०॥

ब्राह्मण को उत्तरप्लवा क्षत्रिय को पूर्वप्लवा वैश्य को दक्षिणप्लवा और शूद्र को पश्चिमप्लवा भूमि शुभ है ॥ ४० ॥

अथवा—ब्राह्मण सभी दिशा के प्लव भूमि में गृह बना सक्ता है अन्य के लिये कोई नियम नहीं जिस भूमी पर चित्त प्रसन्न हो गृह बना सकता है ॥ ४४ ॥

अथवास्तुविद्यायामपिभूमेः प्लवनादिफलमुक्तम् ।

पूर्वप्लवा वृद्धिकरी उत्तरा धनदा स्मृता ।
अर्थक्षयकरी विद्यात् पश्चिमप्लवनां ततः ॥ ४१ ॥
दक्षिणप्लवना पृथ्वी नराणां मृतिदा भवेत् ।

जिस भूमि का पानी वहकर पूर्व दिशा में जावे वह भूमि वृद्धि करने वाली होती है, जिसका पानी उत्तर जावे वह धन देने वाली जिसका पश्चिम में

---

१. मृत्युशोकप्रदानित्यं सर्वथा दक्षिणप्लवा-इति प्राचीनपाठः तच्चासङ्गतः—

(अग्निकोणस्य फलाभावात्)

जावे तो वह धन नाश करने वाली होती है—जिसका दक्षिण में जावे वह मृत्युदा होती है ॥ ४१ ॥

वारुणोच्चसमायुक्ता नीचमाहेन्द्रसंयुता ॥ ४२ ॥
गोवीथिरिति सा ज्ञेया ऐन्द्रोच्चा नीचवारुणा ।
जलवीथिरिति प्रोक्ता वास्तुज्ञानविशारदैः ॥ ४३ ॥

जो भूमि पश्चिम में ऊँची और पूर्व में नीची हो उसे गोवीथी कहते हैं । जो भूमि पूर्व में ऊँची और पश्चिम में नीची हो उसे जल वीथी कहते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

सोमोच्चयमनीचा च यमवीथीति कथ्यते ।
यमोच्चसोमनीचाच गजवीथीति कथ्यते ॥ ४४ ॥

जो भूमि उत्तर में ऊँची दक्षिण नीची हो उसे यमवीथी कहते हैं । और जो भूमि दक्षिण में ऊँची और उत्तर में नीची हो उसे गजवीथी कहते हैं ॥४४॥

ईशोच्चंनिर्ऋतौनीचं भूतलं भूतवीथिकम् ॥
आग्नेयोच्चं वायुनीचं नागवीथी प्रशस्यते ॥ ४५ ॥
वायूच्चमग्निनीचं यद् वीथिं वैश्वानरीं विदुः ।

जो भूमि ईशान कोण में ऊँची और नैऋत्य में नीची हो उसे भूत वीथी कहते हैं । जो भूमि अग्नि कोण में ऊँची और वायु में नीची हो उसे नागवीथी कहते हैं । और जो वायु में ऊँची और अग्नि में नीची हो उसे वैश्वानरी वीथी कहते हैं ॥ ४५ ॥

निर्ऋत्युच्चमीशनीचं धनवीथीत्युदाहृता ॥ ४६ ॥
इन्द्राग्न्यन्तरमुच्चंस्यान्नीचं वरुणवातयोः ।
वास्तु पैतामहं विद्यान्नराणां कुरुते शुभम् ॥ ४७ ॥

और जो भूमि नैऋत्य में नीची और ईशान में ऊँची हो उसे धन वीथी कहते हैं । जो भूमि पूर्व और अग्नि के मध्य में ऊँची होकर पश्चिम और वायु कोण के मध्य में नीची हो उसे पितामह वास्तु कहते हैं, यह भूमि मनुष्यों को सुख देती है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

यम्याग्न्यन्तरमुच्चंस्यान्नीचं मारुतसोमयोः ।
सुपथंनाम तद्वास्तु प्रशस्तं सर्वकर्मणि ॥ ४८ ॥

और जो भूमि अग्नि कोण और दक्षिण के मध्य में ऊँची होकर वायु कोण और उत्तर के मध्य में नीची हो उसे सुपथ नाम वास्तु कहते हैं ऐसी भूमि सर्व कर्म करने योग्य है ॥ ४८ ॥

सोमेशानन्तरं नीचमुच्चं निर्ऋतिकालयोः ।
दीर्घायुर्नाम तद्वास्तु प्रशस्तं कुलवर्धनम् ॥ ४९ ॥
ईशानेन्द्रान्तरं नीचमुच्चं वरुणरक्षसोः ।
पुण्यकं नाम तद्वास्तु द्विजानां च शुभावहम् ॥ ५० ॥

जो भूमि उत्तर ईशानकोण के मध्य में नीच होकर नैर्ऋति और दक्षिण के मध्य में ऊँची हो उसे दीर्घायु नाम वास्तु कहते हैं। वह वहुत उत्तम और कुल का वढ़ाने वाला होता है ॥ ४९ ॥

जो भूमि ईशान कोण और पूर्व के मध्य में नीची हो तथा नैर्ऋत्य कोण और पश्चिम के मध्य में ऊँची हो उसे पुण्यक नाम वास्तु कहते हैं। यह द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य) के लिये शुभकारक होता है ॥ ५० ॥

इन्द्राग्न्योरन्तरं नीचमुच्चं वायुजलेशयोः ।
अपथं नाम तद्वास्तु वैराय कलहाय च ॥ ५१ ॥
कालाग्न्योरन्तरं नीचमुच्चं स्याद्वायुसोमयोः ।
रोगकृन्नाम तद्वास्तु नराणां रोगवृद्धिकृत् ॥ ५२ ॥

जो भूमि पूर्व और अग्नि कोण के मध्य में नीची होकर वायु कोण और पश्चिम के मध्य में ऊँची हो उसे अपथ वास्तु कहते हैं। यह वैर और कलह को करने वाला होता है ॥ ५१ ॥

जो भूमि अग्नि कोण और दक्षिण के बीच में नीची होकर वायु कोण और उत्तर के मध्य में ऊँची हो उसे रोगकर नाम वास्तु कहते हैं यह मनुष्यों को रोग करने वाला होता है ॥ ५२ ॥

निर्ऋत्यन्तकयोर्नीचमुच्चं सोमशिवान्तरम् ।
अर्गलं नाम तद्वास्तु ब्रह्महत्यादिनाशकृत् ॥ ५३ ॥

रुद्रेन्द्रान्तरमुच्चंस्यान्नीचं वरुणरक्षसोः ।
श्मशानं नाम तद्वास्तु केवलं कुलनाशनम् ॥ ५४ ॥

जो भूमि नैर्ऋत्यकोण तथा दक्षिण के मध्य में नीच होकर ईशानकोण और उत्तर के मध्य में ऊँची हो उसे अर्गल वास्तु कहते हैं। ऐसी भूमि ब्रह्महत्यादि महापापों को दूर करती है।

जो भूमि ईशानकोण और पूर्व के मध्य में ऊँची होकर पश्चिम और नैर्ऋत्य कोण में नीची हो उसका नाम श्मशान वास्तु है। यह केवल कुल का नाश करता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

नीचमग्नौभवेदुच्चं निर्ऋतीशानवायुषु ।
श्येनकं नाम तद्वास्तु नाशाय मरणाय च ॥ ५५ ॥
रुद्राग्निवरुणेषूच्चं नीचंस्यान्निर्ऋतौ तथा ।
श्वमुखं नाम तद्वास्तु दारिद्र्यं कारयेत्फलम् ॥ ५६ ॥

जो भूमि अग्नि कोण में नीची होकर निर्ऋति ईशान और वायु कोण में ऊँची हो उसे "श्येनक" नाम वास्तु कहते हैं। ऐसी भूमि नाश तथा मृत्यु को करती है ॥ ५५ ॥

जो भूमि ईशानकोण अग्निकोण और पश्चिम में ऊँची होकर नैर्ऋत्यकोण में नीची हो उसे "स्वमुखं, नामक वास्तु कहते हैं। ऐसी भूमि दरिद्रता को करती है ॥ ५६ ॥

नैर्ऋत्याग्निशिवेषूच्चं नीचं वह्नीन्द्रयोस्तथा ।
ब्रह्मघ्नं नाम तद्वास्तु नेष्टं प्राणभृतां सदा ॥ ५७ ॥
अग्नौ यदि भवेदुच्चं नीचं निर्ऋतिरुद्रयोः ।
वातनिम्नं च तद्वास्तु स्थावरं नाम शोभनम् ॥५८॥

जो भूमि नैर्ऋत्य अग्नि और ईशान कोण में ऊँची होकर पूर्व तथा वायुकोण में नीची हो उसे ब्रह्मवास्तु कहते हैं। यह मनुष्यों के लिये सदा नेष्ट है। जो भूमि अग्निकोण में ऊँची हो तथा नैर्ऋत्य ईशान और वायुकोण में नीची हो उसे स्थावर वास्तु कहते हैं। यह शुभ है ॥ ५७-५८ ॥

उच्चंनिर्ऋतिभागेस्यान्नीचं ज्वलनवातयोः ।
रुद्रनिम्नं च तद्वास्तु स्थण्डिलं नाम शोभनम् ॥५९॥

रुद्रोच्चं यदि निम्नं स्याद्वह्नौ निर्ऋतिवातयोः ।
शाण्डुलं नाम तद्वास्तु प्रापयत्यशुभं सदा ॥६०॥

जो भूमि नैर्ऋत्य कोण में ऊँची हो तथा अग्नि वायु और ईशान कोण में नीची हो उसे स्थण्डिल वास्तु कहते हैं यह शुभ है। जो भूमि ईशान कोण में ऊँची होकर अग्नि नैर्ऋत्य और वायु कोण में नीची हो उसे 'शाण्डुल' वास्तु कहते हैं। यह अशुभ है ॥ ५६-६० ॥

नैर्ऋत्याग्निशिवेषूच्चं नीचं चन्द्रमसंप्रति ।
द्विजेन्द्राणान्तु सुस्थानमवनी समुदाहृता ॥ ६१ ॥
नीचमिन्द्रे भवेदुच्चं निर्ऋत्यां पश्चिमानिले ।
सुतलं नाम तद्वास्तु राजराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ६२ ॥

जो भूमि अग्नि नैर्ऋत्य और ईशान कोण में ऊँची होकर वायु कोण में नीची हो उसे सुस्थान वास्तु कहते हैं। ऐसी भूमि ब्राह्मणों के लिये उत्तम होती है। जो भूमि पूर्व में नीची होकर निर्ऋति वायु और पश्चिम में ऊँची हो उसे सुतल वास्तु कहते हैं—यह क्षत्रियों के लिये उत्तम वास्तु होती है ६१-६२

सौम्येशपवनेषूच्चं नीचं भवति चेद्यमे ।
नाम्ना वास्तु चरं यत्स्याद्वैश्यानां तदभीष्टदम् ॥६३॥
नीचं वारुणमुच्चंचेदीशानेन्द्राग्निषुक्रमात् ।
श्वमुखं नाम तद्वास्तु शूद्राणां तदभीष्टदम् ॥६४॥

जो भूमि उत्तर ईशान और वायु कोण में ऊँची होकर दक्षिण में नीची हो उसे चर वास्तु कहते हैं—यह वैश्यों के लिये उत्तम होता है। जो भूमि पश्चिम में नीची होकर ईशान पूर्व और अग्निकोण में क्रम से ऊँची हो उसे श्वमुख वास्तु कहते हैं। यह शूद्रों के लिये उत्तम होता है ॥ ६३-६४ ॥

या तु सौम्यप्लवाचैव कुशदर्भैरलंकृता ।
आज्यगन्धा च सा भूमिर्ब्राह्मणानां प्रशस्यते ॥६५॥
पूर्वप्लवा च रक्ता च कुशदर्भैरलंकृता ।
रक्तगन्धा च या भूमिः क्षत्रियाणां प्रशस्यते ॥६६॥

जिस भूमि पर उत्तराभिमुख पानी वहै, जो कुशा से युक्त हो, जिस भूमि से घी की गन्ध निकले वह भूमि ब्राह्मणों के लिये उत्तम होती है। जिस भूमि पर पूर्वाभिमुख जल वहै, जिसकी मिट्टी लाल हो, जहाँ पर कुश उत्पन्न हों, जिससे खून का गन्ध निकले ऐसी भूमि क्षत्रियों के लिये उत्तम होती है॥६५-६६

दक्षिणप्लवनोपेता कुशदर्भैरलङ्कृता ।
अन्नगन्धाच या भूमिः सा वैश्यानां प्रशस्यते ॥ ६७॥
पश्चिमप्लवनोपेता दूर्वाभिश्च समन्विता ।
सुरागन्धाचयाभूमिः शूद्राणां समुदाहृता ॥ ६८ ॥

जिस भूमि पर पानी दक्षिण मुख जावे जहाँ कुशा पैदा हों जिससे अन्न का गन्ध निकले वह भूमि वैश्य के लिये उत्तम होती है। जहाँ का पानी वह कर पश्चिम दिशा में जावे जहाँ दूर्वा (दूब) पैदा हो जिससे शुरा (शराब) का गन्ध निकले वह भूमि शूद्रों के लिये उत्तम होती है॥ ६७-६८॥

इन्द्रोन्नतं पुत्रनाशं वह्न्युन्नतमथार्थदम् ।
अग्निनीचोऽर्थनाशः स्याद् याम्योन्नतमरोगकृत् ॥६९॥
निर्ऋत्युच्चे श्रियोलाभं पुत्रदं वरुणोन्नतम् ।
वायून्नतं द्रव्यनाशं सौम्योन्नतमथोगदम् ॥ ७० ॥
ईशानोच्चं महाक्लेशं वास्तु विद्यादितिक्रमात् ॥

जो भूमि पूर्व दिशा में ऊंची हो वह पुत्र नाश करती है। अग्निकोण में ऊंची भूमि धन देती है। अग्निकोण में नीची भूमि धन नाश करती है, दक्षिण दिशा में ऊंची भूमि आरोग्य करती है, निर्ऋतिकोण में ऊंची भूमि लक्ष्मी देती है, पश्चिम में ऊंची भूमि पुत्र देने वाली होती है, एवं वायुकोण में ऊंची द्रव्यनाश उत्तर में आरोग्य ईशान में महा क्लेश करती है। यह वास्तु शास्त्र का मत है॥ ६९-७०॥

अश्वत्थः पूर्वतोधन्यो दक्षिणस्यामुदुम्बरः ।
न्यग्रोधः पश्चिमेश्रेष्ठः प्लक्षोऽप्युत्तरतः शुभः ॥७१॥
न्यग्रोधः पूर्वतोवर्ज्यो दक्षिणेप्लक्ष एवच ।
अश्वत्थः पश्चिमेभागे उत्तरे चाप्युदुम्बरः ॥ ७२ ॥

भूमि के पूर्व दिशा में अश्वत्थ (पीपल) का वृक्ष दक्षिण में उदुम्बर (गूलर) पश्चिम में वड़ उत्तर भाग में पाकड़ का वृक्ष श्रेष्ठ होता है ॥ भूमि के पूर्व भाग में वड़, दक्षिण में पाकड़, पश्चिम में अश्वत्थ उत्तर में गूलर का वृक्ष निषिद्ध होता है ॥ ७१-७२ ॥

अश्वत्थोऽग्निभयंकुर्यात् प्लक्षः कुर्यात् प्रमादकम् ।
न्यग्रोधः शस्त्रसम्पातं कुक्षिरोगमुदुम्बरः ॥ ७३ ॥

पीपल का वृक्ष अग्निभय करता है एवं पाकड़ का प्रमाद (असावधानी) वड़ का शस्त्रसंपात और गूलर का वृक्ष कुक्षिरोग करता है ॥ ७३ ॥

काष्ठेष्टकातुषाङ्गारपाषाणास्थिसरीसृपान् ।
हलाग्रेणोद्धृतान् दृष्ट्वा तत्रविद्यादिदं फलम् ॥७४॥
काष्ठेष्वग्निभयं विद्यादिष्टकासु धनागमम् ।
अङ्गारेषु तथारोगं तुषेष्वेव धनक्षयम् ॥ ७५ ॥
पाषाणेष्वपि कल्याणं कुलनाशं तथास्थिषु ।
सरीसृपेषुसर्वेषु तादृग्भ्योभयमादिशेत् ॥ ७६ ॥

हल के अग्र भाग से पृथ्वी को खोदे खोदने पर सबसे पहले यदि काष्ठ या ईंटा अथवा तुष (भूसा) कोयला पत्थर हड्डी सरीसृप (साँप विच्छू-गोजर) इत्यादि इनमें कोई वस्तु दीख पड़े तो उसका फल यों है कि काष्ठ निकले तो अग्निभय ईंट निकले तो धनागम, कोयला से रोग तुष से धननाश पत्थर से कल्याण हड्डी से कुल का नाश सरीसृप से विच्छू आदि का भय होता है ॥ ७४-७५-७६ ॥

अनूषरा स्निग्धवती प्रशस्ता च बहूदका ।
तृणोपलान्विता या सा मान्या वास्तुविधौधरा ॥७७॥

जो भूमि ऊषर नहीं हो जहाँ की मिट्टी चिकनी हो जहाँ पर जल बहुत होता हो जो भूमि तृण पत्थर आदि से युक्त हो जिस भूमि की लोग प्रशंसा करते हों ऐसी भूमि वास करने योग्य होती है ॥ ७७ ॥

अथ वराहोक्ता प्रशस्ताभूमिः—

शस्तौषधिद्रुमलता मधुरा सुगन्धा
स्निग्धा समानसुखिराच मही नराणाम् ॥

अप्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानां
धत्ते श्रियंकिमुत शाश्वतमन्दिरेषु ॥ ७८ ॥

अच्छी औषधि वृक्षलता जिस भूमि पर पैदा हों जहाँ की मिट्टी मधुर और सुगन्धित हो तथा समतल भूमि जहां हो जिस भूमि पर जाने से थके हुए मनुष्यों की थकावट दूर हो जाय ऐसी भूमि निरन्तर धन और सुख देती है ॥ ७८ ॥

अथ वास्तुप्रदीपोक्त भूमि दोषः—

स्फुटिताच सशल्याच वल्मीकाऽऽरोहिणी तथा
दूरतः परिहर्तव्या कर्तुरायुर्धनापहा ॥ ७९ ॥

जो भूमि फटी हो जहां पर शल्य (हड्डी) हो जिस भूमि पर दीमक लगे हों तथा नीची ऊंची भूमि जो हो इन सबों को दूरही से त्याग देना चाहिये ॥ ७९ ॥

फलम्—

स्फुटिता मरणं कुर्यादूषरा धननाशिनी ।
सशल्या क्लेशदा नित्यं विषमा शत्रुवर्धिनी ॥ ८० ॥
चैत्ये भयं गृहकृतो वल्मीके स्वकुले विपत् ।
गर्तायांतु विनाशः स्यात् कूर्माकारे धनक्षयः ॥ ८१ ॥

फटी हुई भूमि मरण ऊषर भूमि धननाश शल्ययुक्ता नित्यक्लेश और विषम भूमि शत्रुवृद्धि करती है चैत्याकार भूमि गृहकर्ता को भय देती है । वल्मीकयुक्ता विपत्ति, गर्तभूमि नाश और कूर्माकार भूमि धननाश करती है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

अथ भूमेर्लक्षणानि—तत्रादौ गजपृष्ठ लक्षणम्—

दक्षिणे पश्चिमेचैव नैर्ऋत्ये वायुकोणके ।
एभिरुच्चा यदा भूमिर्गजपृष्ठाऽभिधीयते ॥ ८२ ॥

जो भूमि दक्षिण पश्चिम नैर्ऋत्य और वायु कोण में ऊंची हो उसे गज पृष्ठ कहते हैं ॥ ८२ ॥

अथ फलम्—

गजपृष्ठे भवेद्वासः स लक्ष्मीधनपूरितः ।
आयुर्वृद्धिकरोनित्यं जायते नात्र संशयः ॥ ८३ ॥

गजपृष्ठ भूमि में वास करने से लक्ष्मी का निवास धन की विशेषता और आयु की वृद्धि निरन्तर होती है ॥ ८२ ॥

कूर्मपृष्ठ लक्षणम्—

मध्येऽत्युच्चं भवेद्यत्रनीचं चैव चतुर्दिशम् ।
कूर्मपृष्ठा भवेद्भूमिस्तत्रवासो विधीयते ॥ ८४ ॥

जो भूमि मध्यभाग में विशेष ऊंची हो और चारों दिशाओं में नीची हो उसको कूर्म पृष्ठ कहते हैं । ऐसी भूमि वास करने योग्य होती है ॥ ८४ ॥

फलम्—

कूर्मपृष्ठे भवेद्वासो नित्योत्साहसुखप्रदः ।
धनधान्यं भवेत्तस्य निश्चितं विपुलं धनम् ॥ ८५ ॥

कूर्म पृष्ठ भूमि पर वास करने से नित्य उत्साह की वृद्धि सुख और धन-धान्य का लाभ विशेष होता है ॥ ८५ ॥

दैत्यपृष्ठ लक्षणम्—

पूर्वाग्निशम्भुकोणेषु उन्नतिश्च यदा भवेत् ।
पश्चिमे च यदा नीचं दैत्यपृष्ठोभिधीयते ॥ ८६ ॥

जो भूमि ईशान पूर्व और अग्निकोण में ऊँची हो और पश्चिम में नीची हो उसे दैत्यपृष्ठ कहते हैं ॥ ८६ ॥

फलम्—

दैत्यपृष्ठेभवेद्वासो लक्ष्मीर्नायाति मन्दिरे ।
धनपुत्रपशूनांच हानिरेव न संशयः ॥ ८७ ॥

दैत्यपृष्ठ भूमि पर वास करने से लक्ष्मी नहीं आती और धन पुत्र पशु इनकी हानि बराबर होती रहती है ॥ ८७ ॥

अथ नागपृष्ठलक्षणम्—

पूर्वपश्चिमयोर्दीर्घो दक्षिणोत्तर उच्चकः ।
नागपृष्ठंविजानीयात् कर्तुरुच्चाटनं भवेत् ॥ ८८ ॥

जो भूमि पूर्व पश्चिम लम्बी हो दक्षिण और उत्तर ऊँची हो उसका नाम नागपृष्ठ है ऐसी भूमि उच्चाटन करने वाली होती है ॥ ८८ ॥

फलम्—

नागपृष्ठे यदा वासो मृत्युरेव न संशयः ।
पत्नीहानिः पुत्रहानिः शत्रुवृद्धिः पदेपदे ॥ ८९ ॥

नागपृष्ठ भूमि पर वास करने से अवश्य ही मृत्यु होती है । स्त्रीहानि पुत्रहानि और पद पद में शत्रुवृद्धि होती है ॥ ८९ ॥

अथान्यद्भूमेर्लक्षणम्—

आयते सिद्धयस्सर्वाश्चतुरस्रे धनागमः ।
वृत्तेतु बुद्धिवृद्धिः स्याद्भद्रं भद्रासने भवेत् ॥ ९० ॥
चक्रेदारिद्र्यमित्याहुर्विषमे शोकलक्षणम् ।
राजभीतिस्त्रिकोणेस्याच्छकटे तु धनक्षयः ॥ ९१ ॥
दण्डे पशुक्षयं प्राहुः शूर्पे वासे गवांक्षयः ।
गोव्याघ्रबन्धने पीडा धनुः क्षेत्रे भयं महत् ॥९२॥

आयत[1] क्षेत्राकार भूमि पर वास करने से सर्वसिद्धि चतुरस्र[2] भूमि पर धनागम, वृत्ताकार भूमि पर बुद्धि की वृद्धि, भद्रासन पर कल्याण, चक्राकार पृथ्वी पर दारिद्र्य, विषम भूमि पर शोक, त्रिकोणाकार पर राजभय, शकटाकार भूमि पर धननाश, दण्डाकार भूमि पर पशुओं का नाश, शूर्पाकार भूमि पर गोधन का नाश, गोव्याघ्र बन्धन भूमि पर पीड़ा और धनुषाकार भूमि पर वास करने से विशेष भय होता है ॥ ९०-९२ ॥

---

१ जिस क्षेत्र के आसने सामने के भुज तुल्य हों, चारों कोण समकोण हों, उसको आयत कहते हैं ।

२ जिसमें लम्बाई और चौड़ाई बराबर हो उसे चतुरस्र कहते हैं ।

अथवासयोग्यभूमिः—

मनसश्चक्षुषोर्यत्र सन्तोषो जायते भुवि ।
तस्यां कार्यं गृहं सर्वैरिति गर्गादिसम्मतम् ॥६३॥

जिस भूमि पर जाने से मन और नेत्र संतुष्ट हो जाय उसपर वास करना चाहिये यही गर्गादि सभी की सम्मति है ॥ ६३ ॥

अथ भूमेः सुप्त्यादि ज्ञानमाह—

कर्ता ग्रामदिशश्चैव स्वरयुक्तं तु कारयेत् ।
वह्निभिस्तु हरेद्भागं शेषाङ्कं फलमादिशेत ॥ ६४ ॥

गृहकर्ता ग्राम की दिशा और स्वर इन सबों को योगकर तीन से भाग देना शेषाङ्क पर से फल कहना ॥ ६४ ॥

एके जागर्ति भूमिश्च द्वितीये समतागतिः ।
तृतीये राक्षसी चैव मृत्युरेतन्न संशयः ॥ ९५ ॥

एक शेष में भूमि जागती है दो में समान गति और तीन शेष में राक्षसी भूमि होती है इसमें वास करने से मृत्यु होती है । इसमें संशय नहीं ॥ ६५ ॥

तथान्यः—

प्रद्योतनात्पञ्चनगाङ्कसूर्यनवेन्दुषड्विंशमितेषु मेषु ।
शेते मही नैव गृहं विधेयं तडागवापीखननं न शस्तम्॥९६॥

सूर्य के नक्षत्र से ५, ७, ९, १२, १९ और २६ नक्षत्र में पृथ्वी शयन करती है सो इसमें तड़ाग (तालाव) वापी का खनना शुभ नहीं है ॥ ६६ ॥

अथ जीवितादि भूमि ज्ञानं तत्फलं चाह—

[1]व्यामविस्तारयोरैक्यं ग्रामाक्षरसमन्वितम् ।
चतुर्गुणं नामयुक्तं शिवनेत्रेण भाजितम् ॥ ९७ ॥
एकेनभूमजीवः स्याद्द्वाभ्यां च समताभवेत् ।
शून्यशेषेतु शून्यंस्यादित्युक्तं रुद्रयामले ॥ ६८ ॥

दीर्घ विस्तार का योग कर उसमें ग्रामाक्षर मिलाना और उसको ४ से गुणा कर नामका अक्षर जोड़ देना फिर तीन का भाग देना एक शेषमें जीवितभूमि दो में समता शून्य शेषमें शून्यही जानना यह रुद्रयामल में लिखा है ॥ ६८ ॥

१ अत्र मूलं चिन्त्यम् ।

अथप्रश्नाज्जीवितादिभूमिज्ञानमाह—

भूम्यक्षरं चतुर्गुण्यं तिथिवारं च मिश्रितम् ।
त्रिभिर्भागः प्रदातव्यः शेषेण फलमादिशेत् ॥ ९९ ॥
एकेनजीविताभूमिः द्विशेषे भूःसमामता ।
त्रिशेषे मृतभूमिः स्यादित्युक्तं चादयामले ॥ १०० ॥

प्रश्नाक्षर को चार से गुणाकर तिथिवार को जोड़ देना तीन का भाग देना १ शेषमें जीवितभूमि दो में समता तीन में मृतभूमि जानना ॥ ९९ ॥ १०० ॥

तथा च—

यत्रवृक्षाः प्ररोहन्ति सस्यंहर्षात्प्रवर्द्धते ।
साभूमिर्जीविता वाच्या मृताचातोऽन्यथाभवेत्॥१०१॥

जिस भूमिपर वृक्ष होवें सस्य (घास) हर्ष पूर्वक बढ़ै उस भूमिको जीवित कहते हैं । इससे अन्यथा मृतभूमि जानना चाहिये ॥ १०१ ॥

अथात्र भूमेः खननाधिकारः—

स्वामिहस्तप्रमाणेन ज्येष्ठपत्नीकरेणवा ।
हस्तमात्रं खनेद्भूमिं नृणां प्रोक्तं पुरातनैः ॥१०२॥

अथवा—

जलान्तं प्रस्तरान्तं वा पुरुषान्तमथापिवा ।
क्षेत्रं संशोध्य चोद्धृत्य शल्यं सदनमारभेत् ॥ १०३ ॥

स्वामी के हाथसे या ज्येष्ठ स्त्री के हाथसे एक हाथ पर्यन्त भूमिको खोद कर परीक्षा करना, अथवा जबतक जल न मिले तबतक या पत्थर मिलने तक अथवा एक पुरुष पर्यन्त भूमिको खोद कर उसका संशोधन कर शल्य को निकाल कर गृहारम्भ करना चाहिये ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

अथ भूमिसंशोधनार्थं खातं कुत्रकर्तव्यमित्यत्र रामदैवज्ञः ।

देवालये गेहविधौ जलाशये राहोर्मुखंशम्भुदिशो विलोमतः ।
मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे खातमुखात् पृष्ठविदिक् शुभाभवेत्

देवालय बनाने में मीन से ३ राशिके सूर्य होंतो ईशान कोण में मिथुन से ३ राशिमें वायव्य में, कन्या से ३ राशिमें नैर्ऋत्य में और धनु से ३ राशिमें

अग्निकोण में राहुका मुख रहता है ॥ गृह बनाने में सिंह सें ३ राशिमें ईशान वृश्चिक सें ३ राशिमें वायव्य, कुभसें तीन ३ राशिमें नैर्ऋत्य और वृषसें ३ राशिमें अग्निकोण में रहता है ॥ एवं जलाशय में मकर सें ३ राशिमें ईशान मेष सें ३ राशिमें वायव्य, कर्क सें ३ राशिमें नैर्ऋत्य, और तुला सें ३ राशिमें अग्निकोण में राहुका मुख रहता है । मुखसे पिछले कोणमें खात शुभ होता है ॥ १०४ ॥

तथैव गर्गः ।

वृषार्कादित्रिकं वेद्यां सिंहादि गणयेद्गृहे ।
देवालये च मीनादि तडागे मकरादिकम् ॥१०५॥

वेदीमें वृषार्क सें तीन राशि, गृहमें सिंहार्कसें ३ राशि, देवालयमें मीनार्कसें ३ राशिमें, और तड़ागमें मृगार्कसें तीन २ राशियों में राहुका मुख होता है, खात में इन्ही वचनों के लेकर अन्य भी वाक्य यों हैं ॥ १०५ ॥

यथा—सिंहेकन्यातुलायांभुजगपतिमुखं शंभुकोणेऽग्निखातं ।
वायव्यां स्यात्तदास्यं धनुरलि-मकरे चेशखातं वदन्ति ॥
कुंभेमीने च मेषे निर्ऋतिदिशिमुखं खातवायव्यकोणे ।
चाग्नेःकोणेसुखं वै वृषमिथुनगते कर्कटेयातु[1]खातम् ॥

तथाचान्यः—सिंहत्रयेऽर्कें चाग्नेय्यामीशाने वृश्चिकत्रयम् ।
कुभत्रयेतु वायव्यां नैर्ऋत्यां वृषभत्रये ॥

अथभूमेः संशोधनप्रकारः—

खातं भूमिपरीक्षणे करमितं तत्पूरयेत्तन्मृदा,
हीने हीनफलं समे समफलं लाभो रजोवर्द्धने ।
तत्कृत्वा जलपूर्णमाऽऽ शतपदं गत्वापरीक्ष्यंपुनः,
पादोनाऽर्द्धविहीनकेऽथनिभृते मध्याधमेष्टाम्बुभिः १०६

एवमेव विश्वकर्म्मप्रकाशेऽपि—

निखनेद्धस्तमात्रेणपुनस्तेनैव पूरयेत् ।
पांशुनाधिकमध्योनश्रेष्ठमध्याधमाः क्रमात् ॥ १०७ ॥

१ रक्षखातमितितु प्राचीनः पाठः तत्र रक्षःखातमिति पाठे छन्दोभङ्गः रक्षश्शब्दस्यसा-न्तत्वात् अतः यातुखातम् इति पाठः सम्यग्भाति ।

भूमिपरीक्षाके समय उपरोक्त हाथों से एक एक हाथ लम्बा चौड़ा और गहरा खोदकर उसगर्त्तको जलसें भरदेना बाद उसके १०० पग (डेग) चलकर उस भूमिके पास लौट आना फिर परीक्षा करना, चौथाई जल सूख जावे तो मध्यम, आधेसे भी कम रहै तो अधम, भरा हुआ रहै तो श्रेष्ठ कहना, अथवा उसी मिट्टी को उस गर्त्तमें भर देना भरने पर यदि मिट्टी बच जावे तो श्रेष्ठ बराबर होतो मध्यम घट जावे तो निकृष्ट समझना चाहिये ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

अथान्यः प्रकारः 'वास्तुरत्ने'

कर्तुश्च हस्तप्रमितं खनित्वा खातंपयोभिः परिपूरितं चेत् ।
वसेत्सुतार्थी परिपूरितंस्याच्छुष्केभवेत्तत्क्षणमेव नाशः १०८॥
स्थिरेजलेवैस्थिरतागृहस्य स्याद्दक्षिणावर्त्तजलेनसौख्यम् ।
प्रियंजलंशोषयतीह खातोमृत्युर्हिवामेन जलेनकर्तुः ॥१०९॥

अथवा हस्तमित (हाथ भर) खोदी गई भूमि को जल से पूरा करना यदि जल भरा रहै तो शुभ है । उसी समय सूख जाय तो बहुत ही अनिष्ट है। जल भरते समय स्थिर रहै तो गृह की स्थिरता दक्षिणावर्त्त घूमे तो सौख्य और वामावर्त्त घूमे तो वह भूमि गृहकर्ता की मृत्यु दायक होती है ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

अथान्य :—

अथवा सर्वधान्यानि वापयेच्च समन्ततः ।
यत्र नैव प्ररोहन्ति तां प्रयत्नेन वर्जयेत् ॥ ११० ॥

अथवा जिस भूमि पर वास करना चाहै उसपर सभी अन्नों को बोवै जिस जगह अन्न नहीं जामें उस भूमि को यत्न पूर्वक त्याज्य करना चाहिये ॥ ११० ॥

तथा।चनारायणभट्ट :—

श्वभ्रंहस्तमितं खनेदिह जलं पूर्णं निशास्ये न्यसेत् ।
प्रातर्दृष्टजलं स्थलंसदजलं मध्यं त्वसत्स्फाटितम् १११

सूर्यास्त समय में १ हाथ लम्बा चौड़ा और गहरा खात (गढ़ा) खोदकर उसको जल से भर देना चाहिये यदि प्रातःकाल उसमें जल रह जाय तो शुभ, नहीं रहे तो मध्यम, यदि वह फट जाय तो अशुभ समझना चाहिये ॥ १११ ॥

अथवा खातमध्ये पाषाणादिप्राप्तिफलम्—

खन्यमाने यदा भूमौ पाषाणं प्राप्यते तदा ।
धनायुश्चिरता वै स्यादिष्टकासु धनागमः ॥ ११२ ॥
कपालाङ्गारकेशादौ व्याधिना पीडितो भवेत् ॥

अथवा भूमि खोदते समय यदि वहाँ से पत्थर मिल जाय तो धन और आयु की वृद्धि होती है—यदि ईंट मिले तो केवल धन लाभ होवे कपाल हड्डी कोयला केश वगैरह मिलें तो केवल रोगादि से पीड़ित रखता है ॥ ११२ ॥

खाते यदाश्मा लभते हिरण्यं तथेष्टकायां च समृद्धिरत्र ।
द्रव्यंचरम्याणि सुखानिधत्ते ताम्रादिधातुर्यदि तत्र वृद्धिः ११३

अथवा यदि खात के समय पत्थर मिले तो सुवर्ण लाभ होता है, ईंट मिले तो समृद्धि होती है, द्रव्य मिले तो उत्तम सुख मिलता है-और ताम्रादि धातु मिले तो वृद्धि होती है ॥ ११३ ॥

पिपीलिकाषोडशपन्ननिद्रा भवन्तिचेत्तत्रवसेन्न कर्ता ।
तुषास्थिचीराणि तथैवभस्मान्यण्डानि सर्पा मरणप्रदाः स्युः ।
वराटिका दुःखकलिप्रदात्री कार्पास एवातिददाति दुःखम् ॥
काष्ठं प्रदग्धं त्वतिरोगभीतिर्भवेत्कलिः खर्परदर्शनेन ११५
लोहे न कर्तुर्मरणं निगद्यं विचार्य वास्तु प्रदिशन्तिधीराः ॥

भूमि खोदने के समय पिपीलिकादि (दीमक अजगर वगैरह) देख पड़ें तो उस भूमि पर वास नहीं करना एवं तुष (भूसा) भस्म अण्डा सर्प आदि देख पड़ें तो मरणप्रद होता है ॥ वराटिका (कौडी) दुःख और कलह को देती है। कार्पास विशेष दुःख देता है, जला हुआ काष्ठ अत्यन्त रोग करता है। खप्पर से कलह और लोह से गृहकर्ता का मरण होता है। इसलिये इन बातों को विचार कर बुद्धिमान गृह कार्यको प्रारम्भ करें ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

वास्तुराजवल्लभे—

परीक्षितायां भुवि विघ्नराजं समर्चयेच्चण्डिकया समेतम् ।
क्षेत्राधिपं चाष्टदिगीशदेवान् पुष्पैश्चधूपैर्बलिभिः सुखाय ॥

उपरोक्त प्रकार से भूमि की परीक्षा करके गणेश और चण्डिका का पूजन करके क्षेत्रपाल तथा अष्टदिक्पालादि देवताओं का पुष्प धूप और वलि करके भली भांति पूजन करना चाहिये ॥ ११६ ॥

अथ पिण्डाद्बहिरन्तर्वाभित्तिः कर्त्तव्यमित्याह—

पाषाणे सर्वतो वाह्यमिष्टकायां तदर्द्धकम् ॥ ११७ ॥
मृत्तिकायां पिण्डमात्रमित्युक्तं रुद्रयामले ।

तथाच कारिकायाम्—

पिण्डाद्बहिर्भित्तिका ॥ ११८ ॥

यदि पत्थर की दीवार हो तो पिण्ड से वाहर ईंट का हो तो आधा दीवार भीतर और आधा वाहर—मिट्टी का हो तो सब दीवार पिण्ड से भीतर रखना चाहिये तथा कारिका के मत से पत्थर की दीवार ली गई है ॥११७॥११८॥

तथा च नारायणभट्टः—

ज्ञात्वैवं निखनेद् गृहाधिकभुवं नत्वा जलान्तस्तरो
र्यावद्वापुरुषस्ततः कपिशिरस्तुल्याश्मभिः पूरयेत् ॥११९॥

इस तरह पूर्वोक्त प्रकार से भूमिका शुभाशुभ जानकर पृथ्वी को नमस्कार करके पिण्ड से वाहर जलपर्यन्त या समीप के वृक्ष तुल्य अथवा एक पुरुष गहरा पृथ्वी को खोद कर उसको छोटे २ पत्थर के टुकड़े से भर देना ॥ ११९ ॥

अथ गृहनिर्माणार्थमिष्टकानामानि—

विजया मङ्गला चैव निर्मला सुखदेति च ॥
चतुर्द्धाचेष्टकाः प्रोक्ता गृहेच्च वरुणालये ॥
तिथ्यङ्गुलानि विजया मङ्गला सप्तचन्द्रकैः ।
पक्षेन्दुभिर्निर्मलास्यात्सुखदारामपक्षभिः ॥ १२० ॥
प्रमाणमिष्टकायाश्च गर्गाद्यैर्मुनिभिः स्मृतम्—

विजया मङ्गला निर्मला, सुखदा, ये चार प्रकार का ईष्टका प्रमाण, गृह और जलाशयके लिये कहा गया है । पन्द्रह १५ अङ्गुल की इष्टका को विजया, १७ सत्तरह अङ्गुलकी मङ्गला, वारह १२ अंगुल को निर्मला, और २३ अङ्गलको सुखदा कहते हैं । ये गर्गादि मुनियों के बचन है ।

अथेष्टकाचक्रम् ।

पञ्चत्रीणि त्रिकं पञ्च सप्त पञ्चावनीयभात् ।
सौख्यं मृत्युं क्रमेणैव इष्टकारम्भकर्मसु ॥ १२१ ॥

मङ्गलके नक्षत्रसे ५ नक्षत्रमें सौख्य, उसके बाद ३ नक्षत्रमें मृत्यु, बाद ३ में सौख्य, फिर ५ में मृत्यु, बाद ७ में सौख्य इसके बाद ५ में मृत्यु जानना चाहिये । अर्थात् इष्टकारंभ कर्ममें शुभ और अशुभक्रम से होता है ॥ २१ ॥

अथेष्टकोपरिवह्निदीपनचक्रम् ।

सप्तपञ्चमुनिवेदपञ्चभिः शोकलाभरुजभीतिभिसुखम् ।
भौमभाच्च गणयेत्सुधीःसदा इष्टकोपरि सुवह्निदीपनम्॥१२२

मंगल के नक्षत्र से ७ नक्षत्र में यदि अग्नि दीपन हो तो शोक बाद इसके ५ में लाभ, बाद ७ में रोगभय, फिर ४ में भय, बाद ५ नक्षत्र में सुख होता है ॥ २२ ॥

अथशिलान्यासप्रदशनमाह ?

दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलांन्यसेत् प्रथमम्
शेषाः प्रदक्षिणेन स्तंभाश्चैव प्रतिस्थाप्याः ॥१२३॥

पहले पूजन करके दक्षिण पूर्व के कोण अर्थात् अग्निकोण में प्रथम शिला न्यास करके शेष प्रदक्षिण क्रम से स्थापन करना चाहिये ।

तथा च शार्ङ्गधरः —

प्रासादेषु च हर्म्येषु गृहेष्वन्येषु सर्वदा ।
आग्नेय्यां प्रथमं स्तम्भं स्थापयेत्तद्विधानतः ॥ १२४ ॥

प्रासाद हर्म्य तथा अन्य गृह में भी सर्वदा अग्नि कोण में ही विधान पूर्वक स्तम्भस्थापन करना चाहिये ।

एवमेव ब्रह्मशम्भुः —

सूत्रभित्तिशिलान्यासं स्तम्भस्यारोपणं तथा ।
पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये कुर्यादित्याह कश्यपः ॥ १२५ ॥

सूत्र भित्तिः शिलान्यास तथा प्रथम स्तम्भ स्थापन पूर्व दक्षिण के मध्य अर्थात्—अग्नि कोण में ही स्थापन करना चाहिये । यह कश्यप का वचन है ।

"मात्स्ये" स्तम्भोच्छ्राये शिलान्यासे सूत्रयोजनकीलके खनने वास्तुसंस्कारे प्रारम्भो वह्निगोचरः। आग्नेय्याम्प्रारम्भ इत्यर्थः।

अथान्यः—

छत्रस्रगम्बरयुतः कृतधूपविलेपनः समुत्थाप्यः।
स्तम्भस्तथैव कार्यो द्वारोच्छ्रायः प्रयत्नेन ॥ १२६ ॥

स्तम्भ छत्र माला और वस्त्र के युक्त करके धूप देकर उठाना चाहिये। जैसे स्तम्भ को धूपादि देकर उठाया वैसेही द्वार को भी करना चाहिये॥

अथगृहनिर्माणे निषिद्धग्राह्यकाष्ठानि

तत्रापि विशेषः व्यासः—

अन्यवेश्मस्थितं दारु नैवान्यस्मिन् प्रयोजयेत्।
न तत्र निवसेत्कर्ता वसन्नपि न जीवति ॥ १२७ ॥

दूसरे के गृहका लगा हुआ काष्ठ दूसरे के घरमें नहीं लगाना-यदि लगाया जाय तो गृह कर्ता उसमें वास न करै। अन्यथा गृहकर्ता का मरण होता है॥ १२७॥

समराङ्गणः—

इष्टकालोष्ठपाषाणमृत्तिका जीर्णमायसम्।
तृणं पत्रं बुधैः प्रोक्तं दारु नूतं गृहाय वै ॥ १२८ ॥

ईंट मिट्टी पत्थर इत्यादि पुराना नहीं लेना चाहिये। नूतन गृह के लिये नूतन ही वस्तु का प्रयोग श्रेयस्कर होता है।

यथा शार्ङ्गधरः--

नूतने नूतनं काष्ठं जीर्णे जीर्णं प्रशस्यते।
जीर्णे च नूतनं श्रेष्ठं नो जीर्णं नूतने शुभम् ॥ १२८ ॥

अथ ग्राह्यकाष्ठानि वास्तुशास्त्रे--

श्रीपर्णी रोहिणी शाकः सर्जश्च सरलाः शुभाः।
पतङ्गलोध्रशालाख्यास्तालार्जुनकशिंशपाः ॥१२९॥
चन्दनाशोकबदरी मधूकाश्च कदम्बकाः।
प्रशस्ताश्चशमी निम्बोबिल्ववर्ज्यं गृहान्तिके ॥ १३०॥

गृहे दारुगुणैर्युक्ते गृहकर्माणि युज्यते ।
गृहे काष्ठं समं श्रेष्ठमलिन्दे विषमं शुभम् ॥ १३१ ॥

श्रीपर्णी (कायफल) रोहिणी (कुटकी) शाक (शागोन) सर्ज ये सरल (सीधे) हों तथा पतङ्ग लोध्र शाल (शखुआ) ताल अर्जुन शिंशप (शीशों) चन्दन (प्रसिद्ध) अशोक (प्रसिद्ध) बदरी (बैर) मधूक (महुआ) और कदम्ब इन वृक्षों का काष्ठ गृह में शुभ होता है । तथा शमी निम्ब विल्ववृक्ष गृहसमीप में त्याज्य हैं । गुणयुक्त काष्ठ गृह कर्म योग्य होता है । गृह में सम और अलिन्द में विषम काष्ठ शुभ होता है ॥ १२९-१३१ ॥

त्याज्यकाष्ठानाह नारदः—

प्लक्षोदुम्बरचूताख्या निम्बस्नुहिविभीतकाः ।
दग्धाः कण्टकिनोवृक्षा वटाश्वत्थकपित्थकाः ॥१३२॥
अगस्तशिग्रुतालाख्यास्तिन्तिणीकाश्चनिन्दिताः ।
अन्येच गृहनिर्माणे योजनीयाः समाः द्रुमाः॥१३३॥

पाकर-उदुम्बर, आम्र, नीम, स्नुहि (सेंहुड़, थूहर) विभीतक (बहेड़ा) दग्ध (जलाहुआ) कण्टकीवृक्ष वट अश्वत्थ (पीपल) कपित्थ (कैंथ) अगस्ति (अगस्त) शिग्रु-(सैजन) ताल-इमली ये काष्ठ गृहनिर्माण में सदा निन्द्य हैं । इनसे अतिरिक्त और सम संख्यककाष्ठ गृह में लगाना उत्तम होता है ॥ १३२-१३३ ॥

तथान्यः—वराहः—

पितृवनमार्गसुरालयवल्मीकोद्यानतापसाश्रमजाः ।
चैत्यसरित्संगमसंभवाश्च घटतोयसिक्ताश्च ॥१३४॥
कुब्जानुजातवल्ली निपीडिता वज्रमारुतोपहताः ।
श्वपतिहस्तिनिपीडित शुष्काग्निप्लुष्टमधुनिलयाः१३५
तरवोवर्जयितव्याः शुभदाःस्युः स्निग्धपत्रकुसुमफलाः
सुरदारुचन्दनसमामधूक तरवः शुभाद्विजातीनाम् १३६
क्षत्रस्यारिष्टास्त्वश्वत्थखदिरविल्वाविवृद्धिकराः ।
वैश्यानां जीवकखदिरासिन्धुकस्यन्दनाश्च शुभफलदाः

तिन्दुककेसरसर्जार्जुनोत्थशालाश्च शूद्राणाम् ।
सर्वेषां वा शस्ताः सर्वे वृक्षाश्च निन्दिताये न ॥१३८॥

पितृवन मार्ग (रास्ता) देवालय वल्मीकयुक्त उद्यान (वगीचा) में के वृक्ष तापसाश्रम का वृक्ष चैत्य नदीसंगम का वृक्ष घडासे सींच कर बढ़ायाहुआवृक्ष वनकेवल्ली वज्रसेपीडित वायु से हत नीच जाति और हाथियों से पीडित शुष्क (स्वयं सूखा हुआ) अग्निदग्ध तथा जिस वृक्ष में मधुमक्खिओं का गृह हो उन वृक्षों को त्याग कर, जिसके पत्र फूल फल सुन्दर हों ऐसे वृक्ष गृहकार्य में लगाना चाहिये " ब्राह्मण के लिये देवदारु, चन्दन, मधूक, समसंख्य लगाना श्रेष्ठ है । क्षत्रिय के लिये अश्वत्थ, खदिर, विल्ववृक्ष शुभ होते हैं । वैश्य के लिये जीवक (विजयसार औषधि) खदिर सिन्धूक (स्योडीवृक्ष) स्यन्दन (वञ्जुलवृक्ष) शुभ हैं । शूद्रों के लिये तिन्दुक नागकेसर, सर्ज और अर्जन वृक्ष गृह में लगाना शुभ होता है । अथवा उपर्युक्त शुभ वृक्ष सभी वर्णों के लिये शुभ और अशुभ वृक्ष सभी वर्णों के लिये अशुभ होता है ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

अथ गृहसंलग्नार्थद्रुमच्छेदनमुहूर्तमाह—

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां रेवतीरोहिणीयुते ।
यदा तदा गुरौ लग्ने गृहार्थं तु हरेद्द्रुमान् ॥१३९॥

शुक्रे लग्ने गुरौ केन्द्रेष्वगेराशौ गृहोपरि ।
तृणादिभिः समाच्छाद्यो नचैवाग्निभयं भवेत् ॥१४०॥

कृष्णपक्ष चतुर्दशी तिथि, रेवती रोहिणी नक्षत्र, इन कालों में जब कभी गुरुलग्नमें हों तभी गृह कार्य के निमित्त वृक्ष छेदन शुभ होता है । अथवा शुक्रलग्न में वृहस्पति केन्द्र में होकर स्थिरराशि में पड़ा हो उस समय में हरणकियाहुआ तृणादिकों से जो गृहाच्छादन किया जाय तो कभी भी अग्निभय नहीं होता है ॥ १३९ ॥ १४० ॥

अथ वृक्षच्छेदने प्रार्थना—

यानीह भूतानि वसन्ति तानि
वलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम् ।
अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु
क्षमन्तु ते चाद्य नमोऽस्तु तेभ्यः ॥ १४१ ॥

इसवृक्ष के ऊपर जो जीववसते हों वे विधिवत् दिया हुआ इस वलि को लेकर अन्यत्र जा वसें, और क्षमा करें उनके लिये नमस्कार है । इस मंत्र को पढ़कर वृक्षच्छेदन करना शुभ है ॥ १४१ ॥

अथस्तंभशिलान्याससमये खातनिक्षेपवस्तूनि ।

मृदिष्टकास्वर्णरत्नधान्यशैवालसंयुतम् ।
ताम्रपात्रस्थितं सर्वं खातमध्ये नियोजयेत् ॥ १४२ ॥

तामेके पात्रमें मिट्टी सुवर्ण ईंट पञ्चरत्न सप्तधान्य शैवाल (सेवार) रखकर खातमें रख देना चाहिये यदि मिट्टी की दीवार बनाना होतो मिट्टी, और ईंट के दीवार में ईंट रखना चाहिये ॥ १४२ ॥

अथवास्तुकृत्यम् ।

ध्रुवं दृष्ट्वाथवा स्मृत्वा कर्तव्यं वास्तुरोपणम् ।
सूर्यारवर्ज्यदिवसे रात्रौ त्यक्त्वा महानिशाम् ॥१४३॥
मध्याह्ने तु कृतं यत्तु वास्तु कर्तुर्विनाशदम् ।
निशीथे वाऽथवा सन्ध्योर्वास्तु वा नैव कारयेत्॥१४४॥

ध्रुवको देखकर अथवा स्मरण करके वास्तुरोपण करना चाहिये । उनमें भी रवि मङ्गल का दिन रात्रिमें भी महानिशा और दिनमें मध्याह्न को त्याज्य करना चाहिये । मध्याह्नमें वास्तु करने से कर्ता का नाश होता है । एवं मध्यरात्रि और संध्या में भी निषेध है । मध्यरात्रि का प्रमाण यह है कि, यथा—" महानिशा तु विज्ञेया मध्यमप्रहरद्वयम् "

अथस्तम्भादीनां नामान्याह ।

वराहः—

समचतुरस्रोरुचको वज्रोऽष्टास्रिर्द्विवज्रको द्विगुणः ।
द्वात्रिंशता तु मध्ये प्रलीनको वृत्त इति वृत्तः ॥१४५॥

जिस स्तम्भ में समान चार कोण हों उसको रुचक नामा कहते हैं । जिसमें समान आठ कोण हों उसे वज्रनामा । जिस स्तम्भ के मध्य समान १६ कोण हों उसको द्विवज्रनामा, जिसमें ३२ हों वह प्रलीनक नामा जिसके मध्य में वृत्ताकार (गोला) हो उसे वृत्तसंज्ञक कहते हैं ॥ १४५ ॥

तत्रैव गृहोच्चमानमप्युक्तम्—

विस्तारषोडशांशः सचतुर्हस्तो भवेद्गृहोच्छ्रायः ।
द्वादशभागेनोनो भूमौ भूमौ समन्तानाम् ॥ १४६ ॥

विस्तार के षोड़शांश में चार हाथ मिलाकर गृह की ऊंचाई होनी चाहिये । यह पहला खण्ड का प्रमाण है । इसके ऊपर जो खण्ड बनाना हो तो उसी उंचाई के द्वादशांश उसी में घटा कर बनाना, उसके ऊपर भी इसी क्रम से अपना अपना द्वादशांश घटा कर के ऊपर ऊपर की ऊंचाई करनी चाहिये । यह क्रिया द्विभूमि, त्रिभूमि, चतुर्भूमि आदि गृहों में अर्थात् दो महला तीन महला में होती है । एक महल के लिये पहली क्रिया समझनी चाहिये ॥ १४६॥

अथभित्तिज्ञानम्–तत्रापि वराहः—

व्यासात्षोडशभागः सर्वेषां सद्मनां भवति भित्तिः ।
पक्वेष्टकाकृतानां दारुकृतानान्तु न विकल्पः ॥१४७॥

यदि पक्के ईंटका गृह बनाना हो तो विस्तार के सोलहवां हिस्सा के बराबर उसकी दीवार करनी चाहिये । लकड़ी के गृह में इसका विचार नहीं होता । उसमें अपने इच्छा के अनुसार दीवार बनाना चाहिये ॥ १४७ ॥

अथ पूर्वादिदिक्षु गृहोच्चनीचत्वफलम्—

स्यादुन्नतिः पूर्वनते नराणां वास्तौ धनं दक्षिणभागतुङ्गे ।
क्षयोधनानां विनते प्रतीच्यामुच्चैर्विनाशोध्रुवमुत्तरे तु॥१४८॥

तथा च वराहः—

प्रागुत्तरोन्नते धनसुतक्षयः सुतवधश्च दुर्गन्धे ।

जो गृह पूर्व दिशा में नम्र हो वह उन्नति करता है । दक्षिण भाग में ऊंचा हो वह धन देता है । पश्चिम में नीचा हो तो धन नाश करता है । उत्तर में ऊँचा हो तो शीघ्र विनाश करता है । यही वचन वृहत्संहिता में भी है । जैसे पूर्व और उत्तर में ऊँचा हो तो धन सुत का नाश करता है । दुर्गन्ध युक्त हो तो पुत्रका नाश करता है । अतः चारों तरफ जिसमें समान हो वैसा गृह बनाना चाहिये ॥ १४८ ॥

अथ दिक्परत्वेनोपकरणगृहाणि ।

पूर्वस्यां श्रीगृहं प्रोक्तमाग्नेय्यां स्यान्महानसम्॥१४८॥

शयनं दक्षिणस्यां च नैर्ऋत्यामायुधाश्रयम् ।
भोजनं पश्चिमायां च वायव्यां धनसंचयम् ॥ १४९॥

उत्तरेद्रव्यसंस्थानमैशान्यां देवतागृहम् ।
इन्द्राग्न्योर्मथनं मध्ये यमाग्न्योर्घृतमन्दिरम् ॥१५०॥

यमराक्षयोर्मध्ये पुरीषत्यागमन्दिरम् ।
राक्षसजलयोर्मध्ये विद्याभ्यासस्य मन्दिरम् ॥१५१॥

तोयेशानिलयोर्मध्ये रोदनस्य च मन्दिरम् ।
कामोपभोगशमनं वायव्योत्तरयोर्गृहम् ॥ १५२ ॥

कौवेरेशानयोर्मध्ये चिकित्सामन्दिरं सदा ।
पुरंदरेशयोर्मध्ये सर्ववस्तुषु संग्रहम् ।
सदनं कारयेदेवं क्रमादुक्तानि षोडश ॥ १५३ ॥

पूर्व दिशा में लक्ष्मी का गृह मतान्तर से पूर्व दिशा में स्नान गृह करना चाहिये। लिखा भी है "प्राच्यांदिशिस्नानगृहम्" अग्निकोण में रसोई घर (पाक गृह) दक्षिण में शयन, नैऋत्य में शस्त्र, पश्चिम में भोजन, वायव्य में धन संचय, उत्तर में द्रव्यस्थान, ईशान में देवता गृह करना चाहिये पूर्व अग्नि के मध्य में मथन गृह, अग्नि दक्षिण के मध्य घृत गृह, दक्षिण नैऋत्य के मध्य पुरीष गृह, नैर्ऋत्य पश्चिम के मध्य में विद्याभ्यास, पश्चिम वायव्य के मध्य में रोदनगृह वायव्य उत्तर के मध्य रतिगृह, उत्तर ईशान के मध्य औषधगृह, ईशान पूर्व के मध्य सर्ववस्तु संग्रहका गृह, इस भांति षोडश गृह बनाना चाहिये ॥

विश्वकर्मप्रकाशे—

नैर्ऋत्यां सूतिकागेहं नृपाणां भूतिमिच्छताम् ॥१५४॥

ऐश्वर्य चाहने वाला राजा नैर्ऋत्य कोण में सूतिका गृह बनावें ।

सूतिकागृह निर्माणे कालोऽप्याह तत्रैव—

आसन्नप्रसवे मासि कुर्याच्चैव विशेषतः ।
तद्वत्प्रसवकालेस्यादिति शास्त्रेषु निश्चयः ॥ १५५ ॥

मासे तु नवमे प्राप्ते पूर्वपक्षे शुभे दिने ।
प्रसूतिसंभवे काले गृहारम्भणमिष्यते ॥ १५६ ॥

आसन्न प्रसव काल जब होवे तो ९ नवमें मास के शुक्ल पक्ष में शुभ दिन में सूतिका गृह का निर्माण करना चाहिये ॥

अथ भूमिशोधनाय सूत्रनिर्णयमाह—

विप्रस्यदर्भजं सूत्रं मौञ्जन्तु क्षत्रियस्य च ।
कार्पासं च भवेद्वैश्ये शूद्रस्य स्वर्णकल्पितम् ॥१५७॥

ब्राह्मणकेलिये कुशा का सूत्र, क्षत्रिय के लिये मूंज का, वैश्य के लिये कार्पास का शूद्र के लिये सुवर्ण का सूत्र कल्पना करना चाहिये ॥

विश्वकर्मप्रकाशे—

अथापरमपिज्ञानङ्कथयामि समासतः ।
षड्गुणीकृतसूत्रेण शोधयेद्धरणीतले ॥ १५८ ॥
सुधूते समये तस्मिन्सूत्रङ्केनापि लङ्घितम् ।
तदस्थि तत्र जानीयात्पुरुषस्य प्रमाणतः ॥१५९॥
अभ्यक्तो दृश्यते यस्यां दिशिशल्यं समादिशेत् ।
तस्यामेव तदस्थीनि सप्तत्यङ्गुलमानतः ॥ १६० ॥
सूत्रिते समये यत्र श्वा सूत्रोपरि संस्थितः ।
तदास्थि तत्र जानीयात् षष्ठ्यङ्गुलमिताक्षितौ॥१६१॥
उन्मादे चागते तस्मिन्समये यत्र संस्थितः ।
तदास्थि तत्र जानीयाद्धस्तद्वयमिताक्षितौ ॥ १६२ ॥
सूत्रे विसूत्रिते तस्मिन् भिन्ने कुंभेऽथवा यदि ।
आदिशेन्निधनं तत्र दम्पत्योः क्रमशस्तदा ॥ १६३ ॥

अब अपरज्ञान भी मैं थोड़ेमें कहता हूं षड् गुण किया हुआ सूत्र से भूमि संशोधन करना चाहिये । संशोधन के समय कोई उस सूत्र को लांघदेवे तो वहाँ पर शल्य (हड्डी) जानना चाहिये । एक पुरुष प्रमाण नीचे अथवा उस समय यदि अभ्यक्त (उवटना) जिस दिशा में देख पड़े उस दिशा में

शल्य कहना चाहिये सत्तर अंगुल प्रमाण करके, अथवा उस समय सूत्र के ऊपर यदि श्वान आजाय तो दो हाथ गहरा शल्य कहना चाहिये यदि कोई उन्मादी मनुष्य आजाय तो दो हाथ गहरा शल्य उसी स्थान में कहना चाहिये जहाँपर वह आया हो यदि उस समय सूत्र भङ्ग हो जाय अथवा कुम्भ (घड़ा) भङ्ग हो जाय तो स्त्री पुरुष दोनों की मृत्यु होती है ॥ १३६ ॥

अथात्र भूमिशोधनार्थशल्यनिष्कासनविधिः ।

महाज्योतिर्निवन्धे—

स्मृत्वेष्टदेवतां प्रश्नवचनस्याद्यमक्षरम् ।
गृहीत्वा तु ततः शल्याशल्यं सम्यग्विचार्यते ॥१६४॥

तत्रादौ शल्यान्वेषणसमये ब्राह्मणत्रयद्वारा 'ओं धरिणी विदारिणी भूत्यै स्वाहारक्षामीति, मन्त्रस्य सहस्रत्रयवारं जपं कृत्वा तत्पश्चात्-गृहकर्तृहस्ताद्भूमिं स्पृष्ट्वा गृहभूमिशुभाशुभज्ञानजप्रश्नं वदेत् । तत्रादौ ब्राह्मणाद्याः वर्णाः पुष्पनदीदेवफलमिति ब्रुवन्ति । यत्र पुष्पाद्यक्षरं भवति तत्र शल्यं वदेत् । खननकाले नवधाभूमिं विभजेत् । यदिचेत्-व, क, च, त, ण, ह, स, य, ज, एतान्यक्षराणि मुखादुद्गतानि तदा पूर्वादिदिक्षु शल्यमादिशेत् ॥

टी० । इष्ट देवता का स्मरण करके प्रश्न का आद्यक्षर लेकर शल्याशल्य का विचार करै । जिसकी क्रिया यों है । शल्य निकालते समय तीन ब्राह्मण द्वारा 'ॐ धरिणी विदारिणीभूत्यैस्वाहा रक्षामि, इस मंत्र का ३००० जप करावे बाद इसके गृहकर्ता के हाथ से । भूमि स्पर्श कराकर-तब ब्राह्मण से पुष्प । क्षत्रिय से नदी । वैश्य से देवता । शूद्र से फल का नाम कहलाना चाहिये, बाद पुष्पादिकों के आद्यक्षर से शल्य कहना चाहिये । उसमें यदि आद्यक्षर व, क, च, त, ण, ह, स, य, ज, ये अक्षर हों तो-अर्थात् प्रथम आवें तो पूर्वादि दिशाओं में क्रमसे इन अक्षरों से, वक्ष्यमाणरीति के अनुसार शल्य का ज्ञान करना चाहिये ॥

व प्रश्ने पूर्वस्यां दिशि मनुजशल्यं सार्द्ध-
हस्तमात्रे मनुजमरणं कथयति ।
क प्रश्ने आग्नेय्यां खरशल्यं कटिमात्रे
नृपदण्डं वा गोमरणं कथयाति ॥ १६५ ॥
च प्रश्ने दक्षिणस्यां वानरशल्य
कटिमात्रे गृहाधीशस्यमृत्युं जनयाति ।

त प्रश्ने नैर्ऋत्यामश्वशल्यं सार्द्ध-
हस्तमात्रे दुःखप्रदर्शनं कथयति ॥ १६६ ॥
ए प्रश्ने प्रतीच्यां नरशल्यं
पुरुषमात्रे धनापहरणं कथयति ।
ह प्रश्ने वायव्यां द्विजशल्यं
कटिमात्रे निर्धनं जनयति ॥ १६७ ॥
स प्रश्ने उत्तरदिशि कटिमात्रे
गोशल्यं गृहपतिमरणं कथयति ।
य प्रश्ने चैशान्यां सार्द्धहस्तमात्रे
ऋक्षशल्यं गोधननाशं जनयति ॥ १६८ ॥
ज प्रश्ने मध्यभागे नरकपालं भस्मादिकं
वा हन्मात्रे कुलनाशं कथयति ॥
गृहे शल्याभावे शुभमिति ॥ १६९ ॥

यदि प्रश्न का प्रथम अक्षर ब हो तो पूर्व दिशा में डेढ हाथ गहरे मनुष्य का शल्य कहना । इसमें गृह बनाने से मनुष्य की मृत्यु होती है । इत्यादि सब स्पष्टही है । अतः शल्यरहित भूमि पर गृह बनाना शुभ होता है ।

अथ वास्तुराजवल्लभोक्तशल्यानयनप्रकारः—

प्रश्नत्रयं वापि गृहाधिपेन देवस्य वृक्षस्य फलस्य चापि ।
वाच्यं हि कोष्ठाक्षरसंस्थितेन शल्यं विलोक्यं भवनेषु सृष्ट्या १७०

गृहस्वामी के मुख से प्रश्न कराकर तीन नाम देवता, वृक्ष और फूल का पूछना बाद इसके प्रथम अक्षर वक्ष्यमाण जिस कोष्ठक में पड़े वहाँ शल्य कहना ॥

आ का चा टा ए त शा पा य वर्गाः
प्राच्यादिस्थे कोष्ठके शल्यमुक्तम् ।

केशाङ्गाराः काष्ठलौहास्थिकाद्यं
तस्मात्कार्यं शोधनं भूमिकायाः ॥ १७१ ॥

अ क च ट ए त श प य वर्ग पूर्वादिक दिशा में समझना, प्रश्न के अक्षर जिस कोष्ठ में पड़े वहाँ शल्य केश कोयला काष्ठ लोहा इत्यादि समझना चाहिये । इनका रहना शुभद नहीं है । इसलिये भूमिशोधन अवश्य करना चाहिये ।

प फ ब भ म	अ इ उ ऋ लृ	क ख ग घ ङ
श ष स ह	य र ल व	च छ ज झ ञ
त थ द ध न	ए ऐ ओ औ	ट ठ ड ढ ण

अथास्य फलम्—

शल्ये गवां भूपभयं हयानां रुजः शुनां वै कलहप्रणाशौ ।
खरोष्ट्रयोर्हानिमपत्यनाशं नृणामजस्याग्निभयं तनोति॥१७२

गौ का शल्य होने से राजभय, घोड़े का रोग, कुत्ते का कलह और नाश गर्दभ और उष्ट्र की हानि, मनुष्य का सन्तति नाश—और बकरे का अग्निभय करता है । किसी का मत यह है कि—अ, क, च, ट, त, प, य, श, इन अक्षरों के उच्चारण से पूर्वादि दिशाओं में और ह प य, इनसे मध्य में शल्य जानना ॥

जैसे मुहूर्तमार्तण्डकारका यह वचन भी है—

सद्मप्रश्नकृतोमुखात् प्रथमतो वर्गादिवर्णोद्गम-
श्चेतद्दिग्गतमादिशेत्तुहपयैः शल्यं सुधीर्मध्यत इति ।

अथ ज्योतिर्निबन्धोक्तशल्यानयनप्रकारः—

स्मृत्वेष्टदेवतां प्रष्टुर्वचनस्याद्यमक्षरम् ।
गृहीत्वा तु ततः शल्याशल्यं सम्यग्विचार्यते ॥१७३॥
अ क च ट त व य श हपया वर्गाः पूर्वादिमध्यान्ताः ।
शल्यकरा इह नान्ये, शल्यगृहे निवसतां नाशः॥१७४

पृच्छायां यदि अः प्राच्यां नरशल्यं तदा भवेत् ।
सार्धहस्तप्रमाणेन तच्चमानुषमृत्युकृत् ॥१७५॥
आग्नेय्यां दिशि कः प्रश्ने खरशल्यं करद्वये ।
राजदण्डो भवेत्तत्र भयं नैव निवर्तते ॥१७६॥
याम्यायां दिशि चः प्रश्ने कुर्यादाकटिसंस्थितम् ।
नरशल्यं गृहेशस्य मरणं चिररोगतः ॥१७७॥
नैर्ऋत्यां दिशि टः प्रश्ने सार्धहस्तादधस्तले ।
शुनोऽस्थि जायते तच्च बालानां जनयेन्मृतिम् ॥१७८
तः प्रश्ने पश्चिमायान्तु शिशोः शल्यं प्रजायते ।
सार्धहस्ते गृहस्वामी न तिष्ठति सदा गृहे ॥१७९॥
वायव्यां दिशि पः प्रश्ने तुषाङ्गाराश्चतुष्करे ।
कुर्वन्ति मित्रनाशं च दुःस्वप्नदर्शनं सदा ॥१८०॥
उदीच्यां दिशि यः प्रश्ने विप्रशल्यं कटेरधः ।
तच्छीघ्रं निर्धनत्वाय कुबेरसदृशस्य हि ॥ १८१ ॥
ऐशान्यां दिशि शः प्रश्ने गोशल्यं सार्धहस्ततः ।
तद्गोधनस्य नाशाय जायते गृहमेधिनः ॥ १८२ ॥
हपया मध्यमे कोष्ठे वक्षोमात्रे भवेदधः ।
नृकपालं कचोभस्म लोहं तत्कुलनाशकृत् ॥ १८३ ॥

प्रथम श्लोक का अर्थ पहले लिख चुके हैं। प्रश्नकर्ता के मुख से अ वर्गादिकों के प्रथम का जो अक्षर निकले वे ही पूर्व से लेकर मध्य पर्यन्त शल्य करने वाले होते हैं। दूसरा नहीं। जैसे अ वर्ग कहने से पूर्व दिशा में मनुष्य का शल्य—डेड़ हाथ के नीचे जानना इससे मनुष्य की मृत्यु होती है। क वर्ग से अग्नि कोण में गदहे का शल्य दो हाथ के नीचे जानना इसमें राज-दण्ड होता है। च वर्ग से दक्षिण में मनुष्य का शल्य कटी तुल्य नीचे जानना, इससे गृह कर्ता का मरण होता है। ट वर्ग से नैर्ऋत्य कोण में १॥ हाथ नीचे कुत्तेकी हड्डी होती है। इसमें बालक मरण होता है। त वर्ग से पश्चिम में बालक

की हड्डी १॥ हाथ नीचे होती है--इससे गृह स्वामी परदेश रहता है। प वर्ग से वायव्य कोण में ४ हाथ नीचे भूसी और कोयला रहता है इससे मित्र नाश और दुःस्वप्न होता है। य वर्ग से उत्तर दिशा में ब्राह्मण की हड्डी कटी तुल्य नीचे वह शीघ्रही निर्धन करती है। कुवेर सदृश धनवान् क्यों न हो। शषस प्रश्न में होतो ईशान कोण में गो का शल्य १॥ हाथ नीचे गोधन नाश कारक होता है। हपय इनसे मध्य में मनुष्य का कपाल केश भस्म लोह जानना इससे कुल का नाश होता है ॥ १८३ ॥

इति शल्याधिकारः ।

अथ दिक्साधनं तत्रादौ तत्प्रयोजनं—वृद्धनारदः ।

प्रासादे सदनेऽलिन्दे द्वारे कुण्डे विशेषतः ।
दिङ्मूढे कुलनाशः स्यात् तस्मात् संसाधयेद्दिशः ॥१॥

वास्तुशास्त्रे—

प्रथमे सुसमे क्षेत्रे प्राचीं संसाधयेत्स्फुटम् ।
सिद्धान्तोक्तप्रकारेण ततो निष्पादयेद्गृहम् ॥ २ ॥

प्रासाद, गृह, अलिन्द, द्वार और कुण्ड में विशेष कर दिक् साधन करना चाहिए। दिक् मूढ होने से कुल का नाश होता है॥

इसलिये पहले वरावर (समतल) भूमि पर सिद्धान्त युक्ति से दिक् साधन करके गृह वनाना चाहिये।

ज्ञात्वा पूर्वं धरित्रीं दहनखननसम्प्लावनैः संविशोध्य,
पश्चात्कृत्वा समानां मुकुरजठरवद्वाचयित्वा द्विजेन्द्रैः ।
पुण्याहं कूर्मशेषौ क्षितिमपि कुसुमाद्यैः समाराध्य शुद्धे
वारे तिथ्यां च कुर्यात् सुरपतिककुभः साधनं मण्डपार्थम्॥३॥

पहले भूमि को दहन खनन सम्प्लावन द्वारा शुद्ध करके वाद उसके मुकुर जठरवत् (शीशे के माफिक) करलेना फिर ब्राह्मणों द्वारा पुण्याहवाचन कराना वाद इसके कूर्म (कच्छप) शेष और भूमि की पुष्पादिकों से पूजन आराधन करके शुभवार और तिथिमें गृह निमित्त पूर्वदिशा का साधन करना चाहिये।

तत्प्रकारमाह भास्करः—

वृत्तेऽम्भःसुसमीकृते क्षितिगते केन्द्रस्थशङ्कोः क्रमात् ।
भाग्रं यत्र विशत्यपैति च यतस्तत्रापरेन्द्र्यौ दिशौ ॥
तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद्भाकर्णमित्याहता-
ल्लम्बज्याप्तमिताङ्गुलैरयनदिश्यैन्द्री स्फुटा चालिता ॥ ४ ॥
तन्मत्स्यादथ याम्यसौम्यककुभौ सौम्याध्रुवे वा भवे-
देकस्मादपि भाग्रतो भुजमितां कोटीमितां शङ्कुतः ।
न्यस्येद्यष्टिमृजुं तथा भुवि यथा यष्ट्यग्रयोः संयुतिः
कोटिः प्राच्यपरा भवेदिति कृते बाहुश्च याम्योत्तरा ॥ ५ ॥

जलसे समीकृत (वरावर) की हुई भूमिपर वृत्त वनाकर केन्द्र में द्वादशांगुल शंकुरक्खे पूर्वाह्न में वृत के भीतर जहां छाया प्रवेश करे वही पश्चिम और मध्याह्नोत्तर जहां से निकले वही विन्दु पूर्वदिशा होगी (इस प्रकार पश्चिम विन्दु का ज्ञान ठीक हुवा परन्तु क्रान्ति गतिके वस पूर्वविन्दु स्थूल हुवा) सूक्ष्मविन्दु जानने के लिये 'तत्कालापमजीवयोरित्यादि" प्रकार से छाया प्रवेश तथा निर्गम दोनों समयों का क्रान्तिज्यावों का अन्तर करना और छायाकर्ण से गुणदेना इष्टलम्बज्या से भाग देना लब्धि तुल्य अंगुलादि अयन के दिशामें पूर्व विन्दु को चला देना तव वास्तव पूर्व विन्दु होगा। पश्चिम और पूर्व दोनों विन्दुवों से मत्स्यउत्पादन (अर्थात् पूर्वापर विन्दु से मिलाई हुई रेखा के आधे के ऊपर रेखागणित युक्ति से लम्व) करने से वास्तव दक्षिणोत्तर रेखा होगी। अथवा उत्तर ध्रुव को वेध कर उत्तर दिशा को जानना अथवा वृतमध्यस्थ शंकुका एक समय काही छायाग्र जानकर उसी इष्ट काल का भुज और कोटी वनाना भुज और कोटी के तुल्य शलाका लेकर शंकु से यथादिक् कोटि और छायाग्र से व्यस्तदिक् भुज शलाका इस प्रकार विन्यास करे जैसे यष्ट्यग्र (शलाकाग्रों का) योग होजाय ऐसा करने से कोटि पूर्वापर और भुज दक्षिणोत्तर होगा।

अथवा ग्रहलाघवोक्तः सुगमोपायः—

वृत्ते समभूगते तु केन्द्रस्थितशङ्कोः क्रमशो विशत्यपैति ।
छायाग्रमिहापरा च पूर्वा ताभ्यां सिद्ध तिमेरुदक् च याम्या ६

अथवा समान भूमिपर बनाया हुवा वृत्त मध्य में रखा हुवा शङ्कु छायाग्रका जहां प्रवेश और निर्गम हो वहीं पश्चिम और पूर्व दिशा होगी।

(ग्रहलाघव कारने उन्हीं बिन्दुवों में मिली हुई रेखा को वास्तव पूर्वापर के समानान्तरानुरूप मान लिया है) इस पर मत्स्योत्पादन (आधे पर लम्ब) करने से दक्षिणोत्तर रेखा होगी।

दिग्ज्ञान का लघु उपाय—

दिनमानदले सप्ताङ्गुलच्छायाग्रतो हि यत् ॥
शंकुमूले नीयमानं सूत्रं स्यादुत्तरा दिशा ॥ ७ ॥

मध्याह्न में ७ अँगुल की छायाग्र से शंकु मूल पर्यन्त रेखा करने से दक्षिणोत्तर रेखा होगी।

अथवा—

तारे मार्कटिके ध्रुवस्य समतां नीतेवलम्बे नते,
दीपाग्रेण तदैक्यतश्च कथिता सूत्रेण सौम्या दिशा।
शङ्कोर्नेत्रगुणे तु मण्डलवरे छाया द्वयान्मत्स्ययो-
र्जाता यत्र युतिस्तु शङ्कुतलतो याम्योत्तरेस्ततः स्फुटे ॥८

सप्तर्षि के तारों में जो पहिले को दो तारा हैं उनको मार्कटिका कहते हैं वे और ध्रुव जब एक सूत्र में होजाय अर्थात् एक शंकु स्थापन करने से जब शंकु के ही सीध में तीनों तारा हो जाय तो शङ्कु से दक्षिण भाग में एक दीपक रखना दीपक की शिखा शंकग्र ध्रुव ये तीनों जब एक सीध में देख पड़ें तो शंकु से दीपक को दक्षिण जानना। अथवा ३२ अँगुल के वृत के मध्य में द्वादशांगुल शंकु रखना जहां उसकी छाया वृत्त में प्रवेश करे वहां पश्चिम जहां निकल जाय वह पूर्व दिशा दोनों बिन्दुवों से मत्स्य बनाने से उनके योग में की हुई रेखा दक्षिणोत्तरा होती है (परन्तु ये दोनों प्रकार स्थूल हैं, क्योंकि अयनांश के कारण ठीक उत्तर दिशा में ध्रुव की तारा इस समयनहीं है परन्तु व्यवहार के लिये यह रीति प्रायः ठीक है। दूसरी रीति रविके क्रान्ति के चल होने से अशुद्ध है परन्तु सायन कर्क वा मकर की संक्रान्ति के दो चार दिन आगे या पीछे किया जाय तो प्रायः ठीक होती है, वृत्तः जितना ही छोटा होगा उतनी ही दिशा सूक्ष्म होगी) ।

द्विघ्नायाममितं द्विपाशमजरत् सूत्रं विधायाङ्कयेत्
त्र्यायामाङ्घ्रिमिते च विस्तृतिदले तौ कर्षकोणाभिधौ ॥

पाशौ क्षेत्रविरामशंकुनिहतौ कृत्वाद्यमाकर्षयेत्-
कोणे शंकुरितीतरो विनिमयद्द्व्यंतयोश्चापरौ ॥ ९ ॥

द्विघ्नायाम अर्थात् द्विगुण लम्बाई के तुल्य मजबूत एक सूत्र बनावे जिसके दोनों अन्त में पाश (एक प्रकार की ग्रन्थि होती है जिसके मध्य में छिद्र रहता है) हो उस द्विगुण दैर्घ्य सूत्र में दो स्थान पर चिन्ह करे आयामाङ्घ्रि अर्थात् दैर्घ्य के तीन चतुर्थांश पर पहिले जैसे ३२ हाथ लम्बा घर होतो तीन चौथाई २४ हुआ और विस्तार के आधे पर दूसरा चिन्ह करना पहिले का नाम कर्ण और दूसरे का कोण होगा ।

पाशौ क्षेत्रविरामशंकुनिहतौ कृत्वेत्यादि—

दिक् साधन प्रकार से साधन किया हुवा क्षेत्र मध्य में जो दिक् सूत्र है उसपर दैर्घ्य सूत्र को फैलाकर दोनों भाग में शंकुगाड़ देना (स्थापित करना) इन्हीं दोनों शंकुवों में पाशों को लगा देना तब पहिले चिन्ह अर्थात् कर्ण को खींचना जहां पर कोण चिन्ह हो वहां शंकु गाड़ना इसी को उलट देने से दूसरा शंकु इस दो शंकु से शेष दोनों शंकु जान लेना इस प्रकार ठीक चतुष्कोण होता है ।

विस्तारायामगुणितं गृहस्य पदमुच्यते ।

लम्बाई चौड़ाई का गुणन फल क्षेत्रफल होता है यह वसिष्ठ आदिकों का कहना है ।

तथायते तद्भुजकोटिघातः ।

आयत क्षेत्र में लम्बाई चौड़ाई का गुणनफल श्रीभास्कर ने कहा है ज्योतिर्विदाभरण में भी—

क्षेत्रे भवेत् क्षेत्रफलं चतुर्भुज-
तत्कोटि दोराहतिरेवमायते ।
त्र्यस्रेपिदोःकोटि हतेर्दलं फलं
दोः कोटिलम्बैर्विषमे च कल्पितम् ॥ १० ॥

समचतुर्भुजक्षेत्र में भुजकोटि (लम्बाई चौड़ाई) का गुणनफल को क्षेत्रफल कहते हैं इसी प्रकार आयत क्षेत्र में भी होता है । त्रिभुज में भुजकोटि का गुणनफल का आधा क्षेत्रफल होता है ।

गोपीराज विष्णुनाम के शिष्य से कहते हैं—

विष्णुं व्येकायगोभूहतिभयुजिफलं गोपिराजो भशेषात् ।
सायंचेष्टाष्टि दृग्घ्न्या युतमाहिनिहता दृक्प्रकृत्याख्यविश्वे ॥
वाणाःसिद्धाष्टि नागोडूवातिधृतिगिरिशत्र्याकृतीन्द्रर्तुतत्वा-
त्यष्ट्यङ्कक्ष्मा नखेनार्णव विकृति दिनाद्र्युत्कृतीभेन्दुकाष्ठाः ॥

इष्ट आय में एक कम करके उसको १९ से गुणा करे उसमें नक्षत्र संख्या जोड़ देना उसमें २७ का भाग दे जो शेष बचे उसके अनुसार क्रम से इन शेषों को ग्रहण करे दृक् २ प्रकृति २१ विश्व १३ वाण ५ सिद्ध २४ अष्टि १६ नाग ८ उडु २७ अतिधृति १९ गिरिश ११ त्रि ३ आकृति २२ इन्द्र १४ ऋतु ६ तत्व २५ अत्यष्टि १७ अङ्क ९ क्ष्मा १ नख २० इन १२ अर्णव ४ अविकृति २३ दिन १५ अद्रि ७ उत्कृति २६ इभेन्दु १८ काष्ठा १० एकादि शेष में क्रम से ए अंक होते हैं। इसको ८ से गुणा करके आय को जोड़ देना तब क्षेत्रफल होगा इसको इष्ट गुणित २१६ जोड़ देने से अनेकधा होते हैं।

उदाहरण—

कल्पना किया कि गृह नक्षत्र रोहिणी और आयसिंह है दोनों से क्षेत्रफल जानना है। आय संख्या ३ एक कम किया २ इसको १९ से गुणा किया ३८ इसमें नक्षत्र संख्या ४ जोड़ा ४२ में २७ का भाग दिया शेष १५ रहा पन्द्रह शेष सम्बन्धी अंक २५ है इसको आठ से गुणा किया २०० हुवा आय संख्या ३ जोड़ दिया २०३ यह प्रथम पिण्ड मान हुवा। इसी क्षेत्रफल को इष्ट से गुणा करे और २१६ जोड़ दे तो अनेकों पिण्ड होगा। जैसे इष्ट माना ३ क्षेत्रफल २०३ को गुणा किया ६०९ इसमें २१६ जोड़ा ८२५ यह क्षेत्रफल भुजकोटि के घात सम हुवा।

मेंगनाथ प्रकारः—

इष्टभात्यष्टि १७ घातय आयस्तेनोनितेष्टकः ।
त्रिहल्लब्धहताशाश्वियुते चेष्ठाय भं भवेत् ॥१२॥

इष्ट नक्षत्र और १७ के गुणनफल से जो आय हो (अर्थात् गुणनफल में आठ का भाग देने से जो आय निकले) उसको अभीष्ट आय में घटा देना न घटे तो ८ जोड़ कर घटाना उसमें ३ का भाग देकर लब्धि ग्रहण करना (यदि-तीन का भाग देने से निरग्र न हो तो एकादि गुणित आठ को तब तक जोड़ते जावो जब तक तीन का भाग देने से निरग्र न हो) जब निरग्र हो जाय तब लब्धि को २७ से गुणा करके पूर्व स्थापित गुणनफल (याने नक्षत्र और १७ के गुणनफल) में जोड़ देना तब इष्टाय नक्षत्र सम्बन्धी पिण्ड होता है।

उदाहरण—

इष्ट नक्षत्र ४ और १७ का गुणनफल ६८ हुआ इसमें आठ का भागदिया ४ यह गुणनफल सम्बन्धी आय हुआ इसको इष्ट आय ३ में घटाने से नहीं घटता है इसलिये ८ जोड़कर याने ११ में चार घटाया शेष ७ रहा यह तीन का भाग देने से निरग्र नहीं हुआ इसलिये एकगुण आठ जोड़ा तो १५ हुआ यह तीन से निरग्र हुवा लब्धि ५ मिली इसको २७ से गुणा किया तब १३५ हुआ इसको पूर्व गुणनफल ६८ में जोड़ा तब २०३ यह पिण्ड हुआ ।

तथा च केशवदैवज्ञः—

गजैस्तष्टमिष्टोडुशोध्यं, निजाया-
न्न चेत्साष्टकायात्त्रिभघ्नं युतं तत् ।
स्वभात्यष्टिहत्याऽष्टिहृत्कृतष्टमिष्टा-
यभोत्थं फलं भूपहृग्युक् पुनश्च ॥ १३ ॥

इष्ट नक्षत्रको ८ से भागदेना जो शेष बचे उसको अभीष्ट आयमें घटादेना न घटे तो आठ जोड़कर घटाना उसको ८१ से गुणा करना उसमें इष्टनक्षत्र और १७ का गुणनफल जोड़ देना उसमें २१६ का भाग देना शेष पिण्ड होगा उसमें २१६ बार बार जोड़ देने से अनेकधा पिण्ड होगा ॥ १३ ॥

उदाहरण—

जैसे इष्टनक्षत्र ४, इष्टाय ३ नक्षत्र ४ को ८ से भागदिया शेष ४ रहा यह इष्टाय ३ में न घटा इसलिये ८ जोड़कर याने ११ में घटाया ७ शेष बचा इसको ८१ से गुणा किया तो ५६७ हुआ इसमें इष्टनक्षत्र ४ और १७ का गुणन फल ६८ जोड़दिया तो ६३५ हुआ इसमें २१६ का भाग दिया तो शेष २०३ यह पिण्ड हुआ इसमें २१६ बार बार जोड़ने से अनेकधा होता जायगा ॥

तथाच गणेशदैवज्ञसूत्रम् ।

ऊनाभ्रेष्टायात्त्यजेदिष्टभं नोचेद्भाढ्याद्वेदषड्घ्नं च सायम् ।
तष्टं षट्स्वर्गैः फलं स्यादभीष्टायर्क्षोत्थं तद्भूपहृग्युक् पुनस्तु १४

अष्टगुणित इष्ट आय में से इष्टनक्षत्र को घटा देना न घटे तो २७ जोड़ कर घटाना शेषको ६४ से गुणाकर आय जोड़ देना २१६ का भागदेना शेष इष्टनक्षत्र और इष्टाय संबन्धि पिण्ड होगा इष्ट गुणित २१६ जोड़ने से अनेकधा होगा ।१४।

उदाहरण—

इष्टनक्षत्र=४, इष्टाय=३, ४ इसको अष्टगुणित इष्ट आय २४ में से घटा दिया तो २० शेष रहा इसको ६४ से गुणकर इष्टाय ३ जोड़ दिया १२८३ यह हुआ २१६ का भाग दिया तो शेष २०३ यह पिण्ड हुआ ।

६

अथ म्हालुगिदैवज्ञ-सूत्रम्—

व्येकेष्टर्त्तहताद्विबाणशशिनोत्यष्ट्यायुतास्तेऽपि च ।
व्येकेष्टायहतैकनागसहिताः षण्मूर्च्छनाभिर्हताः ॥
शेषं क्षेत्रफलं भवेदभिमतं स्वेष्टायनक्षत्रगं ।
स्याद्दैर्घ्यं तदभीष्टविस्तृतिहतं दैर्घ्योद्धृतं विस्तृतिः ॥१५॥

मुहूर्त्त कल्पद्रुम के बनानेवाले विट्ठल दीक्षित का गुरु म्हालुगि दैवज्ञ का यह सूत्र है इसका अर्थ यों है, इष्ट नक्षत्र संख्या में १ कम करके शेष से १५२ को गुणा करै उसमें १७ जोड़ दे और आय में एक कम करके शेष से ८१ को गुणा करै दोनों जोड़कर २१६ का भाग दे शेष जो होगा वह इष्ट नक्षत्र और इष्टाय सम्बन्धि पिण्ड होगा इसमें दीर्घ से भाग देने से विस्तार और विस्तार से भाग देने से दीर्घ होगा इसी भाव का दूसरा पद्य बनाकर मुहूर्त्त चिन्तामणिकार रामदैवज्ञ ने भी लिखा है, यथा—

एकोनितेष्टर्त्तहताद्वितिथ्योरूपोनितेष्टायहतेन्दुनागैः
युक्ताघनैश्चापियुता विभक्ता भूपाश्विभिश्शेषमितोहिपिण्डः ॥
स्वेष्टायनक्षत्रभवोऽथदैर्घ्यहृत्-
स्याद्विस्तृतिर्विस्तृतिहृच्चदीर्घता ॥ इति ॥

उदाहरण—

नक्षत्र संख्या ४ आय संख्या ३, ४ नक्षत्र संख्या में एक कम किया ३ हुआ इसमें १५२ को गुणाकर १७ जोड़ दिया ४७३ हुआ, आय में १ कम करने से २ हुआ इसको ८१ से गुणाकर दिया तो १६२ हुआ दोनों का योग ६३५ में २१६ का भाग दिया तो शेष २०३ यह पिण्ड हुआ ॥ १५ ॥

अथात्र श्रीसुधाकरोक्तसूत्रम्

इष्टायनन्देन्दुहतिर्भसंख्यया युताऽगयुग्मैर्विहृताथशेषकम् ।
नन्देन्दुगुण्यं नगयुग्मशेषितं सायाच्च शेषाष्टहतिर्हि पिण्डकः १६

इष्टाय को १९ से गुणाकर इष्ट नक्षत्र संख्या को जोड़ देना २७ का भाग देना शेष को १९ से गुणाकर २७ का भाग देना शेष को ८ से गुणकर आय जोड़ देना तो वह पिण्ड होगा ॥ १६ ॥

उदाहरण—

पूर्व कल्पितेष्ट नक्षत्र ४, इष्टाय ३, आय को १९ से गुणा किया तो ५७ हुआ इसमें ४ नक्षत्र संख्या जोड़ दिया तो ६१ हुआ २७ का भाग देने से शेष

७ बचा इसको १६ से गुणा किया तो १३३ हुआ २७ का भाग देने से २५ शेष रहा इसको ८ से गुणा किया २०० हुआ आय जोड़ देने से २०३ पिण्ड हुआ ।

प्रकारान्तरेण—

नक्षत्रसंख्येन्दुगजान्वितोनिता
गजायहत्याऽगकशान्विताम्मुहुः ।
यथा विशुद्धा दशभाजिता भवेत्
सायेन लब्ध्योर्निहतिर्भवेत्फलम् ॥ १७ ॥

इष्ट नक्षत्र संख्या में ८१ जोड़ देना इसमें ८ से गुणा हुआ आय को घटा देना जो शेष रहे उसमें २७ जोड़ना ऐसा तब तक करते जाना जब तक १० से भाग देने से निःशेष न हो जाय, जब १० से भाग देने से निःशेष हो जाय तब उसमें जो लब्धि हो उसको आठ से गुणकर आय जोड़ देना तो पिण्ड हो जायगा ॥ १७ ॥

उदाहरण —

पूर्व कल्पित-इष्ट नक्षत्र संख्या ४, इसमें ८१ जोड़ दिया ८५ हुआ, इसमें ८ और कल्पित-आय का घात २४ को घटाया तो ६१ हुआ इसमें २७ तब तक जोड़ा जब तक दश से भाग देने से निःशेष न हो जाय (यहां २७ को सात बार जोड़ने से निःशेष होता है) अतः ७ गुणित २७ इसमें जोड़ दिया तो २५० हुआ दश से भाग देने से लब्धि २५ हुआ इसको ८ से गुणा किया तो २०० हुआ इसमें आय ३ जोड़ दिया तो २०३ पिण्ड सिद्ध हुआ ।

अथवा—

अष्टघ्नायमितिर्भतो यदधिका वाल्पा हता सा क्रमा-
न्नागैरङ्ककुभिर्भहृद्गजहतोच्छिष्टाययोगः फलम् ॥
स्यात्संसारविचारचारुकुमुदप्रोल्लासकानां सदा ।
विद्वन्मण्डितमण्डलीषु विदुषां स्वल्पप्रयासेन च ॥१८॥

इष्ट आय को ८ से गुणा करना गुणनफल यदि कल्पित नक्षत्र संख्या से अधिक वा कम हो तो क्रमसे यदि अधिक हो तो कल्पित नक्षत्र को गुणनफल में घटादेना शेष को ८ से गुणाकर २७ का भाग देना इससे जो शेष हो उसको आठ से गुणा करना गुणनफल में इष्ट आय जोड़ देना तो पिण्डमान हो जायगा, यदि कम हो तो कल्पित नक्षत्र में गुणनफल को घटा देना शेषको १६ से गुणा कर २७ का भाग देना इस शेष को भी ८ से गुणा कर इष्ट आय जोड़

देना तो पिण्डमान हो जायगा, यह प्रकार संसार में विचार रूपी जो उत्तम कुमुद है उसको खिलाने में और विद्वन्मण्डली में मण्डित (शोभित) पण्डितों के लिये अल्प प्रयास साध्य है ॥ १८ ॥

प्रथम उदाहरण—

यथा इष्ट नक्षत्र संख्या ४ इष्ट आय संख्या ३ हैं, अब इष्ट आय को ८ से गुणा किया तो २४ हुआ यह कल्पित नक्षत्र संख्या ४ से अधिक है, अतः २४ में ४ को घटाया तो २० भया इसको ८ से गुणा किया १६० भया इसमें २७ का भाग देने से शेष २५ रहा इसको ८ से गुणा किया तो २०० हुआ इसमें इष्ट आय ३ जोड़ देने से २०३ यही पिण्डमान हुआ ।

द्वितीय उदाहरण—

यदि कल्पित नक्षत्र संख्या २५ है और इष्ट आय ३ है तो इष्ट आय गुणित आठ २४ भया इसको २५ में घटा दिया शेष १ रहा इसको १६ से गुणाकर २७ का भाग देने से शेष १६ भया इसको ८ से गुणा कर इष्ट आय जोड़ देने से १५५ यही प्रथम पिण्डमान हुआ इसको इष्ट से गुणा कर २१६ जोड़ते जाने से अनेकधा पिण्डमान हो जायगा ॥ १८ ॥

इति पिण्डसाधनप्रकारः

अथायानयनम्—यदुक्तं टोडरानन्दे—

विस्तारेण हतं दैर्घ्यं विभजेदष्टभिस्ततः ।
यच्छेषं स भवेदायो ध्वजाद्यास्तेस्युरष्टधा ॥१॥
ध्वजोधूम्रोहरिश्वागौः खरेभौवायसोष्टमः ।
पूर्वादिदिक्षु चाष्टानां ध्वजादीनामवस्थितिः ॥ २ ॥

विस्तार से दीर्घ को गुणा करके आठ का भाग देना जो शेष होगा वह ध्वजादि के क्रम से आय होगा । जैसे १ शेष में ध्वज, २ में धूम्र ३ में हरि (सिंह) चार में श्वान, ५ में गौ, ६ में गदहा, ७ में हस्ती, आठ में वायस (कौआ) जानना ॥ १-२ ॥

अथैतेषां फलानि—

कीर्तिः शोको जयो वैरं धनं निर्धनता सुखम् ।
रोगश्चेतिगृहारम्भे ध्वजादीनां फलं क्रमात् ॥ ३ ॥

अब फल कहते हैं ध्वज आय में कीर्ति (यश) धूम्र में शोक, सिंह में जय, श्वान में वैर, गौ में धन, गदहे में निर्धनता, हस्ती में सुख, वायस में रोग यह ध्वजादि आठ आयों का फल है ॥ ३ ॥

अथान्येऽपि—

ध्वजेबहुधनं प्रोक्तं धूम्रे चैव भ्रमं भवेत्।
सिंहे च विरला लक्ष्मीः श्वाने च कलहं भवेत् ॥४॥
धनं धान्यं वृषे चैव खरेषु स्त्रीविनाशनम्।
गजाख्ये पुत्रलाभश्च ध्वांक्षे सर्वत्रशून्यता ॥ ५ ॥

ध्वज में वहुत धन लाभ होवै, धूम्र में भ्रम, सिंह में विशेष लक्ष्मी, श्वान में कलह, वृष में धनधान्य लाभ, खर में स्त्री विनाश, गज में पुत्रलाभ और वायस में सर्वत्र शून्य जानना ॥ ६ ॥

स्वस्वस्थाने ध्वजः श्रेष्ठो गजः सिंहस्तथावृषः।
ध्वजः सर्वगतोदेयो वृषं नान्यत्रदापयेत् ॥ ७ ॥
वृष-सिंह-गजाश्चैव पुटकर्पटकोटयोः।
द्वीपः पुनः प्रयोक्तव्यो वापी-कूप-सरः सुच ॥ ८ ॥
मृगेन्द्रमासनेदद्याच्छयनेषु पुनर्गजः।
वृषं भोजनपात्रेषु छत्रादिषु पुनर्ध्वजम् ॥ ९ ॥
अग्निवेश्मसु सर्वेषु गृहे वह्न्युपजीविनाम्।
धूमं नियोजयेत्केचिच्छ्वानं म्लेच्छादि जातिषु ॥१०॥
खरो वेश्यागृहे शस्तोध्वांक्षः शेषकुटीषु च।
वृषसिंहगजाश्चापि प्रासाद पुरवेश्मसु ॥ ११ ॥

अपने २ स्थान में सबको श्रेष्ठ होते हुए भी ध्वज गजसिंह और वृष ये विशेष श्रेष्ठ होते हैं ध्वज को सर्वत्र देना वृषको अन्यत्र नहीं देना चाहिये तथापि वृषसिंह गजआयको पुट कर्पट और कोट में देना चाहिये एवं गज आयको वापी-कूप और तालाव में देना योग्य है। आसन में सिंह शयन में गज भोजनपात्र में वृष छत्रादिकों में ध्वज आय देना चाहिये। अग्नि सम्बन्धि कार्य वाले जितने गृह हैं एवं अग्नि से जीविका करने वाले जातियों को भी धूम आय श्रेष्ठ होता है। म्लेच्छादि जातियों के लिये धूम-आय वेश्या के लिये खर (गदहा) आय, शेष कुटी आदि में वायस (कौआ) प्रासाद पुट (ग्राम) वेश्म (गृह) में वृषसिंह और गजाय श्रेष्ठ होता है ॥ ७-११ ॥

वशिष्ठोप्याह—

गजायेवाध्वजायेवा गजानां सदनं शुभम् ।
अश्वालयं ध्वजाये च खराये वृषभेऽपि वा ॥१२॥
उष्ट्रानां मन्दिरं कार्यं गजाये वा वृषेध्वजे ।
पशु सद्म वृषाये च ध्वजाये वा शुभप्रदम् ॥ १३ ॥
शय्यासु वृषभः शस्तः पीठे सिंहःशुभप्रदः ।
अन्यत्र छत्रवस्त्राणां वृषाये वा ध्वजेऽपि वा ॥ १४ ॥
पादुको पानहो कार्यौ सिंहाख्येप्यथवा ध्वजे ।
उक्तानामप्यनुक्तानां मन्दिराणां ध्वजः शुभः ॥१५॥

हस्ती के लिये गृह बनाने में गज और ध्वज आय, घोड़े के लिये ध्वज खर और वृष आय, उष्ट्र के लिये गज वृष और ध्वज आय, पशु गृह के लिये वृष और ध्वज आय शय्या में वृष पीठ (पट्टा) में सिंह श्रेष्ठ होता है । अन्यत्र छत्र वस्त्रों में वृष और ध्वज पादुका उपानह (जुता) में सिंह ध्वज, जिसका कहा है अथवा जिसका नहीं कहा है वहां सब स्थानों में ध्वज आय श्रेष्ठ होता है ॥ १२–१५ ॥

तथाच च्यवनः—

महानसेऽग्निशालायांगृहेवाग्न्युपजीविनाम् ।
धूमंदद्यात्तथाश्वानंयवनान्त्यजयोर्गृहे ॥ १६ ॥
खरोवेश्यागृहेयोज्योध्वांक्षःपक्षिपतेर्गृहे ।
वृषंसिंहं गजंदद्यात्प्रासादेपुरमन्दिरे ॥ १७ ॥
वस्त्रेषुधर्मशालायां कुम्भस्तम्भेध्वजेध्वजः ।
गोगजोभूगृहेदेयोसाधारणतृणौकसि ॥ १८ ॥
मन्त्रेशस्त्रेरथेसिंहो भाण्डागारे शुभोगजः ।
धान्याम्बुस्थानगोश्वेभशालायां वृषभः शुभः ॥१९॥

रसोई गृह अग्निशाला और अग्निवृत्ति से जीवन करनेवाले को धूम्रआय यवन अन्त्यजों को श्वान, वेश्या गृह में गदहा, पक्षिपति (बहेलिया) के लिये ध्वांक्ष, प्रासाद पुर और मन्दिर में वृष सिंह और गज देना चाहिये, वस्त्र

धर्म्मशाला कुम्भस्तम्भ ध्वजा में ध्वज आय, मिट्टी के घर में साधारण तृण के गृह में गौ और गज आय, यन्त्रशस्त्र रथ में सिंह आय, भाण्डागार में गज, धान्य जलस्थान में गौ, घोड़शाला हाथिशाला में वृष आय श्रेष्ठ होता है।१६-१६।

ब्राह्मणस्य ध्वजं दद्यात् सिंहं दद्यात्तुक्षत्रिये ।
वैशस्य च वृष दद्याद्गजं शूद्रे सदार्पयेत् ॥
चर्मकारगृहे धूम्रः श्वानोऽपि रजकस्य च ।
खरो चैव तथा वेश्या ध्वांक्षे चान्यत्रजातिषु ॥

अथ गणना विचारः ।

तत्र मेलापकादौ—
कार्यपरत्वेन नामराशिप्रधानत्वमाह—

देशग्रामगृहज्वरव्यवहृतिद्युतेषु दाने मनौ,
सेवाकाकिणिवर्गसंगरपुनर्भूमेलके नामभम् ॥ १ ॥

देश, ग्राम, गृह कार्य में-ज्वरमें-व्यवहार (लेन देन) में, द्यूत (जूवा) में-दानकार्य में-मन्त्र प्रयोग में, सेवा (नौकरी) में, काकिणी विचार में, वर्ग-शुद्धि में, संग्राम में पुनर्भू मेलापक में नाम राशि ही से विचार करना चाहिये यथोक्तं ज्योतिर्निबन्धे—

देशे ग्रामे गृहे युद्धे सेवायां व्यवहारके,
नामराशेः प्रधानत्वं जन्मराशिं न चिन्तयेत् ।
तथान्यः—काकिण्यां वर्गशुद्धौ च दानेद्यूते ज्वरोदये,
मन्त्रे पुनर्भू वरणे नाम राशेः प्रधानता इति

अथगृहमेलनादौ राशिज्ञानमाह—

अश्विन्यादित्रयं मेषे सिंहे प्रोक्तं मघात्रयम् ।
मूलादित्रितयं चापे शेषभेषु द्वयं द्वयम् ॥ २ ॥

अश्विनी से ३ नक्षत्र मेषराशि, मघा से ३ नक्षत्र सिंह राशि और मूल से ३ नक्षत्र धनुराशि होता है अवशिष्ट (बाकी) राशियां दो दो नक्षत्र के होती हैं (इसमें मेलापक विवाह के तरह देखना केवल नाड़ी एक होना चाहिये)

यथोक्तम्—

मेषेश्विन्त्रितयं हरौ श्रिपितृभं मूलत्रयं धन्विनः ।
द्वे द्वे भे परतो गृहेशघटितं प्राग्वत्तु नाडयन्यथा ॥

तथाच वृद्धगर्गः-प्रभुः पण्याङ्गनामित्रं देशं ग्रामं पुरं गृहम् ।
एकनाडीस्थितं भव्यं विरुद्धं वेधवर्जितम् ॥

तथाच ज्योतिः सागरे-सेव्य सेवकयोश्चैव गृहतत्स्वामिनोरपि ।
परस्परं मित्रयोश्च एकनाड़ी प्रशस्यते ॥

इस रूप से उपर्युक्त प्रकारकरके गृह मेलापक वरकन्या के मेलापकवत् देखना केवल नाड़ी एक होना चाहिये ॥ २ ॥

अथ गृहमेलनादि शुद्धिश्चाह—

विवाहोक्तान्महादोषान्नृतेयामित्र शुद्धितः ।
रिक्ताकुजार्कवारौ च चरलग्नं चरांशकम् ॥ ३ ॥
गुरुशुक्रार्कचन्द्रेषु स्वोच्चादिबलशालिषु ।
गुर्वर्केन्दुबलं लब्ध्वा गृहारम्भः प्रशस्यते ॥ ४ ॥

विवाहोक्त महादोषों को त्याज्य करके यामित्र शुद्ध होने पर रिक्ता तिथि मङ्गल और रविवार चरलग्न चरनवांश को त्याज्य करके गुरू शुक्र चन्द्र और सूर्य के उच्चादि बलशाली होने से गृहारंभ शुभ होता है ॥ ३-४ ॥

तथा चान्यः—

सर्वं विवाहवज्ज्ञेयं विपरीता तु नाडिका ।
एकनाडी यदायातस्त्वन्यमेव न चिन्तयेत् ॥ ५ ॥

गृहमेलापक सभी विवाह के तरह जानना परञ्च नाड़ी एकही होनी चाहिये, यदि एक नाड़ी होतो अन्य बातों का विशेष विचार नहीं होता ॥ ५ ॥

अथायादिकं कदा न विचार्यमित्रत्याह—

मुहूर्तमार्त्तण्डे—

द्वात्रिंशाधिकहस्तमब्धिवदनं तार्णं त्वलिन्दादिकम् ।
नैष्वायादिकमीरितं तृणगृहं सर्वेषु मास्सुदितम् ॥ ६ ॥

३२ हाथ से अधिक जो गृह है अथवा जिसमें चार दरवाजे हों या तृण के गृह में और अलिन्द वगैरह में भी आयादि का विचार नहीं करना चाहिये ॥

एवमेव चिन्तामणौ—

यत्रदैर्घ्यं गृहादीनांद्वात्रिंशद्धस्ततोधिकम् ।
न तत्र चिन्तयेद्विद्वान् गुणानायव्ययादिकम् ॥७॥

जिस गृहका दीर्घ ३२ हाथ से अधिक हो उसमें विद्धद्गण आयादि का विचार न करैं ॥ ७ ॥

तथाच वसिष्ठः—

एकादशयवादूर्ध्वं द्वात्रिंशद्धस्तकावधि ।
तावदायादिकं चिन्त्यं तदूर्ध्वं नैवचिन्तयेत् ॥ ८ ॥

११ जव से ज्यादा और ३२ हाथ के भीतर ही आयादिक का विचार करना चाहिये इसके बाद नहीं । उपर्युक्त ६, ७, और ८ वां श्लोक अर्थवाद (प्रशंसा) वाक्य है अतः माननीय नहीं है ॥ ८ ॥

च्यवनोप्याह—

आयव्ययौ भूशुद्धिं च तृणगेहे न चिन्तयेत् ।
शिलान्यासादि न कुर्यात्तथागारेपुरातने ॥ ९ ॥

टी०—तृण गृह में आयव्यय की शुद्धि और शिलान्यासादि नहीं करना चाहिये तथा प्राचीन, (जीर्ण) गृह में शिलान्यासादि करना उचित नहीं है ॥९॥

अथ पिण्डादाद्यानयनम् तत्र रामदैवज्ञः—

पिण्डे नवाङ्काङ्गगजाग्निनागनागाब्धिनागैर्गुणिते क्रमेण ।
विभाजिते नागनगाङ्कसूर्यनागर्क्षतिथ्यृक्षखभानुभिश्च॥१०॥
आयो वारांशको द्रव्यमृणमृक्षं तिथिर्युतिः ।
आयुश्चाथ गृहेशर्क्षं गृहभैक्यं मृतिप्रदम् ॥ ११ ॥

पिण्ड को नव स्थानों में रखकर क्रम से ९।९।६।८।३।८।८।४।८ इन अङ्कों से गुण कर पुनः गुणनफल में क्रम से ८।७।९।१२।८।२७।१५।२७।१२० इनका भाग देने से जो शेष बचे सो क्रमसे आय, वार, अंश, द्रव्य, ऋण, नक्षत्र, तिथि, योग, और आयु होते हैं गृहेश और गृह का यदि एकही नक्षत्र पड़ जाय तो गृहेश की मृत्यु होती है ॥ ११ ॥

अथान्यप्रकारेणायाद्यानयनम्—

अङ्कैर्विनिघ्नं स्वगृहस्यपिण्डं
विभाजितं नागमुनीन्द्रसंख्यया ।

आयास्तथा चात्ररवीन्दुभौमा
बुधोगुरुर्भार्गवसूर्यनन्दनाः ॥ १२ ॥
वारास्सूर्यारशन्यंशाः सदावह्निभयप्रदाः ॥

अपना गृह पिण्ड को नव से गुणा करके दो स्थान में रखना पहले स्थान में आठ का भाग देने से शेष तुल्य ध्वजादि आय होंगे, दूसरे स्थान में सात का भाग देने से शेष तुल्य क्रम से रवि सोम मंगल बुध गुरू शुक्र और शनिवार होगा, जिसमें रवि मङ्गल और शनि के अंश में गृह बनाने में सदाही अग्निभय रहता है ॥ १२ ॥

गृहपिण्डरसैर्गुण्यं ग्रहैश्चापि विभाजितम् ॥
यच्छेषं तद्भवेदंशास्तस्यैशाश्चापि कीर्तिताः ॥ १३ ॥
अर्कश्चन्द्रः कुजोराहुर्जीवमन्दज्ञकेतवः ।
भृगुपुत्रक्रमेणैव अंशाधीशाः प्रकीर्तिताः ॥ १४ ॥

गृह पिण्ड को ६ छः से गुणा करके नव का भाग देना एकादि जो शेष बचैगा उसके क्रम से अंश के स्वामी होंगे जैसे १ शेष में सूर्य, २ में चन्द्रमा, ३ में मङ्गल, ४ में राहु, ५ में गुरू, ६ में शनि, ७ में बुध, ८ में केतु और ९ में शुक्र ये ग्रह अंशेश होते हैं ॥ १३-१४ ॥

अथ द्रव्यानयनम्—

पिण्डाष्टगुणितश्चात्र सूर्यैश्चापि विभाजितम् ।
अवशिष्टं भवेद्द्रव्यं तत्तन्नामाऽब्रवीदिदम् ॥ १५ ॥
वस्त्राणि शस्त्राणि च पुस्तकानि
द्रव्याणि धान्यानि वसुंधराच ।
कुटुम्ब-विद्या-पशु-वाटिकाश्च
भाण्डानि भूषाश्च धनानि द्वादश ॥ १६ ॥

गृह पिण्ड को आठ से गुणा करके १२ का भाग देना शेष तुल्य द्रव्य जानना जिसका नाम क्रमसे यों होता है। १ से वस्त्र, २ से शस्त्र, ३ से पुस्तक, ४ से द्रव्य, ५ से धान्य (अन्न), ६ से पृथ्वी, ७ से कुटुम्ब, ८ से विद्या, ९ से पशु, १० से वाटिका, ११ से भाण्ड (पात्र), भूषण और १२ से धन जानना चाहिये ॥ १५-१६ ॥

ऋक्षानयनम्—

इहाग्निगुणितं पिण्डमष्टभिर्भाजितञ्च यत् ।
शेषाङ्कमृणसंज्ञंस्यात्तस्येशाः कथितापुरा ॥ १७ ॥

पिण्ड को तीन से गुणा करके आठ से भाग देवै शेष तुल्य ऋण जानना इसका स्वामी पूर्व के रीति से समझना चाहिये ॥ १७ ॥

अथनक्षत्रानयनम्—

गृहपिण्डं गजैर्हत्वा सप्तविंशतिभिर्भजेत् ।
यच्छेषं तद्भवेद्दक्षमश्विन्यादिक्रमेण वै ॥ १८ ॥

गृहपिण्ड को आठसे गुणाकर २७ का भागदेना जो शेष होगा वह अश्विनीसे गिनकर नक्षत्र जानना चाहिये । इसी के वश जन्मकालीन तारा के सदृश तारा होता है ॥ १८ ॥

तत्र ताराफलम्—

विपत्प्रदा विपत्तारा प्रत्यरिः प्रतिकूलदा ।
निधनाख्याश्च तारास्तु सर्वथाऽनिधनप्रदाः ॥ १९ ॥

विपत्तारा से विपत्ती प्रत्यरि तारा से शत्रुता और निधन तारासे सर्वथा निधन ही होता है । अर्थात् ३, ५, ७, ये तारा अच्छे नहीं होते ॥ १६ ॥

तथाच कश्यपः—

दद्येदुःखं तृतीयर्क्षं पञ्चमर्क्षं यशःक्षयम् ।
आयुःक्षयं सप्तमर्क्षं कर्तृभाद्गृहभावधि ॥ २० ॥

तृतीय तारा दुःखद होती है पञ्चम यश को क्षय करनेवाली और सप्तम तारा निधन प्रद है ॥ २० ॥

वसिष्ठः—

गृहेशगृहयोर्भैक्यं मृतिस्स्यान्नियमेन तु ॥

गृहेश नक्षत्र गृहनक्षत्र यदि एकही होजावै तो गृहकर्ता की मृत्यु होती है ॥

अथ तिथ्यानयनम्—

गृहपिण्डं गजैर्हत्वा तिथिभिर्भागमाहरेत् ।
शेषंचात्रतिथिर्ज्ञेया वास्तुशास्त्रविशारदैः ॥ २१ ॥

ग्रन्थान्तरेऽपि—

शक्राहतंक्षेत्रफलं त्रिंशद्भक्तावशेषकम् ।
तिथिःप्रतिपदादिस्याद्दर्शरिक्तां विवर्जयेत् ॥ २२ ॥

गृहपिण्ड को ८ से गुणाकर १५ का भाग देवै शेषतुल्य तिथिजानना अथवा ग्रन्थान्तर के वचन से क्षेत्रफल (पिण्ड) को १४ से गुणाकर तीस का भागदेवै शेषतुल्य शुक्ल प्रतिपदादि तिथी होगी । इसमें अमावस्या और रिक्ता को परित्याग कर देना चाहिये ॥ २२ ॥

अथ योगानयनम् ।

गृहपिण्डं युगैर्हत्वा भक्ता नक्षत्रसंख्यया ।
विष्कुम्भादि युतिर्ज्ञेया नामतुल्यं फलंविदुः ॥ २३ ॥
अतिगण्डोधृतिश्शूलगण्डव्याघातवज्रकाः ।
परिघश्चव्यतीपातः वैधृतिर्वर्जितागृहे ॥ २४ ॥

गृहपिण्ड को ४ से गुणाकर २७ का भागदेवै तो विष्कुम्भादि योग होते हैं उनका फल नामके सदृशही है इसमें भी अतिगण्ड धृति शूल गण्ड व्याघात वज्र परिघ व्यतिपात और वैधृति गृहकर्म में त्याज्य हैं ॥ २३–२४ ॥

अथायुरानयनम्—

गृहस्यपिण्डं करिभिर्विगुण्यं विभाजितं शून्यदिवाकरेण ।
यच्छेषमायुः कथितं मुनीन्द्रैरायुष्यपूर्णे भवने शुभंस्यात् ॥२५॥

गृहपिण्ड को ८ से गुणाकर १२० का भाग देना शेष तुल्य गृहायु होगा जब तक आयुष्य की समाप्ति न हो तब तक गृह शुभ है अथवा पूर्णायु युक्त गृह शुभ होता है ॥ २५ ॥

गृहायुषि पूर्णेसति कस्मिन्दोषे गृहविनाश इतिज्ञानं राजमार्त्तण्डे—

हस्तात्मकं क्षेत्रफलं गजाहतं संवत्सरैर्भाजित लब्धकं यत् ।
तत्खेन्दुगुण्यं भवनस्य जीवनं यच्छेषितं भूतहृतं विलीयते।२६।

तथान्यः—

पृथिव्यापोनलो वायुराकाश इति पञ्चभिः ।
गृहस्यायुषिसम्पूर्णे त्रिकारो जायते ध्रुवम् ॥ २७ ॥

गृहायु पूर्ण होने पर किस दोष से गृह का विनाश होगा इसका विचार यों है। हस्तात्मक क्षेत्रफल को ८ से गुणाकर ९० का भाग देना जो लब्धि आवै उसको १० से गुणाकर गृह का आयु कहना शेष में ५ का भाग देकर जो शेष हो उसके क्रम से पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश जन्य दोष से गृह का नाश होता है, अन्य मत से भी गृहायु के पूर्ण होने पर उपर्युक्त पञ्च तत्वों के द्वारा ही गृह नाश होता है अथवा उसमें विकार पैदा होता है ॥२६-२७॥

अथ दातादिमण्डलज्ञानम्—

स्वामिहस्तप्रमाणेन दीर्घविस्तारसंयुतम् ।
नवभिस्तु हरेद्भागं शेषं मण्डलमुच्यते ॥ २८ ॥
दाता च भूपतिश्चैव क्लीवश्चौरो विचक्षणः ।
षष्ठोभोगीधनाढ्यश्च दरिद्रोधनदस्तथा ॥ २९ ॥

गृहकर्ता के हाथ से जो दीर्घ विस्तार है उन दोनों का गुणा करके नव का भाग देना शेष तुल्य मण्डल होता है यथा १ शेष में दाता, २ में भूपति, ३ में क्लीव, ४ में चौर, ५ में विचक्षण, ६ में भोगी, ७ में धनाढ्य, ८ में दरिद्र और ९ शेष में धनद (कुवेर) होता है ॥ २८-२९ ॥

तथाच ग्रन्थान्तरे—

चरणात्कर्णपर्यन्तं दण्डं सरलवंशजम् ।
पूर्वतः पश्चिमं यावदुत्तराद्दक्षिणां तथा ॥ ३० ॥
तयोश्च दण्डयोर्योगं कृत्वा भूमौ विलिख्यताम् ।
अष्टभिश्च हरेद्भागं शेषाङ्केन शुभाशुभम् ॥ ३१ ॥

प्रथमं रजकस्थानं चन्द्रवत् फलमादिशेत् ।
द्वितीयं चर्मकारस्य क्षुत्पिपासाकुलोगृही ॥ ३२ ॥

तृतीयं ब्राह्मणस्थानं जनोद्वासकरं महत् ।
चतुर्थे शूद्रकस्थानं धनधान्यप्रदायकम् ॥ ३३ ॥
पञ्चमे योगिनः स्थानं महदौदास्यकारकम् ।
षष्ठे तु गोपकस्थानं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ३४ ॥
सप्तमे क्षत्रियस्थानं सदायुद्धकरं नृणाम् ।
अष्टमे च क्रियास्थानं मरणं रोगकारकम् ॥ ३५ ॥

गृहकर्ता के चरण से कर्ण (कान) पर्यन्त सरल वंश का एक (लट्ठा) लेकर उसी दण्ड से पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक भूमि को माप लेना जितना २ हो उनका गुणा करना उसमें आठ का भाग देकर शेष अंक पर से उसका शुभाशुभ कहना चाहिये जैसे १ शेष बचे तो रजक (धोबी) का स्थान होता है इसका फल चन्द्रमा के तरह धन बढ़ै घटै । २ शेष में चर्म कारका स्थान इसमें बास करने वाले क्षुधा तृष्णा से व्याप्त रहते हैं । ३ शेष में ब्राह्मण का स्थान वह बहुत बड़ा उद्वेग करता है । ४ शेष में शूद्र का स्थान वह धन धान्य से युक्त रखता है, ५ शेष में योगी का स्थान वह बहुत उदासीन करने वाला होता है, ६ में गोप स्थान यह सर्व सिद्धि प्रदायक होता है, ७ में क्षत्रिय स्थान वह सदा युद्ध कराता है, और ८ शेष में क्रिया स्थान जानन यह मरण और रोग का करने वाला होता है ॥ ३०-३५॥

तथाच रामदैवज्ञः—

भं नागतष्टं व्यय ईरितोऽसौ ध्रुवादिनामाक्षरयुक् सपिण्डः ।
तष्टो गुणैरिन्द्रकृतान्तभूपा ह्यंशा भवेयुर्न शुभोन्तकोऽत्र॥ ३६

पिण्डागत नक्षत्र में ८ का भाग देने से जो लब्धि होती है उसका व्यय नाम है उसमें वक्ष्यमाण ध्रुवादिनामाक्षर जोड़कर पिण्ड भी जोड़ देना और तीन से भाग देना १ शेषमें इन्द्र, २ में यमराज, ३ में भूप (राजा) का अंश होता है । इसमें यमराज का अंश शुभ नहीं होता ॥ ३६ ॥

वास्तुशास्त्रेऽपि—

आयान्न्यूनतरः पक्षो व्ययस्यैषा विचारणा ।
मूलराशौ[1] व्ययेक्षिप्ते गृहनामाक्षरैर्युते ॥

१ मूलराशि शब्देन क्षेत्रफलं गृह्यते ।

ततोहरेत्त्रिभिर्भागं यच्छेषंसोंशकोभवेत् ।
इन्द्रोयमश्चराजास्याद्यमांशोनैव शोभनः ३७

आय से न्यून (कम) व्यय हो जाय तो उस गृह में वास नहीं करना चाहिये । क्षेत्र फल में व्यय को जोड़कर गृह नामाक्षर भी युक्त करना चाहिये उसमें तीन का भाग देने से जो शेष होवै क्रम से १ में इन्द्र, २ में यम, ३ में राजा का अंश होता है । जिसमें यमका अंश शुभ नहीं है ॥ ३७ ॥

टोडरानन्दे--

नक्षत्रे चाष्टभिर्भक्ते योङ्कः स स्याद्गृहे व्ययः ।
पैशाचस्तु समाये स्याद्राक्षसोप्यधिकेऽव्यये ॥ ३८ ॥

नक्षत्र में आठ का भाग देने से व्यय होगा आय व्यय सम (बराबर) होने से उसका नाम पिशाच और अधिक व्यय होने से उस गृह का नाम राक्षस होता है । नारायण भट्ट का भी यही मत है यथा " ऋक्षेसर्पहृते व्ययो गृहमसत्स्वल्पायभूरि व्ययम् " ॥ ३८ ॥

अथविवक्षितशालाध्रुवाङ्कानयनमाह—

दिक्षु पूर्वादितः शाला ध्रुवा भूद्धौ कृता गजाः ।
शालाध्रुवाङ्कसंयोगः सैको वेश्मध्रुवादिकम् ॥३९॥

पूर्व द्वार में शाला ध्रुवाङ्क १, दक्षिण में २, पश्चिम में ४. और उत्तर में ८ ये शाला ध्रुवांक होते हैं जितने दिशाओं में द्वार करना हो उतने ध्रुवाङ्क जोड़ना एक और जोड़ना वह ध्रुवादि (शाला) गृह का नाम जानना चाहिये ॥३९॥

ताथच नारायणभट्टः—

एकादिद्विगुणोत्तरा गृहमुखाद्दिक्ष्वङ्ककाः स्युः क्रमा—
च्छालाशाङ्कयुतिः कुयुग्ध्रुवमुखान्योकांसिसन्तिस्फुटम् ।

अथच वादरायणः—

द्वारादेकं द्वितयं वेदा वसवः प्रदक्षिणंदिक्षु ।
शालादिकाङ्कयोगः सैको वेश्म ध्रुवादिकं भवेत् ॥ ३९ ॥

ध्रुवं धान्यं जयं नन्दं खरं कान्तं मनोरमम् ।
सुमुखं दुर्मुखं क्रूरं रिपुदं धनदं क्षयम् ॥
आक्रन्दं विपुलं चैव विजयं चेति षोड़श ॥ ४० ॥

अव षोडश गृह का नाम कहते हैं ध्रुव १, धान्य २, जय ३, नन्द ४, खर ५, कान्त ६, मनोरम ७, सुमुख ८, दुर्मुख ९, क्रूर १०, रिपुद ११, धनद १२, क्षय १३, आक्रन्द १४, विपुल १५, और विजय १६ ये षोड़श गृह के नाम हैं ॥ ४० ॥

तिथ्यर्काष्टाष्टिगोरुद्रशक्रे नामाक्षरत्रयम् ।
भूद्यब्धीष्वङ्गदिग्वह्निविश्वेषु द्वौ नगाब्धयः ॥ ४१ ॥

पन्द्रहवां वारहवां आठवां सोलहवां नवां एकादश चैादहवां गृह का नाम ३ अक्षर का है। पहला दूसरा चैाथा पाँचवां छठा दशवां तीसरा तेरहवां गृह का २ अक्षर में और सातवां गृह का चार अक्षर का नाम है ॥ ४१ ॥

तथान्यः रत्नमालायाम्—

गृहपिण्डं युगैर्हत्वा षड्चन्द्रैर्भागमाहरेत् ।
शेषाङ्के तु स्मृतं नामध्रुवादि क्रमतोवुधैः ॥ ४२ ॥

ध्रुवञ्च धान्यञ्च जयञ्च नन्दं ।
खरञ्च कान्तञ्च मनोरमञ्च ॥
सुवक्त्रसंज्ञं खलुदुर्मुखञ्च ।
क्रूरं विपक्षं धनदं क्षयं च ॥
आक्रन्दसंज्ञं विपुलाह्वयञ्च ।
स्यात्षोड़शं तद्विजयाभिधानम् ॥ ४३ ॥

गृह पिण्ड को ८ से गुणा कर १६ का भाग देना एकादि शेष होने से ध्रुव १ धान्य २ जय ३ नन्द ४ खर ५ कान्त ६ मनोरम ७ सुमुख ८ दुर्मुख ९ उग्र १० विपक्ष ११ धनद १२ क्षय १३ आक्रन्द १४ विपुल १५ विजय १६ ये सोलह संज्ञा होते हैं ॥ ४३ ॥

तथाचान्यः—

चतुर्भिर्गुणितंक्षेत्रफलं षोडशभिर्भजेत् ।
शेषं ध्रुवादिकं ज्ञेयं सद्मनाम यथा क्रमम् ॥ ४४ ॥

अथवा गृहपिण्ड (क्षेत्रफल) को चार से गुणा कर १६ का भाग देना शेष तुल्य ध्रुवादि नाम यथा क्रम से होंगे ॥ ४४ ॥

अथवास्तुनिवेशनम्—रत्नमालायाम्।

कर्मसिद्धिः सुखायूंषि निमित्त शकुनादिभिः।
ज्ञात्वाप्रष्टुर्गृहारम्भे कीर्तयेत्समयं बुधैः ॥ ४५ ॥

लल्लः—

कालनरस्य यदङ्गं सौम्यग्रहवीक्षितं युतंवापि।
तच्चेत्स्पृशति प्रष्टा तदास्यनिर्माणमादेश्यम् ॥ ४६ ॥

प्रश्नकर्ता के कर्मसिद्धि सुख और आयु निमित्तशकुनादिकों के द्वारा जानकर पण्डितगण गृहारंभ का समय बतलावें। कालपुरुष का जो अङ्ग शुभग्रह से दिखाता और युक्त होवे उस अङ्ग को स्पर्श करके यदि प्रश्नकर्ता पूछता है तो गृह निर्माण करने को बतलाना चाहिये अन्यथा नहीं ॥ ४५-४६ ॥

अथ गृहनिर्माणे कालशुद्धिः तत्रवृद्धनारदः—

आरम्भं च समाप्तिं च प्रासादपुरसद्मनाम्।
उत्थिते केशवे कुर्यान्न प्रसुप्ते कदाचन ॥ ४७ ॥

प्रासाद पुर और गृह का आरंभ एवं समाप्ति विष्णु के उत्थान ही में करना चाहिये हरिशयन के समय कभी नहीं करना चाहिये ॥ ४७ ॥

चैत्रे शोककरं गृहादिरचितं स्यान्माधवेऽर्थप्रदम्।
ज्येष्ठे मृत्युकरं शुचौ पशुहरं तद्वृद्धिदं श्रावणे ॥
शून्यं भाद्रपदेत्विषे कलिकरं भृत्यक्षयं कार्तिके।
धान्यं मार्गसहस्ययोर्दहनभीर्माघे श्रियं फाल्गुने ॥ ४८ ॥

चैत्र मास में गृहादि बनाने से शोक, वैशाख में धनलाभ, ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ़ में पशुहरण, श्रावण में पशुवृद्धि, भाद्रपद में शून्य, आश्विन में कलह, कार्तिक में भृत्यनाश, मार्गशीर्ष, पौष में अन्नलाभ, माघ में अग्निभय और फाल्गुन में लाभ होता है ॥ ४८ ॥

यथोक्तम्—शोको धान्यं मृति पशुहती द्रव्यवृद्धिर्विनाशो।
युद्धं भृत्यक्षतिरथफलं श्रीश्चवह्नेर्भयश्च ॥
लक्ष्मीप्राप्तिर्भवति भवनारम्भकर्तुः क्रमेण।
चैत्रादूचे मुनिभिरसकृद्वास्तुशास्त्रेषु विज्ञैः ॥

अथ नारदमते मासशुद्धिः

सौम्य-फाल्गुन-वैशाख-माघ-श्रावण-कार्तिकाः ।
मासाःस्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यफलप्रदाः ॥ ४९ ॥

मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख, माघ, श्रावण, और कार्तिक में यदि गृहादि-निर्माण किया जाय तो पुत्र और आरोग्य जन्य फल को देता है ॥ ४९ ॥

तथाचान्यः—

वैशाखे श्रावणे मार्गे माघे फाल्गुनके तथा ।
कन्यायुग्मधनुर्मीनाभिन्ने सूर्ये गृहं शुभम् ॥ ५० ॥

वैशाख, श्रावण, मार्गशीर्ष, माघ और फाल्गुन में यदि कन्या मिथुन, धनु, और मीन से अन्य राशिके सूर्य हों तो गृहनिर्माण करना शुभ होता है। उपर्युक्त मासों में कन्या का सूर्य हो नहीं सकता अतः यहां कन्याभिन्न कार्तिक लेना उचित होगा। कारण कि कार्तिक में तुला वृश्चिक का सूर्य हो जाता है और सौर मास के अनुसार तुला वृश्चिक का सूर्य ग्राह्य है। लिखा भी है "कन्या रोगं तुले सौख्यं वृश्चिके धनवर्धनम् ॥ ५० ॥

अथ मतान्तरात्त्याज्यमासानाह—

आषाढ चैत्राश्वयुजोर्जमाघज्येष्ठेषु सप्रौष्ठपदेषु नूनम् ।
निकेतनानां घटनंनृपाणां योगेश्वराचार्यमते न शस्तम् ॥

योगेश्वराचार्य के मतसे आषाढ़, चैत्र, आश्विन, कार्तिक, माघ, ज्येष्ठ और भाद्रपद में गृहनिर्माण करना बहुतही निषिद्ध है ॥ ५१ ॥

अथ संक्रान्तिवशेनग्राह्यमासास्तत्र नारदः—

गृहसंस्थापनं सूर्ये मेषस्थे शुभदं भवेत् ।
वृषस्थे धनवृद्धिः स्यान्मिथुने मरणं ध्रुवम् ॥ ५२ ॥
कर्कटे शुभदं प्रोक्तं सिंहे भृत्यविवर्धनम् ।
कन्यारोगं तुले सौख्यं वृश्चिके धनवर्धनम् ॥ ५३ ॥
कार्मुके तु महाहानिर्मकरे स्याद्धनागमः ।
कुम्भे तु रत्नलाभःस्यान्मीने सद्मभयावहम् ॥ ५४ ॥

अब संक्रान्ति वश गृहनिर्माण का मास कहता हूं जैसे मेषके सूर्य में गृह बनाने से शुभद होता है ; वृषमें धनवृद्धि ; मिथुनमें निश्चय मृत्यु ; कर्कमें शुभ ; सिंहमें भृत्यों की वृद्धि; कन्या में रोग ; तुलामें सौख्य ; वृश्चिकमें धनवृद्धि ; धनु में महाहानि ; मकरमें धनागम ; कुंभमें रत्नलाभ और मीनके सूर्यमें भययुक्त गृह होता है ॥

अब सौर चान्द्रके नियमानुसार शुभाशुभ फलमें विरोध पैदा हुआ तो किसके अनुसार गृहनिर्माण करना चाहिये इसलिये वक्ष्यमाण रीतिसे गृहद्वारानुसार सौर चान्द्रमास के भेदसे गृहारंभ करना चाहिये ॥ ५२-५४ ॥

अथ रामदैवज्ञः—

कुम्भेऽर्के फाल्गुने प्रागपरमुखगृहं श्रावणे सिंहकर्क्योः ।
पौषे नक्रे च याम्योत्तरमुखसदनं गोऽजगेऽर्के च राधे ॥
मार्गे जूकालिगे सद्ध्रुवमृदुवरुणस्वातिवस्वर्कपुष्यैः ।
स्तीगेहन्त्वादित्यांहरिभविधिभयोस्तत्र शस्तः प्रवेशः ॥५५॥

फाल्गुन मासमें कुम्भके सूर्य हों ; श्रावण में सिंह कर्क के तथा पौषमें मकर के सूर्य हों तो पूर्व पश्चिम द्वारका गृह बनाना शुभ होता है। एवं वैशाखमें मेषवृष के और मार्गशीर्ष में तुला वृश्चिक के सूर्य हों तो दक्षिण उत्तर द्वारका गृह बनाना शुभ होता है। "ध्रुवमृदु" इत्यादिके अर्थका यहां प्रयोजन नहीं है अतः नहीं लिखा ॥ ५५ ॥

अथ सौरमानेनद्वारनियमाच्च गृहारम्भस्तत्र श्रीपतिः—

कर्किनक्रहरिकुम्भगतेऽर्के पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि ।
तौलिमेषवृषवृश्चिकयाते दक्षिणोत्तरमुखानि च कुर्यात् ॥५६॥
अन्यथा यदि करोति दुर्मतिर्व्याधिशोकधननाशमश्नुते ।
मीनचापमिथुनाङ्गनागते कारयेन्न गृहमेव भास्करे ॥ ५७ ॥

अब गृहद्वार के नियम से तथा केवल संक्रान्ति वश गृहारंभ कहते हैं। यथा कर्क मकर सिंह कुम्भ के सूर्यमें पूर्व पश्चिमद्वार गृह और तुलामेष वृष वृश्चिक के सूर्यमें दक्षिण उत्तर द्वारका गृह बनाना शुभ है। अन्यथा मीन धनु मिथुन कन्या के सूर्यमें जो दुर्मती गृह बनाते हैं वे रोग और शोकके भागी होते हैं ॥ ५६-५७ ॥

अथ प्रागभिहितानां सौराणां चान्द्राणां मासानाञ्चैकवाक्यतां द्वार-नियमेन विनाह–तत्ररामः—

कैश्चिन्मेषरवौ मधौ वृषभगे ज्येष्ठे शुचौ कर्कटे ।
भाद्रे सिंहगते घटेऽश्वयुजि चोर्जेऽलौ मृगे पौषके ॥
माघे नक्रघटे शुभं निगदितं गेहं तथोर्जे न सत् ।
कन्यायां च तथा धनुष्यपि न सत्कृष्णादिमासाद्भवेत् ॥ ५८ ॥

किसी आचार्य के मत से मेष के सूर्य में चैत्र, वृष में ज्येष्ठ, कर्क में आषाढ़, सिंह में भाद्रपद, तुला में आश्विन, वृश्चिक में कार्तिक, मकर में पौष, मकर कुम्भ में माघ मास गृहारंभ के लिये शुभ होता है । कार्तिक में कन्या का सूर्य शुभ नहीं होता तथा माघ में धनु का सूर्य शुभ नहीं होता । इसी आशय को लेकर वसिष्ठ ने आश्विन भी ग्रहण किया है । उनका वाक्य यों है—

"मासे तपस्ये तपसि माधवे नभसि त्विषे ।
उर्जे च गृहनिर्माणं पुत्रपौत्रधनप्रदम् ॥"

उपर्युक्त रामदैवज्ञ के वचन में मास गणना कृष्ण पक्ष से ही लिया गया है ॥ ५८ ॥

अथ जीर्णगृहनिर्माणे मासशुद्धिः—

जीर्णोद्धारे जलाग्न्यादिभयतः पतिते गृहे ।
श्रावणोर्जे तथा माघे कारयेत्सुखदं गृहम् ॥ ५९ ॥

जल और अग्नि-आदि के भय से पतित (गिरा) भया गृहादिकों का जीर्णोद्धार श्रावण कार्तिक और माघ में करने से वह गृह सुखद होता है ॥ ५९ ॥

देवालयं तडागश्च वाटिकोद्धरणं गृहम् ।
गृहमासोदितं शस्तं माघेऽपि मुनिसत्तम ॥ ६० ॥

गृहारम्भ के मासादि में तथा माघ मास में भी देवालय तड़ाग (तलाव) वाटिका (बगीचा) आदि का कृत्य शुभ होता है ॥ ६० ॥

तृणदारुगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते ।
पाषाणेष्ट्यादिगेहानि निन्द्यमासे न कारयेत् ॥ ६१ ॥
शस्तं पशुगृहं ज्येष्ठेचाश्विने धान्यनीडकम् ।
पानीयशालिका माघे चैत्रे धारागृहं तथा ॥ ६२ ॥

तृण दारु (लकड़ी) के गृह बनाने में मास शुद्धि की आवश्यकता नहीं है, पाषाण (पत्थर) और इष्टिका (ईंट) का गृह निन्द्य मास में नहीं बनाना चाहिये । ज्येष्ठ में पशु गृह, आश्विन में धान्य गृह, माघ में पौसला गृह और चैत्र में धारा (जल प्रवाह) गृह (जिसको लोक में गङ्गा महल कहते हैं) बनाना शुभ होता है ॥ ६१-६२ ॥

अथ गृहारम्भे पक्षशुद्धिः—

शुक्लपक्षे भवेत्सौख्यं कृष्णे तस्करतो भयम् ।

वसिष्ठः—

गीर्वाणपूर्वगीर्वाणमन्त्रिणोर्दृश्यमानयोः ।
शुक्लपक्षेदिवाकार्यं न निर्माणञ्च रात्रिषु ॥ ६३ ॥

शुक्लपक्ष में गृहारम्भ करने से सौख्य और कृष्ण पक्ष में तस्कर (चोर) से भय होता है, वसिष्ठ के वाक्य का अर्थ यों है गुरु शुक्र यदि उदय हों तो शुक्ल पक्ष के दिन में गृहारम्भ करना चाहिये रात्रि में नहीं (यहां रात्रि शब्द से मध्य रात्रि ग्रहण है सम्पूर्ण नहीं ॥ ६३ ॥ मध्य रात्रिका प्रमाण यह है

यथा " महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं प्रहरद्वयम् "
तथाचान्यः—अस्तदोषोऽत्र नो ग्राह्यः प्रतिदैवसिको बुधैः ।
नास्तदोषः सदा भानोर्मैत्रे चेन्दोर्न्ननीचता ।

अथ गृहारम्भे निषिद्ध तिथयः—

दारिद्र्यं प्रतिपत्कुर्याच्चतुर्थी धनहारिणी ।
अष्टम्युच्चाटनी ज्ञेया नवमी शस्त्रघातिनी ॥ ६४ ॥
अमायां राजभीतिस्याच्चतुर्दश्यां स्त्रियाः क्षयः ।

भृगुरपि—

रिक्ताष्टमीदर्शरवीन्दुभौमा-
विवर्जनीया विदुषा प्रयत्नतः ॥

प्रतिपत्तिथि को गृहारम्भ करने से दारिद्र्य, चतुर्थी को धन हानि, अष्टमी को उच्चाटन, नवमी को शस्त्रघात, अमावास्या को राजभय और चतुर्दशी को गृहारंभ करने से स्त्री के लिये हानिकारक होता है । भृगु के मत से भी रिक्ता ४, ९, १४, अष्टमी अमावास्या एवं रवि सोम और मङ्गल का वार यत्न पूर्वक त्याज्य करना चाहिये । लिखा भी है " रिक्तामार्कारवर्जिते "

तथोक्तम्—सूर्याङ्गारकवारांशा वैश्वानरभयप्रदाः ।
इतरग्रहवारांशाः सर्वकामार्थसिद्धिदाः ॥

अतः उपर्युक्त तिथि वार को परित्याग करके अवशिष्ट तिथि वार में गृहारम्भ शुभ होता है ॥

अथ नक्षत्रशुद्धिः—

चित्रानुराधामृगरेवतीषु स्वातौ च तिष्ये च तथोत्तरासु ।
ब्राह्मे धनिष्ठाशततारकासु गेहादिकारम्भणमामनन्ति ॥ ६५ ॥

चित्रा अनुराधा मृगशिरा रेवती स्वाती पुष्य उत्तरा ३ रोहिणी धनिष्ठा और शतभिष इन नक्षत्रों में गृहारंभ शुभ होता है ॥ ६५ ॥

ऋषोच्चयेऽपि—

चित्राशतभिषक्स्वाती हस्तः पुष्य पुनर्वसु ।
रोहिणीरेवतीमूल श्रवणोत्तर फाल्गुनी ॥ ६६ ॥
धनिष्ठाचोत्तराषाढा तथा भाद्रोत्तरान्विता ।
अश्विनीमृगशीर्षेद्वे अनुराधा तथैव च ॥ ६७ ॥
वास्तुपूजनमेतेषु नक्षत्रेषु करोति यः ।
समाप्नोति नरो लक्ष्मीमिति प्राह पराशरः ॥ ६८ ॥

चित्रा शतभिषा स्वाती हस्त पुष्य पुनर्वसु रोहिणी रेवती मूल श्रवण उत्तराफाल्गुनि धनिष्ठा उत्तराषाढा तथा उत्तरभाद्रपदा अश्विनी मृगशिरा और अनुराधा इन नक्षत्रों में जो वास्तुपूजन करते हैं वे मनुष्य लक्ष्मी प्राप्त करते हैं ऐसा पाराशर कहते हैं । गर्ग का वचन भी ऐसा ही है यथा—

त्र्युत्तरेऽपि च रोहिण्यां पुष्ये मैत्रे करद्वये ।
धनिष्ठाद्वितये पौष्णे गृहारम्भः प्रशस्यते ॥

तथान्यः—

हस्तादित्यशशाङ्कपुष्यपवनप्राज्येशमित्रोत्तराः ।
चित्राश्विश्रवणेषु वृश्चिकघटौ त्यक्त्वा विरिक्तेतिथौ ॥
शुक्राचार्यशनैश्चरज्ञशशिनो वारेऽनुकूले विधौ ।
सद्भिर्वेश्मनि सूतिकागृहविधिः क्षेमंकरः कीर्तितः ॥ ६९ ॥

हस्त पुनर्वसु मृगशिरा पुष्य स्वाती रोहिणी अनुराधा उत्तरा ३ चित्रा अश्विनी और श्रवण ये नक्षत्र वृश्चिक कुम्भ लग्न को परित्याग करके रिक्ता (४, ९, १४) तिथि को भी परित्याग कर शुक्र गुरु शनि बुध और सोमवार को चन्द्रमा अच्छे हों तो गृहारम्भ एवं सूतिका गृहका आरम्भ कल्याण कारक होता है ॥ ६९ ॥

वास्तुराजवल्लभे—

वास्तोः कर्मणि धिष्ण्यवारतिथयोऽश्विन्युत्तराणांत्रिकं ।
हस्तादित्रयमैत्रतोद्वयमिदं पुष्यो मृगो रोहिणी ।
निन्द्यौ भूसुतभास्करौ च शुभदा पूर्णा च नन्दातिथिः ।
तेषां वैधृतिशूलगण्डपरिघव्याघातवज्रावपि ॥ ७० ॥

मण्डन सूत्रधार के मत से वास्तु कर्म में गृहीत नक्षत्र वार और तिथि कहते हैं—अश्विनी उत्तरा ३ हस्त चित्रा स्वाती अनुराधा ज्येष्ठा पुष्य मृगशिरा और रोहिणी ये नक्षत्र शुभ हैं ॥ ७० ॥

मङ्गल और रविवार को छोड़कर शेष दिन तथा पूर्णा और नन्दा ५, १०, १५, १, ६, ११ तिथि शुभ है। वैधृति, शूल, गण्ड, परिघ, व्याघात और वज्र योग नेष्ट है ॥ ७० ॥

ग्रन्थान्तरेऽपि—

विष्कुम्भव्यतिपातकौ च न शुभौ योगाः परे शोभनाः ।
शस्तं नागववाख्यतैतिलगरं युग्मां तिथिं वर्जयेत् ॥
मौहूर्त्तं त्वथ विश्वमष्टनवमं पञ्चत्रिरागाद्रिकं ।
श्रेष्ठं च द्वितयं तुलावृषघटौ युग्मं धनुः कन्यके ॥ ७१ ॥

विष्कुम्भ और व्यतिपात योग शुभ नहीं होता शेष योग शुभ हैं। नाग वव तैतिल और गरकरण श्रेष्ठ हैं। समतिथि (२, ४, ६, ८, १०, १२, १४, ३०,) अच्छी नहीं है, १३, ८, ९, ५, ३, ६, ७, ये मुहूर्त्त और द्वितीय मुहूर्त्त भी शुभ है, तथा तुला, वृष, कुंभ, मिथुन, धनु, और कन्या लग्न उत्तम है ॥ ७१ ॥

मत्स्य पुराण के मत से वज्र, व्याघात, शूल, व्यतिपात, अतिगण्ड, विष्कंभ, गण्ड और परिघ ये आठ योग त्याज्य हैं ॥ ७१ ॥ यथा लिखा भी है:—

वज्रव्याघातशूलेषु व्यतिपातातिगण्डयोः ।
विष्कुंभ-गण्ड-परिघे चाष्टयोगे न कारयेत् ॥

विश्वकर्मप्रकाशे—

स्वातीमैत्रेऽथ माहेन्द्रे गान्धर्वे भगरौहिणे ।
स्तंभोच्छ्रायादिकर्तव्यमन्यत्र परिवर्जयेत् ॥ ७२ ॥

स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, गान्धर्व (धनिष्ठा), पूर्वाफाल्गुनी, रोहिणी, इनमें स्तंभ की उँचाई आदि करनी चाहिये, अन्यत्र नहीं ॥ ७२ ॥

द्व्यङ्गे वा स्थिरभे च सौम्यसहिते लग्नेशुभैर्वीक्षिते ।
सौम्यैर्वीर्यसमन्वितैश्च दशमे निर्माणमाहुर्बुधाः ॥
तैर्वाधीनवकेन्द्रगैः सुफलदं पापैस्त्रिषष्ठायगैः ।
क्रूरोह्यष्टमसंस्थितोपि मरणं कर्तुर्विधत्ते तराम् ॥ ७३॥

शुभग्रह से युक्त और दृष्ट, द्विस्वभाव और स्थिरलग्न में वास्तु शुभ है। शुभग्रह बलवान होकर दशमस्थान में हो तो वास्तु शुभ है अथवा शुभग्रह पञ्चम नवम और केन्द्र १, ४, ७, १० में हो और पापग्रह तृतीय षष्ठ और एकादश में हों तो गृह शुभ होता है, यदि अष्टम स्थान में पापग्रह हो तो गृहेश की मृत्यु करता है ॥ ७३ ॥

इसी वाक्य के अनुसार श्रीपति का भी वचन है यथा—

व्यङ्गेस्थिरेवाभवनेविलग्ने सौम्यग्रहैर्युक्तनिरीक्षितेच ।
कर्मस्थितैर्वीर्ययुतैश्चसौम्यैर्निर्माणमाहुर्भवनस्यसन्तः ॥
पापैस्त्रिषष्ठायगतैस्त्रिकोणे केन्द्राश्रितैस्साधुभिरालयस्य ।
वदन्तिनिर्माणमिहाष्टमस्थः क्रूरस्तु कर्तुर्मरणं करोति ॥

तथा च रामदैवज्ञः—

भौमार्कारिक्तामाद्यूने चरोनाङ्गे विपञ्चके ।
व्यष्टान्त्यस्थैःशुभैर्गेहारम्भस्त्र्यायारिगैः खलैः ॥ ७४ ॥

मङ्गल रविवार रिक्ताअमावास्या सप्तमी तिथी चरलग्न वाणपञ्चक इन सबों को त्याज्य करके अष्टम द्वादश से अतिरिक्त शुभग्रह और तृतीय षष्ठ एकादश में पाप ग्रह हों तो गृहारम्भ शुभ होता है ॥ ७४ ॥

वास्तुप्रदीपे—

शनौस्वाती सिंहलग्ने शुक्ल पक्षश्च सप्तमी ।
शुभयोगः श्रावणश्च सकाराः सप्तकीर्तिताः ॥ ७५ ॥

सप्तानां योगतो वास्तुः पुत्रवित्तप्रदः सदा ।
गजश्च धनधान्यादि पुरोतिष्ठन्ति सर्वतः ॥ ७६ ॥

शनिवार स्वातीनक्षत्र सिंहलग्न शुक्लपक्ष सप्तमीतिथि शुभयोग और श्रावण मास इन सात सकारों के योग से जो वास्तु किया जाय तो पुत्र धन सदा देता है, तथा हस्ती धन धान्य भी हमेशः वर्तमान रहता है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

वास्तुराजवल्लभे—

जीवः सौख्यमुपाकरोति भृगुजोधान्यं श्रियं चन्द्रमाः
सूर्यो वेश्मपतिश्चतुष्टयमिदं नीचास्तगं दुर्बलम् ।
जीवेलग्नमुपागते शशिसुते यामित्रगेऽर्के रिपौ
शुक्रेऽब्धौ सहजेशनौ च शरदां गेहं शतं तिष्ठति ॥ ७७ ॥

बृहस्पती बलयुक्त हो तो सौख्य, शुक्र हो तो धान्य, चन्द्रमा लक्ष्मी, और सूर्य बलवान् हो तो गृहेश को सौख्य करता है । परञ्च ये चारो ग्रह नीच में अथवा अस्तंगत हों तो दुर्बल हो जाते हैं । बृहस्पति लग्न में, बुध सप्तम में, सूर्य षष्ठ में, शुक्र चतुर्थ में और शनि तृतीय में हो तो वह गृह १०० वर्ष तक रहता है ॥ ७७ ॥

भृगुसुत इह लग्ने ह्यायगेऽर्के च खे ज्ञे ।
गृहमपि शतमब्दान्स्थायि केन्द्रे सुरेज्ये ॥
द्विगुणमपि च शुक्रे मूर्तिगे विक्रमेऽर्के ।
सुरगुरु सुतसंस्थे भूमिपुत्रे च षष्ठे ॥ ७८ ॥

शुक्र लग्न या एकादश में सूर्य बुध दशम और बृहस्पती केन्द्र में हो तो सौ वर्ष तक गृह रहे । एवं शुक्र लग्न में सूर्य तृतीय में बृहस्पति पञ्चम में और मंगल षष्ठ में हो तो वह गृह दो सौ २०० वर्ष तक रहे ॥ ७८ ॥

अथ तन्वादिस्थितग्रहफलम्—

लग्नेऽर्के वज्रपातः स्यात्कोशहानिश्च शीतगौ ।
मृत्युर्विश्वंभरःपुत्रे दारिद्र्यं रविनन्दने ॥ ७९ ॥

जीवे धर्मादिकामाः स्युः सुतोत्पत्तिश्च भार्गवे ।
चन्द्रजे कुशला शक्तिर्जनस्यायुः प्रवर्द्धते ॥ ८० ॥

लग्न में सूर्य होने से वज्रपात, चन्द्रमा से कोश हानि, मंगलसे मृत्यु, बुध से कुशल शक्ति और आयु की वृद्धी, वृहस्पति से धर्मादिकृत्य, शुक्र में पुत्रोत्पत्ति, और शनि यदि लग्न में हो तो दारिद्र्य करता है ॥७९-८०॥

द्वितीयस्थे रवौ हानिश्चन्द्रे शत्रुक्षयो भवेत् ।
भूसुते बन्धनं प्रोक्तं नानाविघ्नाश्च भानुजे ॥ ८१ ॥
बुधे द्रविणसंपत्तिर्गुरौ धर्म समागमः ।
यथा काम विनोदेन भृगौ कालं व्रजेदिह ॥ ८२ ॥

द्वितीय में सूर्य हानि करता है, चन्द्रमा शत्रु नाश करता है, मंगल बंधन करता है, बुध द्रव्य संपत्ति, वृहस्पति धर्मसमागम, शुक्र द्वितीय में यथा काम विनोद में ही काल व्यतीत करता है, और शनि नाना प्रकार का विघ्न करता है ॥ ८१-८२ ॥

सौम्यग्रहास्तृतीयस्थाः पापाअपि विशेषतः ।
सिद्धिःस्यादाचिरादेव यथाभिलषितं प्रति ॥ ८३ ॥
चतुर्थस्थानगेजीवे पूजासम्पद्यते नृपात् ।
चन्द्रजे च सदा लाभो भूमिलाभस्तु भार्गवे ॥ ८४ ॥
वियोगः सुहृदां भानौ मित्रभेदो धरासुते ।
बुद्धिनाशो निशानाथे महालाभोऽर्कनन्दने ॥ ८५ ॥

शुभग्रह यदि तृतीय में हो तो शुभ होता है, पापग्रह तृतीय का विशेष शुभद होता है. शीघ्रही मनोरथ पूर्ण करता है । चतुर्थ का गुरु राजद्वार से पूजन कराता है ।।

चतुर्थ का चन्द्रमा सदा लाभ करता है, शुक्र भूमिलाभ, सूर्य मित्र वियोग, मङ्गल मित्रभेद, चन्द्रमा बुद्धिनाश, चतुर्थ का शनि विशेष लाभ करता है ।

पञ्चमस्थे सुराचार्ये मित्रवस्त्र धनागमः ।
शुक्रे पुत्रधनप्राप्तिर्हेमाभरणमिन्दुजे ॥ ८६ ॥

सुतदुःखं सदा सूर्ये शशाङ्के कलहप्रियः।
भौमे काम विरोधः स्याच्छनौ कामविमर्दनम् ॥८७॥

पञ्चम में गुरू हो तो मित्र वस्त्र धन का आगम करता है शुक्र पञ्चम हो तो पुत्र धन का लाभ, बुध हो तो सुवर्ण भूषण की प्राप्ति होती है, सूर्य पञ्चम में हो तो पुत्र जन्य दुःख, चन्द्रमा हो तो कलह प्रिय, मङ्गल हो तो अकाम-विरोध और शनि पञ्चम हो तो काम विमर्दन होता है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

षष्ठस्थानगते सूर्ये पूजासम्पद्यते नृपात्।
चन्द्रे पुष्टिः कुजे प्राप्तिः सौरे शत्रुबलक्षयः ॥ ८८ ॥
गुरौ चार्थोदयः प्रोक्तो भृगौ विद्यागमो भवेत्।
मानज्ञानस्य कौशल्यं नक्षत्रपतिनन्दने ॥ ८९ ॥

षष्ठ स्थान में सूर्य हो तो राजा से पूजा होवै, चन्द्रमा हो तो तुष्टि, मङ्गल हो तो लाभ, शनि हो तो शत्रु के बल का नाश, गुरू हो तो अर्थोदय, शुक्र हो तो विद्यागम और बुध हो तो मान ज्ञान में कुशल होता है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

लग्नात्सप्तमगे जीवे बुधे दैत्य पुरोहिते।
गज-वाजि-धरित्रीणांक्रमाद्भोगं विनिर्दिशेत् ॥ ९० ॥
भास्करे कीर्तिभङ्गस्यात्कुजे विग्रहमादिशेत्।
चन्द्रे मन्दे युते मान्द्यं हीनाङ्गत्वं भयं तथा ॥ ९१ ॥

लग्न से सप्तम में गुरु हो तो हाथी, बुध हो तो घोड़ा, शुक्र हो तो भूमि का भोग करनेवाला होता है, सूर्य सप्तम हो तो कीर्ति भङ्ग, मङ्गल हो तो विग्रह, चन्द्रमा और शनि हो तो रोग अङ्गभङ्ग और भय होता है ॥ ९० ॥ ९१ ॥

निधनस्थे सहस्रांशौ शत्रुता विपदः सदा।
हानिः शीतमयूखे च मङ्गले रविजे भयम् ॥ ९२ ॥
बुधे मानधनप्राप्तिः सुरेज्ये विजयोमहान्।
शुक्रः स्वजनतो दद्यात्सुखं पुंसां विशेषतः ॥ ९३ ॥

अष्टम में सूर्य हो तो शत्रुजन्य विपत्ति सदा रहे, चन्द्रमा हो तो हानि, मङ्गल-शनि से भय, बुध से मानधन की प्राप्ती, बृहस्पतिसे विशेष विजय, और शुक्र यदि अष्टम हो जाय तो अपने जन के द्वारा सुख देता है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

नवमस्थानगे जीवे बुद्धिभाग्यविवर्द्धनम् ।
बुधे विविधभोगाप्तिः शुक्रे मन्दोदयो भवेत् ॥ ६४ ॥
चन्द्रे धातुक्षयः प्रोक्तो धर्महानिश्च भास्करे ।
कुजे सामर्थ्यहानिःस्याद्रविजे कामदूषणम् ॥ ६५ ॥

नवम में बृहस्पति होतो बुद्धि और भाग्य की वृद्धी, बुध हो तो विविध भोग की प्राप्ति, शुक्र हो तो साधारण भाग्योदय, चन्द्रमा हो तो धातुक्षीणता, सूर्य हो तो धर्म की हानि, मङ्गल हो तो शक्ति की हानि, और शनि यदि नवम में हो तो काम दूषण करता है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

दशमस्थानगे शुक्रे शयनासन सिद्धयः ।
सुराचार्ये महत्सौख्यं विजयश्च तथा बुधे ॥ ६६ ॥
मार्त्तण्डे धन वृद्धिश्च चन्द्रे कोषविवर्धनम् ।
भौमे बलं सदा पुंसां शनौ कीर्तिविलोपनम् ॥६७॥
लाभस्थानगताः सर्वे प्रयच्छन्ति शुभं फलम् ।
व्यये सर्वे सदौदास्यं प्रदिशन्ति विशेषतः ॥ ६८ ॥

दशम स्थान में शुक्र हो तो शयनासनकी वृद्धि, गुरु हो तो विशेष सौख्य, बुध हो तो विजय, सूर्य हो तो धन की वृद्धि, चन्द्रमा हो तो कोष (खजाना) की वृद्धि मङ्गल हो तो बलवान्, शनि हो तो कीर्तिलोप होता है । एकादश में सभी ग्रह विशेष शुभफल को देते हैं । और द्वादश में सभी ग्रह यदि हों तो सदाही विशेष उदासी रखते हैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

जीवार्क विच्छुक्रशनैश्चरेषु
लग्नारियामित्रसुखात्रिगेषु ।
स्थितिः शतंस्याच्छरदां सितार्का-
रेज्येतनुत्र्यङ्गसुते शते द्वे ॥ ६९ ॥

अथ योगजस्तत्र रामदैवज्ञः—

यदि गुरुलग्न में सूर्य सप्तम में बुध चतुर्थ में और शनि तृतीय हो तो वह गृह १०० वर्ष तक रहता है, तथा शुक्र लग्न में सूर्य तृतीय में और मङ्गल षष्ठम में हो तो वह गृह २०० वर्ष तक रहता है ॥ ६९ ॥

लग्नाम्बरायेषुभृगुज्ञभानुभिः
केन्द्रेगुरौवर्षशतायुरालयम्।
बन्धौगुरुर्व्योम्निशशी कुजार्कजौ-
लाभे तदाशीतिसमायुरालयम् ॥१००॥

लग्न में शुक्र दशम में बुध एकादश में सूर्य और केन्द्र में गुरु हों तो वह गृह १०० वर्ष तक रहता है। चतुर्थ गुरु दशम चन्द्रमा मङ्गल और शनि एकादश में हों तो उस गृहकी आयु ८० वर्ष की होती है ॥ १०० ॥

स्वोच्चे शुक्रे लग्नगे वा गुरौ वेश्मगतेऽथवा।
शनौ स्वोच्चे लाभगे वा लक्ष्म्यायुक्तं चिरं गृहम् ॥१०१॥

अपने उच्चका शुक्र लग्न में अथवा बृहस्पति चतुर्थ में, वा अपने उच्चका शनि एकादश में हो तो वह गृह बहुत काल तक लक्ष्मी से युक्त रहै ॥ १०१ ॥

शत्रुक्षेत्रगतैः खेटैः नीचस्थैर्वापराजितैः।
प्रारम्भे यस्य भवने लक्ष्मीस्तस्य विनश्यति ॥१०२॥
द्यूनाम्बरे यदैकोऽपि परांशस्थो ग्रहो गृहम्।
अब्दान्तःपरहस्तस्थं कुर्याच्चेद्वर्णपोबलः ॥१०३॥

यदि तीन से अधिक ग्रह शत्रु क्षेत्र में वा नीच में हों या पराजित हों उस समय गृह बनाया जाय तो उस गृह की लक्ष्मी नाश हो जाती है। वा सप्तम या दशम में कोई ग्रह होकर शत्रु के अंश में हो तो वह गृह एक वर्ष के भीतरही दूसरेके हस्तगत हो जाय यदि वर्णपति निर्बल हों तो ॥१०२-१०३ ॥

पुष्यध्रुवेन्दुहरिसर्पजलैस्सजीवै-
स्तद्वासरेण च कृतं सुतराज्यदं स्यात्।
द्वीशाश्वितक्षवसुपाशिशिवैःसशुक्रे
र्वारेसितस्य च गृहं धनधान्यदं स्यात् ॥१०४॥

पुष्य उत्तरा ३ रोहिणी मृगशिरा श्रवण आश्लेषा पूर्वाषाढ़ ये नक्षत्र बृहस्पति से युक्त होकर रहे और गुरुवार हो तो उसमें बनाया हुआ गृह पुत्र और राज्य को देता है। विशाखा अश्विनी चित्रा धनिष्ठा शतभिषा और आर्द्रा

ये नक्षत्र शुक्र से युक्त होकर रहे और शुक्रकाही दिन हो तो निर्माण किया हुआ गृह धनधान्य को देता है । इसी वाक्य के अनुसार और भी वचन हैं ॥१०४॥

तथाच नारदः—

श्रवणाषाढयोश्चैव रोहिण्यां चोत्तरात्रये ।
गुरुवारे कृतं वेश्म राजयोग्यमिहोच्यते ॥
तद्गृहे जातपुत्रस्य राज्यं भवति निश्चितम् ।

एवमेव वसिष्ठः—

इज्योत्तरात्रयाहीन्दु विष्णुधातृजलोडुषु ।
गुरुणासहितेष्वेषु कृतं गेहं श्रियायुतम् ॥
अश्विनी शततारासु विशाखाभाद्रचित्रके ।
धनिष्ठादितिसंयुक्ते तथा वै शुक्रवासरे ॥
गृहंनाटकशालाख्यं देवागारं कृतं शुभम् ।
तद्वेश्मनि प्रजातस्तुकुवेरसदृशोभवेत् ॥

सौरैः करेज्यान्त्यमघाम्बुमूलैः
कौजेह्नि वेश्माग्नि सुतार्तिदं स्यात् ।
सज्ञैः कदास्रार्यमतत्त्वहस्तैः
ज्ञस्यैववारे सुखपुत्रदं स्यात ॥ १०५ ॥

हस्त पुष्य रेवती मघा पू. षा. और मूल ये नक्षत्र मंगल से युक्त होकर रहें और मंगल का वार भी हो तो इसमें बनाया हुआ गृह अग्नि और पुत्रजन्य कष्ट को देता है । एवं रोहिणी अश्विनी उ. फा. चित्रा. हस्त ये नक्षत्र बुध से युक्त होकर रहै और बुधका वार भी होतो इसमें बनाया गृह सुख और पुत्र को देता है ॥ १०५ ॥.

नारदः—

मूलं च रेवतीचैव कृत्तिकाषाढमेव च ।
पूर्वाफाल्गुनि हस्तश्च मघा चैवतुसप्तके ॥
एषु भौमेन युक्तेषु वारेतस्यैव वेश्मयत् ।
अग्निनादह्यतेकृत्स्नं पुत्रनाशश्च जायते ॥

वसिष्ठः—

हस्तार्यमत्वाष्ट्रदस्र चतुरास्येन्दुभेषु च ।
बुधेन सहितेष्वेषु धनपुत्रसुखोद्भवः ॥

अजैकपादहिर्बुध्न्यशक्रमित्रानिलान्तकैः ।
स मन्दैर्मन्दवारेस्याद्रक्षोभूतयुतं गृहम् ॥ १०६ ॥

पूर्व भाद्रपदा उत्तर भाद्रपदा ज्येष्ठा अनुराधा स्वाती भरणी इनमें किसी नक्षत्र का शनि हो और शनि का वार हो तो इसमें यदि गृह बनावै तो वह गृह राक्षस और भूत से युक्त रहता है ॥ १०६ ॥

तथाच वसिष्ठः—

अजपाद्दितयेयास्यमित्रेन्द्रानिलभेषु च ॥
यत्कृतं शनिसंयुक्ते दह्यते यत्न राक्षसैः ॥

नारदोऽपि—

ज्येष्ठानुराधकेचैव भरणी स्वाति पूर्वभे ॥
धनिष्ठास्वपि ऋक्षेषु शनिस्तिष्ठेद्दिनस्य च ॥
क्रपणेनामतः प्रोक्तोधनधान्यादिके गृहे ॥
पुत्रोजातोथवा तस्मिन्गृह्यते यत्न राक्षसैः ॥

गृहेश तत्स्त्रीसुखवित्तनाशो-
ऽर्केन्द्वीज्यशुक्रेविबलेऽस्तनीचे ।
कर्तुः स्थितिर्नोविधुवास्तुनोर्भे-
पुरःस्थितेपृष्ठगतेखनिः स्यात् ॥ १०७ ॥

सूर्य चन्द्रमा वृहस्पति और शुक्र इन चारों में कोई भी यदि निर्बल अस्तंगत अथवा नीच में हो तो क्रम से गृहेश गृहेश की स्त्री सुख और धन का नाश करता है । चन्द्रमा और गृहका नक्षत्र ये दोनों यदि आगे पड़े तो उस गृह में गृहकर्ता की स्थिति नहीं होती, उपर्युक्त दोनों नक्षत्र यदि पीछे पड़े तो चोरी का भय होता है ॥ १०७ ॥

श्रीपतिरपि—

रवौ गृहेशो गृहिणी शशाङ्के धनं सिते देवगुरौ च सौख्यम् ।
विनाशमायान्ति बलेनहीने नीचस्थिते वास्तमुपागते वा १०८॥

वसिष्ठः—

नीचे शत्रुगते जीवे शुक्रे वा यदि वा बुधे ।
शशाङ्के वा कृतं गेहमातिनिःस्वत्वमाप्नुयात् ॥ १०९ ॥

ब्रह्मशम्भुः—

गृहायलब्धऋक्षेषु यत्रऋक्षे च चन्द्रमा ।
शलाकासप्तकंदेयं कृत्तिकादिक्रमेण च ॥ ११० ॥
वामदक्षिणभागेतु प्रशस्तं शांतिकारकम् ।
अग्रे पृष्ठे न दातव्यं यदीच्छेच्छ्रेयमात्मनः ॥ १११ ॥

भृगुः—

चक्रे सप्तशलाकाख्ये कृत्तिकादीनि विन्यसेत् ।
ऋक्षं चन्द्रस्य वास्तोश्च पुरः पृष्ठे च नो शुभम् ॥ ११२ ॥

गृह पिण्ड द्वारा जो नक्षत्र आवै और चन्द्र नक्षत्र जो हो ये दोनों नक्षत्र (कृत्तिकादि सात २ नक्षत्र पूर्वादि दिशाओं के क्रमसे सप्तशलाका चक्र के तरह देने से) यदि वाम वा दक्षिण हो तो शुभ होता है । और आगे पीछे अशुभ होता है । यही प्रकार भृगु का भी है--जैसे सप्तशलाका चक्र में कृत्तिका से सात २ नक्षत्र पूर्वादि चारो दिशाओं में दिये जाते हैं वैसाही यहां भी देना और वास्तु चन्द्रमा का नक्षत्र यदि आगे वा पीछे हो तो शुभ नहीं होता है ॥११२॥

प्रारम्भकाले यदि मन्दभौमौ लाभाश्रितौ देवगुरुश्चतुर्थे ।
चन्द्रोदये चेच्छरदामशीतिः स्थितिर्नियुक्ता भवनस्यसद्भिः ११३

गृहारम्भ के समय यदि शनि मङ्गल एकादश वृहस्पति चतुर्थ और चन्द्रमा दशम हो तो उस गृह का आयु ८० वर्ष होता है ॥ ११३ ॥

लग्नं कर्कटमाश्रिते हिमकरे देवार्चिते केन्द्रगे
लक्ष्मीवद्भवनं खगैश्च सुहृदः स्वांशोच्चभागैस्तथा ।
नीचांशैरपि निर्धनं तु खचरो ह्येकः परांशास्थितः
यामित्रे दशमेऽब्दमध्यत इदं गेहं परैर्नीयते ॥११४॥

कर्क लग्न में चन्द्रमा और केन्द्र में वृहस्पति हो अवशिष्ट ग्रह अपने मित्र या उच्च के अंश में हों तो गृह लक्ष्मीयुक्त होता है । यदि ग्रह नीच में हो तो निर्धनता होती है तथा एक ग्रहभी दशम या सप्तम में होकर शत्रु के अंश में हो तो वह गृह एक वर्ष के भीतरही दूसरेके हाथ में चला जाता है ॥ ११४ ॥

भृगुर्विलग्नेयदिमीनसंस्थः
कर्केगुरुस्तुर्यगृहं गतश्चेत् ।
शनिस्तथैकादशगस्तुलायां
गेहं चिरं श्रीसहितं तदा स्यात् ॥ ११५ ॥

यदि मीन में होकर शुक्र लग्न में हो या कर्कका वृहस्पति चतुर्थ में हो अथवा तुला का शनि एकादश हो तो वह गृह सदैव धनयुक्त रहता है ॥११५॥

॥ इति योगजः ॥

अथ वास्तुचक्रम्—

सूर्यभाद्गणयेद्वास्तुचक्रं च दिनभावधि ।
अश्व-रुद्र-दशर्क्षञ्च ह्यशुभं शुभदं क्रमात् ॥११६॥

वास्तु चक्र में सूर्य नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गणना करना उसमें पहले ७ नक्षत्र अशुभ वाद ११ नक्षत्र शुभ उसके वाद १० नक्षत्र तक अशुभ होता है ॥११६॥

अथ तत्रैव वृषभचक्रम् राजमार्त्तण्डे—

वृषचक्रं वृषाकारं सर्वावयव संयुतम् ।
यस्मिन्-ऋक्षेस्थितो भानुस्तत्रादौ त्रीणिमस्तके ॥११७॥
अग्रपादे च चत्वारि पुनश्चत्वारि पश्चिमे ।
पृष्ठे त्रीणि च धिष्ण्यानि कुक्षौ चत्वारि दक्षिणे ॥११८॥
पुच्छेत्रीणि च धिष्ण्यानि कुक्षौ चत्वारि वामके ।
मुखेत्रीणि च धिष्ण्यानि अष्टाविंशति तारकाः ॥ ११९ ॥

वृष (वैल) के आकार का वृषभ चक्र सभी अङ्गों से युक्त वनाना इसके बाद जिस नक्षत्र पर सूर्य हों उससे तीन नक्षत्र उसके सिर पर देना उसके वाद ४ नक्षत्र अगले पाद में, वाद इसके ४ नक्षत्र पिछले पाद में, इसके वाद ३ नक्षत्र पृष्ठ पर, वाद ४ नक्षत्र दक्षिण कुक्षि पर, वाद ३ नक्षत्र पुच्छपर, इसके वाद ४ नक्षत्र वाम कुक्षिपर, वाद ३ नक्षत्र मुखमें देने से यह २८ नक्षत्र होते हैं॥११७-११९॥

फलमपि तत्रैव—

शिरसा वज्रपातः स्यादुद्वेगश्चाग्र पादयोः ।
स्थिरत्वं पश्चिमे पादे पृष्ठे चैव धनागमः ॥ १२० ॥

दक्ष कुक्षौ जयोलाभः पुच्छेस्वामि विनाशनम् ।
वाम कुक्षौ च दारिद्र्यं मुखे पीडानिरन्तरम् ॥ १२१ ॥

सूर्यभात्तुत्यजेत्सप्त ततश्चैकादशे धनम् ।
ततोऽन्यभेषु दुष्टंस्यादितिवास्तुनिकीर्तनम् ॥ १२२ ॥

शिरके नक्षत्र में गृहारंभ करने से वज्रपात अगले पाद में उद्वेग पिछले पाद में स्थिरता पृष्ठ में धनागम दक्षिण कुक्षि में जयलाभ पुच्छ में स्वामिनाश वामकुक्षि में दरिद्र मुखके नक्षत्र में निरन्तर पीड़ा इसी तरह सूर्य के नक्षत्र से ७ नक्षत्र अशुभ बाद ११ में धन इसके बाद सब नक्षत्रों में वास्तु कृत्य दुष्ट होता है इसी आशय को लेकर मुहूर्त्तचिन्तामणि में रामदैवज्ञ ने भी लिखा है ।

तथा च तद्वाक्यम्—

गेहाद्यारम्भेऽर्कभाद्वत्सशीर्षे रामैर्दाहोवेदभैरग्रपादे ।
शून्यं वेदैः पृष्ठपादे स्थिरत्वं रामैः पृष्ठे श्रीयुगैर्दक्ष कुक्षौ ॥
लाभो रामैः पुच्छगैः स्वामिनाशो वेदैर्नैःस्व्यं वामकुक्षौ मुखस्थैः ।
रामैः पीडा सन्ततं चार्कधिष्ण्याद्दश्चैरुद्गैर्दिग्भिरुक्तं ह्यसत् सत् ॥

अथवास्तु पुरुषस्य कुत्रस्थलेस्थितिरिति निर्णयः—

सवेदास्तिथयोद्विघ्ना नामाक्षर समन्विता ।
त्रिभिश्चैवहरेद्भागं शेषः पुरुष उच्यते ॥ १२३ ॥

एके च वसते स्वर्गे द्वाभ्यां पातालमेव च ।
शून्ये तु मृत्युलोके स्यादितिपाराशरोऽब्रवीत् ॥१२४॥

स्वर्गेवासे भवेल्लाभः पातालेषु श्रियः सदा ।
मृत्युलोके भवेन्मृत्युर्विचिन्त्य गृहमारभेत् ॥ १२५ ॥

तिथिमें ४ मिलाकर उसको दूना करना उसमें नामाक्षर जोड़ कर ३ का भाग देना १ शेष में स्वर्ग २ में पाताल और शून्य शेष में मर्त्यलोक में वास्तु पुरुष का वास कहना चाहिये यह पाराशर का कथन है । स्वर्ग में लाभ पाताल में निरन्तर लक्ष्मी प्राप्ति और मृत्यु लोक में वास्तु पुरुष के रहने से मृत्यु होता है इन बातों को विचार कर गृहारम्भ करना चाहिये ॥

शिल्पशास्त्रेऽपि—

वास्तोः शिरसि पुच्छे च याम्यकुक्षौ च पृष्ठतः ।
आयुः कामःखनेन्नैव वामकुक्षौ खनिः शुभा ॥१२६॥

वास्तु पुरुषके शिर पुच्छ याम्यकुक्षि और पृष्ठभाग में आयुः कामना वाले पुरुष खात न दें अतः वाम कुक्षि में खात शुभ होता है ॥ १२६ ॥

तत्रैव लल्लः—

त्यजेद्दशशिरोभागे ह्यग्रे सप्तदशांशकान् ।
मध्येनाभिंविजानीयात्तत्रशङ्कुं निवेशयेत् ॥ १२७ ॥
अस्थिरस्य शिरो यत्र वास्तोस्तद्गणयेत्करैः ।
दैर्घ्यं वा विस्तृतिंचैव कृत्वाष्टाश्विमितांशकान् ॥१२८॥

वास्तु पुरुष के अंगमें २८ भाग करके शिरके तरफ दसभाग और पुच्छके तरफ १७ भाग परित्याग करके मध्य याने अवशिष्ट भागमें शंकुन्यास करना चाहिये । इसी वाक्यको पुष्ट करनेवाला दूसरा श्लोक है ॥ १२७-१२८ ॥

अथ कूर्मचक्रम्-ज्योतिः प्रकाशे—

तिथिस्तु पञ्चगुणिता कृत्तिकाद्यर्क्षसंयुता ।
तथा द्वादशमिश्रा च नवमाङ्केन भाजिता ॥१२९॥
जले वेदामुनिश्चन्द्रस्थले पञ्चद्वयं वसु ।
त्रिषष्ठनवचाकाशे त्रिविधं कूर्मलक्षणम् ॥१३०॥
जले लाभस्तथा प्रोक्तः स्थले हानिस्तथैव च ।
आकाशेमरणं प्रोक्तमिदं कूर्मस्यचक्रकम् ॥१३१॥

तिथी को ५ से गुणाकर कृत्तिकादि नक्षत्र संख्या को जोड़ देना उसमें १२ और मिलाना और नवका भाग देना । यदि ४, ७, १, शेष बचे तो जलमें, ५, २, ८ शेष बचे तो स्थलमें, ३, ६, ९, शेष बचे तो आकाश में कूर्मवास करता है । जलमें रहने से लाभ, स्थल में हानि, और आकाश में कूर्म के रहने से मरण होता है यही कूर्म चक्र है ॥ १२९-१३१ ॥

अथ शङ्कु लक्षणम्—

स्याच्चतुर्विंश विंशाष्टि द्वादशङ्गुलकैः क्रमात् ।
विप्रादीनां शङ्कुमानं स्वर्णवस्त्राद्यलंकृतम् ॥१३२॥
खदिरार्जुन शालोत्थयुगपत्रतरुद्भवम् ।
रक्तचन्दन पालाश रक्तशाल विशालजम् ॥१३३॥

निम्ब कारञ्ज कुटजं वैष्णवं विल्ववृक्षजम् ।
शङ्कुं त्रिधाविभज्यादौ चतुरस्रं ततः परम् ॥१३४॥
अष्टास्रं च तृतीयांशमजस्रमृज्ववर्णकम् ।
एवं लक्षणसंयुतं परिकल्प्यं शुभेदिने ॥१३५॥

ब्रह्मणादि वर्णों के क्रम से २४, २०, १६, और १२ अंगुल का शंकु बनाकर उसको सुवर्ण वस्त्रादि से भूषित करना चाहिये, और शंकु भी खदिर, अर्जुन शालवृक्ष, निम्ब, करंज, कुटज, और विल्व वृक्ष का होना चाहिये। शंकुमें तीन भाग करके चार कोण, आठ कोण अथवा गोला या सीधा इन इन लक्षणों से युक्त शुभ दिनमें शंकु निर्माण करना चाहिये ॥ १३२–१३५ ॥

अथ मण्डलेशानयनम्—

स्वामि हस्त प्रमाणेन दीर्घविस्तार संयुतम् ।
द्विगुणं चाष्टभिर्भक्तं मण्डलाधिप उच्यते ॥१३६॥
इन्द्रो विष्णुर्यमोवायुः कुवेरो धूर्जटिस्तथा ।
विधाता विघ्नराजश्च मण्डलेशाः प्रकीर्तिताः ॥१३७॥
इन्द्रः सौख्यं यशोविष्णुर्यमोदुःखं निरन्तरम् ।
वायुरुत्पाटनं चैव कुवेरो धनदस्तथा ॥१३८॥
धूर्जटिः कलहोनित्यं धाता सौख्य प्रवृद्धिदम् ।
सर्वसिद्धिं गणाधीशः फलमुक्तं विचक्षणैः ॥१३९॥

गृहकर्त्ता के हाथसे दीर्घ विस्तार के मान को आपस में गुणा कर उसको २ से गुण देना और आठ का भाग देना शेष तुल्य मण्डलेश होंगें यथा १ शेषमें इन्द्र, २ में विष्णु, ३ में यम, ४ में वायु, ५ में कुवेर, ६ में धूर्जटि (शिव) ७ में ब्रह्मा, ८ में गणेश, मण्डलेश होंगे। इन्द्रमें सौख्य, विष्णु में यश, यम में निरन्तर दुःख, वायु में उत्पाटन, कुवेर में धनलाभ, शिवमें कलह, ब्रह्मामें सौख्य-वृद्धि, और गणेशमें सर्व सिद्धि होती है ॥ १३६–१३९ ॥

अथ गृहात्प्रतीच्यां दक्षिणस्यां वा आयादिशुद्धं गृहं नविधेयमित्यत्र माण्डव्यः—

वास्तुक्षेत्रादवाक्प्रत्यग्दिशिनैव गृहं रचेत् ।
उत्तरस्यान्तु पूर्वस्यां गृहात्सर्वं गृहं रचेत् ॥१४०॥

सद्मोच्चाद्द्विगुणाधिकान्तरभुवि प्रत्यक् तथा दक्षिणे ।
गेहं चाशुरचेच्छुभायभवनं सत्कर्मणांसिद्धये ॥
माण्डव्यादि मुनीन्द्रगर्ग प्रभवा एवं वदन्तीति च ।
संशोध्यैव गृहं रचेच्चसुधिया भव्यादि कर्माखिले ॥१४१॥

पहले के गृह से दक्षिण और पश्चिम दिशा में गृह नहीं बनाना, उत्तर और पूर्व में ही गृह बना सकते हैं यदि दक्षिण पश्चिम बनाना भी हो तो गृह का जितना ऊँचाई हो उससे दूना पश्चिम दक्षिण हट कर घर बना सकते हैं यही वचन माण्डव्यादि मुनिगण और गर्गादि ऋषियों का है, इस रूप से संशोधन करके जो गृह बनाते हैं उनका सभी कार्य कल्याणमय होता है ॥१४०-१४१॥

अथाजिराऽनयनम्—

दीर्घविस्तार संख्यैक्ये चन्द्रैश्चगुणिते तथा ।
नवभिस्तुहरेद्भागं शेषमाजिरमुच्यते ॥ १४२ ॥

फलञ्च—

दाता विचक्षणोभीरुः कलहो नृपदानवौ ।
क्लीवश्चौरोधनी चेति नामतुल्यंफलं स्मृतम् ॥१४३॥

दीर्घ विस्तार को गुणाकर नव का भाग देना शेष तुल्य अङ्गण के फल होते हैं यथा १ में दाता, २ में विचक्षण, ३ में भीरु ४ में कलह, ५ में नृप, ६ में दानव, ७ में क्लीव, ८ में चोर और ९ में धनी इसका फल नाम सदृश होता है ॥ १४२-१४३ ॥

प्रकारान्तरेणफलम्

तस्कर भोग विचक्षण दाता नृपति नपुंसक धनदश्च ।
दरिद्रभयदाताह्येते कथिता नवभक्तफलं सौम्यैः ॥१४४॥

इसका अर्थ स्पष्ट ही है ॥ १४४ ॥

अथ राशिपरत्वेनद्वारनिर्णयः—

पूर्वे ब्राह्मणराशीनां वैश्यानां दक्षिणे शुभम् ।
शूद्राणां पश्चिमेद्वारं नृपाणामुत्तरेमतम् ॥१४५॥

ब्राह्मण राशि के लिये पूर्वद्वार वैश्य राशि के लिये दक्षिण द्वार शूद्र राशि के लिये पश्चिम द्वार और क्षत्रिय राशि के लिये उत्तर द्वार शुभ है ॥ १४५ ॥

अथ द्वारनिर्माणार्थं महेश्वरः—

सर्वद्वारइहध्वजोवरुणदिग्द्वारं च हित्वा हरिः ।
प्राग्द्वारो वृषभो गजो यम सुरेशाशामुखः स्याच्छुभः॥१४६॥

ध्वज आय को सर्व दिक्द्वार शुभ होता है, सिंह को पश्चिम द्वार छोड़ कर अवशिष्ट शुभ है, एवं वृष आय को पूर्व गज को दक्षिण और पूर्व शुभ होता है, इसी मत के आधार पर रामदैवज्ञ ने भी लिखा है—यथा "ध्वजादिकाः सर्वदिशिध्वजे मुखं कार्यं हरौ पूर्व यमोत्तरे तथा ॥ प्राच्यां वृषे प्राग्यमयोर्गजेऽथवा पश्चादुदक् पूर्व यमे द्विजादितः" ॥ १४६ ॥

अथ वर्णायपरत्वेन द्वारनिर्णयः—

ध्वजे प्रतीच्यां मुखमग्रजाना—
मुदङ्मुखं भूमिभृतां च सिंहे ।
विशोवृषे प्राग्वदनं गजेतु
शूद्रस्य याम्यां हि समामनन्ति ॥१४७॥

ध्वज आय और ब्राह्मण वर्ण को प्रतीचि (पश्चिम) मुख, क्षत्रिय वर्ण सिंह आय को उत्तर मुख, वैश्य वर्ण वृष आय को पूर्व मुख और गज आय शूद्र जाति को दक्षिण मुख द्वार शुभ होता है ॥ १५५ ॥

यथा च्यवनः—

ध्वजे परास्यं विप्राणां राज्ञां सिंहेऽप्युदङ्मुखम् ।
गजे शूद्रस्य याम्यास्यं विशःपूर्वामुखं वृषे ॥

अथ भित्तिप्रसङ्गेनद्वारमाह—मार्त्तण्डे—

पूर्वादौ त्रिषडर्थपञ्चमलवेद्वाः सव्यतोङ्कोद्धृते ।
दैर्घ्येद्व्यंश समुच्छ्रिताऽधिलवके सर्वासुदिक्षूदिता ॥

गृह दैर्घ्य* में नव भाग करके पूर्वाभिमुख द्वार करना हो तो वाम भाग से दो भाग छोड़ कर तीसरे चौथे अंश में, दक्षिणाभिमुख द्वार करना हो तो पांच भाग छोड़ कर चौथे छठे भाग में, पश्चिमाभिमुख द्वार करना हो तो चौथे पांचवें भाग में और उत्तराभिमुख द्वार करना हो तो चौथे पांचवे भाग में ही द्वार (दरवाजा) शुभ है, और द्वारों को दो भाग ऊँचा करना चाहिये, एतदनुसार ही वाराहमिहिर का वाक्य है यथा—

* यहां दीर्घ शब्द से दीर्घ, विस्तार दोनों का ग्रहण है ।

दैर्घ्ये नवांशात्पदमत्रसव्याद्द्वारंशुभंप्राकृत्रिचतुर्थ भागे ।
चतुर्थषष्ठेदिशिदक्षिणस्यां पश्चाच्चतुःपञ्चमके तथोदक् ॥

इसमें भी उपर्युक्त रीति के अनुसार दीर्घ विस्तार में ही द्वार करना चाहिये कोण में द्वार करना अनिष्टद होता है लिखा भी है—

द्वारमायामतः कार्यं पुत्रपौत्रधनप्रदम् ।
विस्तारकोणंद्वारं यद्दुःखशोकभयप्रदम् ॥

विश्वकर्मा प्रकाश में भी भित्ति के मध्य (उपरि) भाग में द्वार करना निषेध है यथा—

भित्तिमध्ये कृतंद्वारंद्रव्यधान्यविनाशनम् ।
आवहेत् कलहं शोकं नारीर्वा संप्रदूषयेत् ॥

एवं द्वार के उपर द्वार या सामने द्वार करना भी निषेध है, यथा—

द्वारस्योपरियद्द्वारं द्वारं द्वारस्यसम्मुखम् ।
नकार्यं व्ययदंयच्च संकटं तद्दरिद्रकृत् ॥

एवं भित्ति मध्य के शिरा आदि प्रदेशों में भी द्वार करना सर्वदा ही निषेध है। यथा—

शिरा मर्माणि वंशाश्च नालमध्यं च सर्वशः ।
विहाय वास्तुमध्यं च द्वाराणि विनिवेशयेत् ॥ १४८॥

अथ द्वारस्य वेध फलमाह—वाराहमिहिरः ।

मार्ग तरु कोण कूप स्तम्भ भ्रम विद्धमशुभदं द्वारम् ।
उच्छ्रायाद्द्विगुणमितां त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय ॥१४९॥

मार्ग (रास्ता) वृक्ष, कोण, कूप, स्तम्भ, भ्रम (चक्र) से वेधित द्वार अशुभ होता है, पर द्वार के उंचाई से द्विगुण तुल्य दूरी पर ये सब हों तो दोष नहीं है ॥ १४७-१४९ ॥

अत्रैव विशेषफलान्याह—

रथ्या विद्धं द्वारं नाशाय कुमारदोषदं तरुणा ।
पङ्कद्वारे शोकोव्ययोऽम्बुनिःस्राविणिप्रोक्तः ॥१५०॥
कूपेनापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे ।
स्तम्भेन स्त्रीदोषाः कुलनाशो ब्राह्मणाभिमुखे ॥१५१॥

मार्ग (रास्ता) से वेधित द्वार गृहस्वामि को नाश करता है। वृक्ष वेधित गृहद्वार बालकों को दोषद होता है। पङ्कविद्ध (जिसके द्वार पर निरन्तर पङ्क रहे) द्वार शोक करता है, जलनिर्गम मार्ग से वेधित द्वार धनव्यय करता है। कूप से वेधित द्वार अपस्मार रोग देता है। देवमूर्ति से वेधित विनाश करता है, स्तम्भ विद्ध द्वार स्त्री को दुःशील बनाता है। ब्राह्मण से वेधित द्वार कुल नाश करता है ॥ १५०-१५१ ॥

अथान्यद्द्वारस्य विशेषमाह—

उन्मादः स्वयमुद्घाटितेऽथपिहिते स्वयं कुलविनाशः ।
मानाधिके नृपभयं दस्युभयं व्यसनमेव नीचे च ॥१५२॥

द्वारं द्वारस्योपरि यत्तन्न शिवाय शङ्कटं यच्च ।
आव्यात्तं क्षुद्भयदं कुब्जं कुलनाशनं भवति ॥१५३॥

पीड़ाकरमतिपीडितमन्तर्विनतं भवेदभावाय ।
बाह्यविनते प्रवासो दिग्भ्रान्ते दस्युभिः पीड़ा ॥१५४॥

दरवाजे का कपाट यदि स्वयं खुलता हो तो उन्माद करता है, यदि स्वयं बन्द होजाता हो तो कुल का नाश करता है, प्रमाण से अधिक हो तो राजभय, प्रमाण से कम हो तो चौरभय और व्यसन (दुःख) होता है। द्वार के ऊपर जो द्वार हो तो कल्याणकारक नहीं होता है।

और जो कपाट मोटाई में अल्प हो वह भी अच्छा नहीं होता जो बहुत मोटा हो वह क्षुधा का भय करता है यदि टेढा होतो कुल का नाश करता है। उदुम्बर लगा होतो गृह स्वामि को पीड़ा देता है, गृह के भीतर नम्र हो तो गृहस्वामि को मरण करता है, यदि बाहर नत हो तो अन्य देश में वास कराता है यदि दुसरे दिशा में नम्र हो तो चौर पीड़ा करता है ॥

अत्रैव विशेषमाह

मूलद्वारं नान्यैर्द्वारैरभिसन्दधीत रूपर्द्ध्या ।
घटफलपत्रप्रमथादिभिश्च तन्मङ्गलैश्चिनुयात् ॥१५५॥

मूल (प्रधान) द्वार की रचना जैसी की गई हो वैसी अन्य द्वारों को नहीं बनाना चाहिये, मूल द्वार को ही घट (कलश) फल (श्रीफल) पत्र (लतादि) एवं सिंहादि चित्रों से चित्रित करना चाहिये ॥

तथान्यः—

पृष्ठतः पार्श्वयोर्वापि न वेधं चिन्तयेद्बुधः।
प्रासादे वा गृहेवापि वेधमग्रे विनिर्दिशेत् ॥ १५६ ॥
प्रथमान्त्ययामवर्ज्यं द्वित्रिप्रहर संभवा।
छायावृत्तद्वयादीनां सदा दुःख प्रदायिनी ॥ १५७ ॥

पृष्ठ और पार्श्व भागमें वेध नहीं होता (प्रासाद या गृह में) एवं द्वयादि-वृक्षों की छाया प्रथम और अन्त्य प्रहर को त्याग कर द्वितीय और तृतीय प्रहर में दुःखद होती हैं ॥ १५६-१५७ ॥

नवभागं गृहंकृत्वा पञ्चभागं तु दक्षिणे।
त्रिभागमुत्तरे कार्यं शेषं द्वारं प्रकीर्तितम् ॥ १५८ ॥

गृह के जिस भाग में द्वार करना हो उस भाग में नव भाग कर देना चाहिये। उसमें पांच भाग दक्षिण और तीन भाग उत्तर को छोड़ कर अवशिष्ट भाग में द्वार करना चाहिये। यहां वाम दक्षिण भाग मकान से निकलते समय का लेना चाहिये। जैसा कि वास्तुरत्नावली में लिखा है—

दक्षिणाङ्गः स वै प्रोक्तो मन्दिरान्निःसृते सति।
यो भूयाद्दक्षिणे भागे वामे भूयात्स वामग इति ॥ १५८ ॥

अथ बृहत्संहितायां यानि चतसृषु दिक्षु द्वात्रिंशद्द्वाराण्युक्तानि तेषां शुभाशुभफलमाह—

अनिलभयं स्त्रीजननं प्रभूतधनता नरेन्द्रवाल्लभ्यम्।
क्रोधपरतानृतत्वं क्रौर्यं चौर्यञ्च पूर्वेण ॥ १५९ ॥

गृह भित्ति में नव विभाग करने से एक एक भित्ति में आठ आठ द्वार (दरवाजे) होते हैं, यों सब ३२ दरवाजे हुए। उसमें भी पूर्व भाग में जो आठ दरवाजे हैं उसका नाम और फल यों है। पहले का नाम शिखि है, उसमें द्वार करने से वायु का भय होता है, दूसरे का नाम पर्जन्य है उसमें कन्या जन्म होता है, तीसरे का नाम जयन्त है उसमें द्वार करने से धन की अधिकता, चौथे का नाम इन्द्र है उसमें राजप्रियता, पांचवें का नाम सूर्य है उसमें क्रोध की अधिकता, छठें का नाम सत्य है उसमें असत्यता, सातवें का नाम भृश है उसमें क्रूरता और आठवेंका नाम अन्तरिक्ष है उसमें द्वार करने से चोरी होती है ॥ १५९

अथ दक्षिण आह—

अल्प सुतत्वं प्रैष्यं नीचत्वं भक्ष्यपानसुतवृद्धिः ।
रौद्रं कृतघ्नमधनं सुतवीर्यघ्नं च याम्येन ॥ १६० ॥

एवं दक्षिण दिशा में पहला भाग का नाम अनिल है उसमें द्वार करने से पुत्र की कमी, दूसरे भाग का नाम पौष्ण है उसमें दास वृत्ति, तीसरे भाग का नाम वितथ है उसमें नीचता, चौथेका नाम बृहत्क्षत है उसमें भक्ष्यपान और पुत्र वृद्धि, पांचवें का नाम याम्य है उसमें अशुभ, छठें का नाम गन्धर्व है उसमें कृतघ्न, सातवें का नाम भृङ्गराज है उसमें धन हीनता और आठवें का नाम मृग है उसमें द्वार करने से पुत्र और बल का नाश होता है ॥ १६० ॥

अथ पश्चिम आह—

सुतपीड़ारिपुवृद्धिर्नसुतधनाप्तिः सुतार्थफलसम्पत ।
धनसम्पन्नृपतिभयं धनक्षयो रोग इत्यपरे ॥ १६१ ॥

एवं पश्चिम दिशामें पहला भाग का नाम पितृ है उसमें पुत्र व्यथा । दुसरे का नाम दौवारिक है उसमें शत्रु वृद्धि तीसरे का नाम सुग्रीव है उसमें पुत्र धन की अप्राप्ति, चौथे का नाम कुसुमदन्त है उसमें पुत्र धन फल की संपत्ति, पांचवें भाग का नाम वरुण है उसमें धन संपत्ति, छठें भाग का नाम असुर है उसमें राजभय, सातवें भाग का नाम शोष है उसमें धननाश और आठवें भाग का नाम पापयक्ष्मा है उसमें द्वार करने से रोग का भय होता है ॥ १६१ ॥

अथोत्तर आह—

वधवन्धो रिपुवृद्धिः सुतधनलाभः समस्तगुण सम्पत् ।
पुत्रधनाप्तिर्वैरं सुतेन दोषाः स्त्रिया नैःस्वम् ॥१६२॥

एवं उत्तर भाग के प्रथम हिस्से का नाम रोग है उसमें वधवन्धन, दूसरे भाग का नाम सार्प है उसमें रिपुवृद्धि, तीसरे भाग का नाम मुख्य है उसमें पुत्र धन का लाभ, चौथे भाग का नाम भल्लाट है उसमें सम्पूर्ण गुण और सम्पत्ति का लाभ, पांचवें भाग का नाम सौम्य है उसमें पुत्र धन लाभ, छठें भाग का नाम भौजंग है उसमें पुत्र के साथ वैर, सातवें भाग का नाम आदित्य है उसमें स्त्रीजन्य दोष और आठवें भाग का नाम दिति है उसमें द्वार करने से निर्धनता होती है १६२ ॥

पूर्व वाक्यों को स्पष्ट करने के लिये ये वचन हैं यथा—

पूर्वाण्यैशान्यां याम्याग्नेय्यांदक्षिणानिजानीयात् ।
द्वाराणि नैर्ऋताात् पश्चिमान्युदकूस्थानिवायव्याम् ॥

आग्नेयमग्निभयदं पार्जन्यंस्त्रीप्रसूतिदं द्वारम्।
प्रचुर धनदं जयन्तं नृपवल्लभकारि माहेन्द्रम्॥
शौर्यक्रोधः प्रचुरः सत्येऽनृतवादितं भृशेक्रौर्यम्।
चौर्यं तथान्तरिक्षे प्राग्द्वाराणि प्रदिष्टानि॥
वायव्येऽल्पसुतत्वं प्रैष्यं पौष्णेऽथनीचता वितथे।
वह्नन्नपानपुत्रं बृहत्क्षते याम्य अपि रौद्रम्॥
गान्धर्वे गन्धत्वं नृपचौर्यभयाय भृङ्गराजाख्यम्।
मृगमपि सुतवीर्यघ्नं दक्षिणतो द्वारनिर्देशः।
पित्र्ये शरीरपीड़ा दौवारिक संज्ञिते च रिपु वृद्धिः॥
सुग्रीवे धनहानिः पुत्रधनाढ्यं कुसुमदन्तम्।
वारुणमर्थं निचयदं नृपभयदं चासुरं विनिर्दिष्टम्॥
शोषं धन हानिकरं वहुरोगंपापयक्ष्माख्यम्।
रोगसुखंवधबन्धदमात्मज वैराभिवृद्धिदं नागम्॥
मुख्यं धन सुत वृद्धिदमनेक कल्याणदंच भल्लाटम्।
सौख्यं धन पुत्र करं भौजङ्गे पुत्र वैर रिपु वृद्धिः॥
अदितौ स्त्री दोषाः स्युर्दितौ धनं संक्षयं याति।

इन श्लोकों का अर्थ उपर्युक्त अर्थों से ही स्पष्ट है॥

अथद्वारचक्रम् तत्ररामः—

सूर्यर्क्षाद्युगभैः शिरस्यथ फलं लक्ष्मीस्ततः कोणभै-
र्नागैरुद्वसनं ततो गजमितैः शाखासु सौख्यं भवेत्।
देहल्यां गुणभैर्मृतिर्गृहपतेर्मध्यस्थितैर्वेदभैः
सौख्यं चक्रमिदं विलोक्य सुधिया द्वारं विधेयं शुभम्॥१६३॥

द्वार चक्र में सूर्य नक्षत्र से देहली के शिर पर ४ नक्षत्र दिया जाय तो उसमें द्वार करने से लक्ष्मी प्राप्ति होती है, उसके बाद ८ नक्षत्र कोण में दिया उसका फल उद्वास है, उसके वाद ८ नक्षत्र शाखा में दिया उसका फल सौख्य है, उसके बाद ३ नक्षत्र देहली में देने से उसका फल गृहपति का मृत्यु होता है। उसके वाद ४ नक्षत्र मध्य में देना उसमें द्वार करने से सौख्य होता है अर्थात् (सूर्य नक्षत्र से ४ नक्षत्र शुभ, वाद उसके ८ अशुभ, इसके वाद ८ शुभ वाद ३ नक्षत्र अशुभ वाद ४ नक्षत्र शुभ होता है) इस चक्र को देख कर बुद्धिमान् जन द्वार निर्माण करें तो शुभ होता है॥ १६३॥

यथोक्तम्—

सूर्यर्क्षाद्युगनागाष्ट गुणवेदैः शुभाशुभम्।
शिरः कोणद्वारशाखा देहली मध्यगैः क्रमात्॥

इसके अनुसार ही ज्योतिर्निवन्ध में भी वाक्य हैं यथा—

द्वारचक्रं प्रवक्ष्यामि भाषितं विश्वकर्मणा ।
सूर्यभाद्वंचतुष्कं तु शिरस्योपरि विन्यसेत् ॥
द्वे द्वे कोणे प्रदातव्ये शाखायुग्मे द्वयंद्वयम् ।
अधश्च त्रीणि देयानि वेदामध्ये प्रतिष्ठिताः ॥
राज्यं स्यादूर्ध्वनक्षत्रे कोणेषूद्वासनं भवेत् ।
शाखायां लभते लक्ष्मीमधश्चैव मृतिं लभेत् ॥
मध्यभेषु लभेत्सौख्यं चिन्तनीयं सदा बुधैः ॥

तथाचान्यः—

दिनकर किरणाक्रान्तर्क्षतोद्वारचक्रे युगयुगयमवेद द्विद्वि वेदद्विरामैः
मितमुडुगण भागं विन्यसेदूर्ध्वतोन्तर्नियममखिलदिग्गं नाप्यधः कोणभंसत्

अथद्वारस्थापनम्—

द्वारस्थापन नक्षत्राण्युच्यन्तेऽश्विनिचोत्तराः ।
स्वातौ पूष्णि च रोहिण्यां द्वारशाखावरोपणम् ॥१६४॥

अश्विनी, उत्तरा ३, स्वाती, रेवती, रोहिणी (मतान्तर से हस्त, पुष्य, श्रवण, मृगशिरा) ये नक्षत्र द्वार के लिये शुभ है ॥ १६४ ॥

तथैव तिथयोऽपि--

पञ्चमी धनदा चैव मुनि नन्द वसौ शुभम् ।
प्रतिपत्सु न कर्तव्यं कृते दुःखमवाप्नुयात् ॥१६५॥
द्वितीयायां द्रव्यहानिः पशु पुत्र विनाशनम् ।
तृतीया रोगदा ज्ञेया चतुर्थी भङ्ग कारिणी ॥१६६॥
कुलक्षयं तथा षष्ठी दशमी धन नाशिनी ।
विरोध कृदमापूर्णा नस्याच्छाखावरोपणम् ॥ १६७ ॥

तिथियों का फल यों है पञ्चमी में द्वार करने से धन लाभ, सप्तमी, अष्टमी और नवमी शुभ है । प्रतिपद् में द्वार नहीं करना चाहिये, करने से दुःख होता है । तृतीया में रोग, चतुर्थी में भङ्ग होता है, षष्ठी में कुलनाश, एवं दशमी में धननाश होता है, अमावास्या, पूर्णिमा विरोध करती है । अतः अनिष्ट तिथियों में द्वारशाखावरोपण नहीं करना चाहिये । ॥ १६५–१६७ ॥

तथान्यो मुहूर्त्तमुक्तावल्याम्

भवेत्पूष्णी मैत्रेच पुष्येच शाक्रे
करेदस्रचित्रानिलौचादितौ च ।
गुरुश्चन्द्रशुक्रार्कसौम्येच वारे
तिथौनन्दपूर्णाजयाद्वारशाखा ॥ १६८ ॥

रेवती, अनुराधा, पुष्य, ज्येष्ठा, हस्त, अश्विनी, चित्रा, स्वाती और पुनर्वसु नक्षत्र गुरु, सोम, शुक्र, रवि और बुधवार तथा नन्दा, पूर्णा और जया तिथि द्वार कार्य में शुभ होता है ॥ १६८ ॥

अथ गुरुः

ध्रुवभे शुभवारे च स्थिरेलग्ने शुभेदिने ।
द्वारं स्थाप्यं मृगं चित्रं वर्गसम्पद्विवर्द्धनम् ॥१६९॥
चरे स्थिरे च नक्षत्रे बुध शुक्रदिने तिथौ ।
शुभे कपाट योगः स्याद्द्विस्वभावोदयेगृहे ॥१७०॥

गुरु के वचनानुसार ध्रुव (उ० ३ रो०) नक्षत्र शुभ वार स्थिर लग्न शुभ तिथि में द्वार शुभ होता है। तथा मृगशिरा और चित्रा कुल सम्पत्ति को बढ़ाने वाला है, तथा चरस्थिर नक्षत्र बुध, शुक्र का वार और शुभ तिथि तथा द्विस्वभाव लग्न में कपाट लगाना शुभ होता है ॥ १६९-१७० ॥

तथाह माण्डव्यः

सूत्र शङ्कु शिला द्वार तुलाच्छदन पूर्वकम् ।
कार्यस्तम्भप्रतिष्ठोक्ते धिष्ण्ये वार तिथौ तथा ॥१७१॥

सूत्र, शङ्कु, शिलान्यास, द्वारकार्य, गृहच्छादन इत्यादि स्तंभ प्रतिष्ठा के कहे हुये नक्षत्र, वार और तिथियों में शुभ होता है।

अथ नृपादि ब्राह्मणान्तानां सर्वेषां पञ्च पञ्च गृहाणि प्रत्येकस्य वक्ष्यति तत्रादौ नृपगृहाणां प्रमाणमाह—

उत्तममष्टाभ्यधिकं हस्तशतं नृपगृहं पृथुत्वेन ।
अष्टाष्टोनान्येवं पञ्च सपादानि दैर्घ्येण ॥१७२॥

उत्तम राजगृह में १०८ हाथ का विस्तार प्रधान होता है । इसके बाद चार गृह में आठ २ हाथ कम करके विस्तार होना चाहिये, और विस्तार से सपाद (सवाई) दीर्घ होना चाहिये । जैसे प्रधानगृह १०८ हाथ विस्तार और १३५ हाथ दीर्घ, एवं द्वितीयगृह १०० हाथ विस्तार, १२५ हाथ दीर्घ, तृतीयगृह का विस्तार ९२ हाथ दीर्घ ११५ हाथ, चौथा गृह का विस्तार ८४ हाथ, दीर्घ १०५ हाथ, पांचवा गृह का विस्तार ७६ हाथ और दीर्घ ९५ हाथ करना चाहिये ।

तथा च कश्यपः—अष्टोत्तरं हस्तशतं विस्तारान्नृपमन्दिरम् ।
कार्यं प्रधानमन्यानि तथाष्टाष्टोनितानि तु ॥
विस्तारं पादसंयुक्तं दैर्घ्यं तेषां प्रकल्पयेत् ।
एवं पञ्च नृपः कुर्याद्गृहाणां च पृथक् पृथक् ॥

इस रूप से पांच गृह प्रत्येक आचार्य के मत से होता है ॥ १७२ ॥

अथेदानीं सेनापतिगृहाणां प्रमाणमाह—

षड्भिः षड्भिर्हीना सेनापतिसद्मनां चतुः षष्टिः ।
एवं पञ्च गृहाणि षड्भागसमन्विता दैर्घ्यम् ॥१७३॥

सेनापति का प्रथम गृह ६४ हाथ विस्तार का बनाना बाद के चार मकानों में छः छः हाथ कम करके विस्तार रखना चाहिये और विस्तार से षष्ठांश अधिक दीर्घ होना चाहिये । यथा—

प्रथम गृह का विस्तार ६४ हाथ दीर्घ $६४+\frac{६४}{६}$ हाथ, द्वितीय गृहका विस्तार ५८ हाथ, दीर्घ $५८+\frac{५८}{६}$ हाथ, तृतीय गृह का विस्तार ५२ हाथ, दीर्घ $५२+\frac{५२}{६}$ हाथ, चौथा गृह का विस्तार ४६ हाथ, दीर्घ $४६+\frac{४६}{६}$ हाथ और पांचवा गृह का विस्तार ४० हाथ, दीर्घ $४०+\frac{४०}{६}$ हाथ होना चाहिये । यहां हाथ में ६ का पूरा २ भाग नहीं लगता, इसलिये अङ्गुलादि बनाकर ६ का भाग देना चाहिये ॥ १७३ ॥

अथ सचिवगृहाणां प्रमाणमाह—

षष्टिश्चतुश्चतुर्भिर्हीना वेश्मानि पञ्च सचिवस्य ।
स्वाष्टांशयुतो दैर्घ्यं तदर्धतो राजमहिषीणाम् ॥१७४॥

सचिव (मन्त्री) का गृह भी पांच बनाना चाहिये । जिसमें पहले गृह का विस्तार ६० हाथ होता है । बाद के चार मकानों में क्रमसे चार २ हाथ कम करके बनाना चाहिये । यथा दूसरा गृह का विस्तार ५६ हाथ, तीसरे का ५२ हाथ, चौथे का ४८ हाथ और पांचवे का ४४ हाथ विस्तार होना चाहिये उस विस्तार में अपना अष्टमांश जोड़कर दीर्घ कल्पना करना चाहिये । इसी प्रकार सचिव का जो गृहप्रमाण है उसके आधे दीर्घ विस्तार में राजमहिषी

(पटरानी या प्रधान स्त्री) का गृह बनवाना चाहिये । यथा प्रथम गृह का विस्तार ३० हाथ, द्वितीय का विस्तार २८ हाथ, तृतीय का २६ हाथ, चौथे का २४ हाथ और पांचवें का विस्तार २२ हाथ होना चाहिये, और विस्तार के अष्टमांश युक्त विस्तार तुल्य दीर्घ रखना शुभ है ॥ १७२ ॥

अथ युवराजगृहाणांलक्षणमाह—

षड्भिः षड्भिश्चैवं युवराजस्यापवर्जिताऽशीतिः ।
त्र्यंशान्विता च दैर्घ्यं पञ्च तदर्धैस्तदनुजानाम् ॥ १७५ ॥

इसी प्रकार युवराज के लिये भी पांच गृह बनाना चाहिए जिसमें प्रथम गृह का विस्तार ८० हाथ करना बाद के चार मकानों में छः छः हाथ कम करके विस्तार कल्पना करना चाहिये यथा द्वितीय गृह का विस्तार ७४ हाथ, तृतीयका ६८, चौथेका विस्तार ६२, और पांचवे गृहका विस्तार ५६, हाथ होना चाहिये, विस्तार में विस्तार का तृतीयांश जोड़कर दीर्घ कल्पना करै। इसी तरह युवराज के छोटे भाई और भृत्यों के लिये युवराज गृह के आधा विस्तार और विस्तार के तृतीयांश में विस्तार जोड़कर दीर्घ कल्पना करना चाहिये ॥१७५॥

अथ सामन्तप्रवरराजपुरुषकञ्चुकिवेश्याकलाज्ञानांगृहलक्षणान्याह—

नृपसचिवान्तरतुल्यं सामन्तप्रवरराजपुरुषाणाम् ।
नृपयुवराजविशेषः कञ्चुकिवेश्याकलाज्ञानाम् ॥ १७६ ॥

राजा के जो पांच गृह एवं मन्त्रिका जो पांच गृह है क्रम से उसके अन्तर तुल्य माण्डलिक राजा और प्रधान राजपुरुष का गृह बनाना चाहिये यथा राजा के प्रथम गृह के विस्तार में मन्त्री के प्रथम गृहका विस्तार घटाकर विस्तार कल्पना करना दीर्घ में दीर्घ को घटाकर दैर्घ्य कल्पना करना चाहिये एवं राजा और युवराज गृह के अन्तर तुल्य कञ्चुकी और वेश्या का गृह बनाना चाहिये ॥ १७६ ॥

अथाध्यक्षाधिकृतकर्मान्ताध्यक्षदूतानां पञ्चगृहाण्याह—

अध्यक्षाधिकृतानां सर्वेषां कोशरति तुल्यम् ।
युवराज मन्त्रि विवरं कर्मान्ताध्यक्ष दूतानाम् ॥ १७७ ॥

गोशाला, और घोड़ साल, हाथीसारादि के अधिकारियों तथा और भी कार्यों के जो मालिक हैं उन सब के लिये कोश गृहके वा रति गृहके बराबर बनाना चाहिये जितने दीर्घ विस्तार का कोश गृह वा रति गृह बना हो उतने ही दीर्घ विस्तार का बनाना उचित है और कर्म शाला में जो मालिक हैं उनका

और दूतों (कर्मचारियों) का गृह युवराज और मन्त्री के गृह के दीर्घ विस्तार का जो अन्तर है उसके बराबर अर्थात् दीर्घ, दीर्घ का अन्तर दीर्घ विस्तारों का अन्तर विस्तार रखना चाहिये ॥ १७७ ॥

अथ दैवज्ञभिषक्पुरोहितानां वास्तुप्रमाणान्याह ।

चत्वारिंशद्धीना चतुश्चतुर्भिस्तु पञ्चयावदिति ।
षड्भागयुतादैर्घ्यं दैवज्ञ पुरोधसोर्भिषजः ॥१७८॥

ज्यौतिषी और वैद्य पुरोहितों के गृह बनाने में विस्तार प्रथम गृह का ४० रखना, द्वितीय का ३६, तीसरे का ३२, इसी तरह चौथे गृह का २८, पांचवें का २४, विचार कर रखना और दीर्घ प्रत्येक गृह के विस्तार में उसी का छठां हिस्सा जोड़ कर रखना चाहिये ॥ १७८ ॥

इति गृहप्रकरणम्—

अथ गृहप्रवेश प्रकरणम्—

तत्र वसिष्ठः—

अपूर्वसंज्ञं प्रथमप्रवेशं यात्रावसाने च सपूर्वसंज्ञम् ।
द्वंद्वाह्वयश्चाग्निभयादि जातस्त्वेवं प्रवेशस्त्रिविधः प्रदिष्टः॥१॥

नूतन गृह में प्रथम २ प्रवेश को अपूर्वसंज्ञक प्रवेश कहते हैं और यात्रा के अन्त में जो प्रवेश होता है उसको सपूर्वप्रवेश कहते हैं, अग्नि आदि के भय से जो गृह गिरकर नया बना हो उसमें जो प्रवेश होता है उसको द्वंद्वाह्व कहते हैं। इस प्रकार प्रवेश तीन प्रकार के होते हैं ॥ १ ॥

तथाचान्यः—

वधूप्रवेशो न दिवा प्रशस्तः राजप्रवेशो न निशि प्रशस्तः ।
दिवा च रात्रौ च गृहप्रवेशः सत्कीर्तिदस्स्यात्त्रिविधः प्रवेशः२

वधू प्रवेश दिन में शुभ नहीं होता, लिखा भी है (निशि वधूसंवेशमङ्गे-स्थिरे) राजप्रवेश याने यात्रा के अन्त में जो गृहप्रवेश होता है वह रात्रि में शुभ नहीं है और गृहप्रवेश दिवारात्रि दोनों समय में शुभ होता है, इस प्रकार त्रिविध प्रवेश होता है ॥ २ ॥

अथ नारदः—

आदौ सौम्यायने कार्यं नववास्तु प्रवेशनम् ।
राज्ञा यात्रानिवृत्तौ च यद्वा द्वंद्वप्रवेशनम् ॥ ३ ॥

उत्तरायण सूर्य हों तो नूतनगृह में प्रवेश करना चाहिये । राजा के यात्रा निवृत्त होनेपर जो प्रवेश हो अथवा द्वंद्वात्मक जो प्रवेश हो वह भी इसी प्रकार होना चाहिये ।। ३ ।।

तथाचान्यः—

विधाय पूर्वदिवसे वास्तुपूजां वलिक्रियाम् ।
माघ-फाल्गुन-वैशाख-ज्येष्ठमासेषु शोभनः ॥४॥
प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः ।

पहले दिन वास्तु पूजा और वलिक्रिया करके माघ फाल्गुन वैशाख और ज्येष्ठ में गृह प्रवेश शुभ होता है; तथा सौम्य (मार्गशीर्ष) कार्तिक मास प्रवेश में मध्यम होता है ॥ ४ ॥

यथा वसिष्ठः—

माघेऽर्थ लाभः प्रथमप्रवेशः पुत्रार्थलाभः खलु फाल्गुने च ।
चैत्रेऽर्थहानिर्धनधान्यलाभो वैशाखमासे पशुपुत्रलाभः ॥

ज्ये. प्र.—

गृहारम्भोदितेमासेर्धिष्ण्येवारे विशेद्गृहम् ॥
विशेत्सौम्यायने हर्म्यं तृणागारे तु सर्वदा ॥५॥

गृहारंभके कहे हुये नक्षत्र वार में सूर्य उत्तरायण हों तो हर्म्य (ईंट-पत्थर-मिट्टी के) गृहमें प्रवेश करना शुभ होता है। तृण गृहमें सर्वदा प्रवेश कर सकते हैं ॥ ५ ॥

त्रिविध प्रवेशे विशेषः—

क्रूरग्रहाधिष्ठित विद्धभं च विवर्जनीयं त्रिविधप्रवेशे ।
शुक्ले च पक्षे सुतरांप्रवृद्ध्यै कृष्णे च तावद्दशमींच यावत्॥

पापग्रह जिस नक्षत्र पर हों और पाप विद्ध जो नक्षत्र ये सब त्रिविध प्रवेश में त्याज्य करना चाहिये। शुक्ल पक्ष में प्रवेश करना निरन्तर वृद्धि के लिये होता है पर कृष्ण पक्ष में दशमी तिथि पर्यन्त ही प्रवेश करना चाहिये वाद नहीं ॥ ६ ॥

चित्रोत्तराधातृशशाङ्कमित्र-
वस्वन्त्यवारीश्वरभेषु नूनम् ।

आयुर्धनारोग्यसुपुत्रपौत्र-
सुकीर्तिदः स्यात्त्रिविधः प्रवेशः ॥ ७ ॥

चित्रा उत्तरा ३ रोहिणी मृगशिरा अनुराधा धनिष्ठा रेवती और शतभिष इन नक्षत्रों में त्रिविध प्रवेश करने से आयु धन आरोग्य पुत्र पौत्र और यशकी वृद्धि होती है ॥ ७ ॥

योगयात्रायां वाराहः—

पौष्णे धनिष्ठास्वथ वारुणेषु
स्वायंभुवर्क्षेषु त्रिषूत्तरासु ।
अक्षीणचन्द्रे शुभवासरे च
तिथावरिक्ते च गृहप्रवेशः ॥ ८ ॥

रेवती धनिष्ठा शतभिषा रोहिणी उत्तरा ३ ये नक्षत्र हों चन्द्रमा क्षीण नहीं हो शुभवार हो रिक्ता से अतिरिक्त तिथि हो तो गृह प्रवेश शुभ होता है ॥ ८ ॥

नारदः

शुभः प्रवेशो देवेज्यशुक्रयोर्दृश्यमानयोः ।
व्यर्कारवारतिथिषु रिक्तामावर्जितेषु च ॥ ९ ॥
वस्वीज्यान्त्येन्दुवरुणत्वाष्ट्रमित्रास्थिरोडुषु ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रवेशो मंगलप्रदः ॥१०॥

वृहस्पति शुक्र उदय हों, रवि मङ्गलवार एवं रिक्ता अमावास्या तिथि को परित्याग कर के धनिष्ठा पुष्य रेवती मृगशिरा शतभिषा चित्रा अनुराधा स्थिर (उत्तरा. ३ रोहिणी) नक्षत्र हो तो दिन या रात्रि में प्रवेश शुभद होता है ॥ १० ॥

तथा च वैद्यनाथः

त्र्युत्तरे रोहिणी युग्मे रेवत्यां वासवद्वये ।
पुष्ये त्वाष्ट्रद्वये मैत्रे प्रवेशोऽभिहितः करे ॥

एवमेव रत्नमालायाम्—

पुष्ये धनिष्ठामृदुवायुमूलस्थिराश्विनीविष्णुजलेशहस्ते ।
एषु प्रवेशो बहुपुत्रपौत्रैश्चिरं वसेद्भूरिसमागमैश्च इति ॥

अथ लग्नफलम्

मेषे यानं घटे व्याधिर्धान्यहानिर्मृगे गृहम्।
विशतां कर्कटे नाशः शेषलग्नेषु शोभनम् ॥ ११ ॥

दैवज्ञवल्लभे—

निन्दिता अपि शुभांशसमेतास्तौलिमेषमकराः सकुलीराः।
कर्तुरौपचयगाश्चविलग्ने राशयः शुभफलाश्च भवन्ति ॥१२॥

मेष लग्न में प्रवेश करने से यात्रा, कुंभ में रोग, मकर में धान्य हानि, कर्क में नाश और शेष लग्न शुभ होता है। परञ्च निन्दित भी लग्न शुभ नवांश से युक्त हो अथवा तुला, मेष, मकर और कर्क ये चार राशियां भी यदि कर्त्ता के राशि से उपचय होकर लग्न में हो तो प्रवेश शुभ ही होता है ॥ ११-१२ ॥

तथान्यः लल्लः—

व्याधिहा धनहा चैव वित्तदो वन्धुनाशकृत्।
पुत्रहा शत्रुहा स्त्रीघ्नः प्राणहा पिटकप्रदः ॥१३॥
सिद्धिदो धनदश्चैवभवेत्तज्जन्मराशिगः।
लग्नस्थः क्रमशोराशिर्जन्मलग्नात्प्रवेशने ॥१४॥

अब जन्मराशि जन्मलग्न से द्वादशराशि गत प्रवेश लग्न का फल यों है यदि जन्म का राशि लग्न प्रवेश का हो तो रोगनाश, द्वितीय हो तो धननाश, तृतीय हो तो धनद, चौथे हो तो वन्धुनाश, पञ्चम हो तो पुत्रहानि, षष्ठ हो तो शत्रुनाश, सातवां हो तो स्त्रीनाश, आठवां हो तो प्राणनाश, नवम हो तो पिटक रोग, दशम हो तो कार्यसिद्धि, एकादश हो तो धनलाभ, और द्वादश हो तो अशुभ होता है ॥ १३-१४ ॥

अथ लग्नादिशुद्धिस्तत्ररामः—

त्रिकोणकेन्द्रायधनत्रिगैः शुभै-
र्लग्नात्त्रिषष्ठायगतैश्चपापकैः।
शुद्धाम्बुरन्ध्रेविजनुर्भमृत्यौ
व्यर्कारिक्ताचरचैत्रदर्शे ॥ १५ ॥

लग्न से त्रिकोण (५, ६) केन्द्र (१, ४, ७, १०,), २, ३ में शुभग्रह हों ३, ६, ११, में पापग्रह हो, ४, ८, शुद्ध हो और जन्मराशि लग्न से अष्टम लग्न न हो, रवि, मङ्गल रिक्ता तिथि को परित्याग करके तथा चरलग्न चैत्र मास अमावास्या तिथि को परित्याग कर प्रवेश शुभ होता है ॥ १५ ॥

वसिष्ठः—

कृत्वा शुक्रं पृष्ठतो वामतोऽर्कं
विप्रान्पूज्यानग्रतोपूर्णकुम्भान् ।
रम्यं हर्म्यं तोरणं स्रग्वितानैः
सम्यक्स्त्रीभिर्गीतवाद्यैर्विशेत्तत् ॥ १६ ॥

शुक्र को पृष्ठ भाग में और रवि को वाम करके ब्राह्मणों को पूजन कर पूर्ण कलश को आगे करके तोरण माला वितान से शोभित गृह में स्त्री समूहों के गीत से युक्त वाद्य (बाजा) करके प्रवेश करना उत्तम होता है ॥ १६ ॥

तत्र रामदैवज्ञः—अग्रेऽम्बु पूर्णं कलशं द्विजांश्च
कृत्वा विशेद्वेश्म भकूटशुद्धम् ।

श्रीपतिरप्याह—कृत्वा विप्रान् सजल कलशं चाग्रतो वामतोऽर्कं-
स्नातः स्रग्वी विमल वसनो मङ्गलैर्वेदघोषैः ।
व्यस्तैः यात्राकथितशकुनैर्द्वार मार्गेणराजा-
हर्म्यं पुष्पप्रकररुचिरं तोरणाढ्यं विशेच्च ॥

अथवामरविस्तत्ररामः—

वामोरविर्मृत्युसुतार्थलाभतो-
ऽर्के पञ्चमे प्राग्वदनादिमन्दिरे ।
पूर्णातिथौ प्राग्वदने गृहे शुभो
नन्दादिके याम्यजलोत्तराननने ॥ १७ ॥

पूर्वाभिमुख गृह में प्रवेश करने में प्रवेश लग्न से जो अष्टम उससे पांच राशि तक सूर्य हों, दक्षिण मुख गृह के लिये पञ्चम से पांच राशि, पश्चिमाभिमुख गृह के लिये द्वितीय से पांच राशि और उत्तराभिमुख गृह के लिये एकादश से पांच राशि तक सूर्य हों तो वाम रवि होते हैं ।

एवं पूर्णा ५, १०, १५ तिथि में पूर्व मुख गृह में नन्दा १, ६, ११ तिथि में दक्षिण मुख भद्रा तिथि २, ७, १२, में पश्चिम मुख और जाया ३, ८, १३ तिथि में उत्तराभिमुख गृह में प्रवेश शुभ होता है ॥ १७ ॥

तथान्यः—रन्ध्रात्पुत्राद्धनादायात् पञ्चस्वर्के स्थितेक्रमात् ।
पूर्वाशादिमुखं गेहं विशेद्वामो भवेद्यतः ॥

अथ प्रवेशे कुम्भचक्रम्—

वक्त्रे भूरविभात्प्रवेशसमये कुम्भेऽग्निदाहः कृताः
प्राच्यामुद्वसनं कृतायमगताः लाभः कृताः पश्चिमे ।
श्रीर्वेदाः कलिरुत्तरे युगमिता गर्भे विनाशो गुदे
रामाः स्थैर्यमतः स्थिरत्वमनलाः कण्ठे भवेत्सर्वदा ॥ १८ ॥

प्रवेश के समय कलश चक्र बनाना उसमें सूर्य. के नक्षत्र से कलश चक्र के मुख में एक नक्षत्र दिया जायता उसमें प्रवेश करने से अग्निदाह होता है । बाद ४ नक्षत्र पूर्व में दिया जाय तो उद्वास, बाद ४ नक्षत्र दक्षिण में दिया जाय तो लाभ, बाद ४ नक्षत्र पश्चिम में देने से उसका फल लक्ष्मी प्राप्ति, बाद ४ नक्षत्र उत्तर में दिया जाय ता उसका फल कलह, बाद ४ नक्षत्र गर्भ में दिया जाय तो उसका फल गर्भ नाश, बाद गुदा में ३ नक्षत्र देने से स्थिरता, बाद इसके ३ नक्षत्र कण्ठ में दिया जाय तो उसमें प्रवेश करने से सर्वदा स्थिरता रहता है ॥ १८ ॥

यथोक्तम् ग्रन्थान्तरे—

प्रवेशे कलशेऽर्कर्क्षात्पञ्च नागाष्टषट् क्रमात् ।
अशुभं च शुभं ज्ञेयमशुभं च शुभं तथा ॥

अथात्र नारदः—

अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम् ।
गृहं न प्रविशेदेवं विपदामाकरं हि तत् ॥ १९ ॥

विना किवाड़ का विना ढ़का हुआ और जिस गृह में बलिदान और ब्राह्मण भोजन नहीं भया हो ऐसे गृहमें प्रवेश नहीं करना चाहिये । क्योंकि वह गृह विपत्तियों का खजाना है ॥ १९ ॥

अथ प्रवेशे कर्तव्यतामाह—

एवं सुलग्ने स्वगृहं प्रविश्य
वितानपुष्पश्रुतिघोषयुक्तम् ।

शिल्पज्ञ-दैवज्ञ-विधिज्ञ-पौरान्
राजार्चयेद्भूमिहिरण्यवस्त्रैः ॥ २० ॥

एवं पूर्वोक्त रीति के अनुसार शुभ लग्न में वितान (छत वा चांदनी) पुष्प (फूल) और वेदध्वनि से युक्त अपने गृह में प्रवेश करके शिल्पज्ञ (चित्रकार) दैवज्ञ (ज्यौतिषी) विधिज्ञ (कर्मकाण्ड करानेवाले). और पुरवासियों को भूमि सुवर्ण वस्त्रों करके राजा पूजन करैं ॥ २० ॥

श्रीपतिरप्याह—

ततोनृपो विप्रसुहृत्पुरोधसः
शिल्पज्ञ-भूगोलविदश्च भागिनः ।
धनैश्वरत्नैः पशुभिः समर्चयेत्
सदान्धदीनान् पुरवासिनस्तथा ॥

तथा च कश्यपः—

एवं यः प्रविशेद्राजा योगेदैवज्ञकीर्त्तिते ।
काले शास्त्रोक्तविधिना शरीरसुखमश्नुते ॥

अथ जीर्ण गृहप्रवेशः—

जीर्णे गृहेऽग्न्यादिभयान्नवेऽपि-
मार्गोर्जयोः श्रावणकेऽपि सत्स्यात्
वेशोऽम्बुपेज्यानिलवासवेषु-
नावश्यमस्तादिविचारणाऽत्र ॥ २१ ॥

जीर्ण गृह अग्नि आदि के भय से गिर गया हो उससे नूतन भी बनाया गया हो तो मार्गशीर्ष कार्तिक श्रावण मास में शतभिषा पुष्य स्वाती धनिष्ठा में प्रवेश शुभ है इसमें अस्तादि का विचार नहीं होता ॥ २१ ॥

यथोक्तं ज्योतिःप्रकाशे—

नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशनेपरिधानके ।
वधू प्रवेशेमाङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः ॥

अथ यात्रानिवृत्तनरप्रवेश मुहूर्त्तः वृत्तशते—

भूपानां मृदुभिर्ध्रुवैः प्रविशनं यात्रानिवृत्तौ शुभम्
स्याद्भूयो गमनं चरर्त्तलघुभे रुद्रैर्मृतिर्भूपतेः।
तिद्दणैर्भूपकुमारकस्य नृपतेः पत्न्या विशाखाह्वये
धिष्णये हव्यभुजोगृहंप्रविशतां संदह्यते वह्निना॥

राजाओं को यात्रा निवृत्ति होने पर मृदु (मृ. रे. चि. अनु.) ध्रुव (उ. ३. रो.) नक्षत्र में प्रवेश शुभ होता है बाद इसके चर (स्वा. पुन. श्र. ध. श.) लघु (ह. अश्वि. पुष्य.) और आर्द्रा में पुनः यदि प्रवेश करें तो मृत्यु होती है। यदि तीक्ष्ण (मू. ज्ये. आश्ले.) नक्षत्र में प्रवेश करें तो राजकुमार की मृत्यु होती है। विशाखा में राज पत्नी की मृत्यु होती है। और कृत्तिका में यदि प्रवेश करें तो अग्नि भय होता है॥ २२॥

तथा च वास्तुप्रदीपे—

वैशाखमासेऽपि च फाल्गुनेऽपि ज्येष्ठे प्रवेशः शुभदोगृहस्य।
यात्रानिवृत्तावथवा नवस्य भूमीभुजां द्विर्भवनस्थिरेषु॥२३॥

वैशाख, फाल्गुन, और ज्येष्ठ में द्विस्वभाव अथवा स्थिर लग्न हो तो यात्रा निवृत्त का प्रवेश अथवा नूतन गृह का प्रवेश भी शुभ होता है॥ २३॥

तथाह माण्डव्यः—

सूत्र-शङ्कु-शिला-द्वार-तुलाच्छादनपूर्वकम्।
कार्यस्तम्भप्रतिष्ठोक्ते धिष्ण्येवारेतिथौ तथा॥२४॥

सूत्र शङ्कु शिलान्यास द्वार कार्य गृहच्छादन इत्यादि स्तंभ प्रतिष्ठा के कहे हुये नक्षत्र और शुभवार शुभ तिथि में श्रेष्ठ होता है॥ २४॥

॥ इति गृहप्रवेश प्रकरणम्॥

अथ गोशालायां भूशोधनादिकमायादिकञ्च प्राग्वज्ज्ञेयम्। तत्रापि चरणी विचारः—

स्वामि हस्तप्रमाणेन दीर्घविस्तारसंयुतम्।
अष्टभिश्च हरेद्भागं शेषे चरणिरुच्यते॥ १॥

पशुहानिः पशोरोगः पशुलाभः पशुक्षयः
पशुनाशः पशोर्वृद्धिः पशुभेदो वहुः पशुः ॥ २ ॥

स्वामिके हाथ से दीर्घ विस्तार का गुणा करना आठसे भाग देना एकादि शेषवश चरणी का फल कहना चाहिये ॥ १ ॥ यथा—

१ शेषमें पशुहानि, २ में पशुरोग, ३ में पशुलाभ, ४ में पशुक्षय, ५ में पशु नाश, ६ में पशुवृद्धि, ७ में पशुभेद, और ८ में वहु पशु होता है ॥ २ ॥

अथाश्वगृहनिर्माणम्—वास्तुराजवल्लभे ।

तुरङ्गमाणां गृहवामभागे शालाचतुःषष्टि करा विधेया ।
शतार्द्धतो मध्यमिकाच दैर्घ्ये कनीयसी तैर्दशभिर्विहीना ॥
व्यासे च ज्येष्ठा तिथिहस्तमाना त्रयोदशैकादशभिः क्रमेण ।
तद्वाह्यभित्तिश्च करप्रमाणा पञ्चार्धपञ्चाऽधिकरोदयं स्यात् ॥३॥

गृहके वामभागमें अश्वशाला वनवाना उत्तमशाला ६४ हाथ लम्वी १५ हाथ चौड़ी मध्यमशाला ५० हाथ लम्वी १३ हाथ चौड़ी, और हीन शाला ४० हाथ लम्वी ११ हाथ चौड़ी होती है । इनके वाहरी भित्ति की ऊँचाई ५॥ हाथ, ५ हाथ और ४ हाथ करना चाहिये ॥ ३ ॥

अथाश्वस्थितिः—

तेजोहानिममीहया विदधते पूर्वापरस्यां नृणां ।
ते याम्योत्तरतो मुखाहि सततं कीर्तिर्यशो धान्यकम् ॥
कर्तव्योहिषणं प्रतीहकलशः स्थानं द्विहस्तोदयम् ।
तस्यास्तोरणमुच्छ्रितं च मुनिभिर्हस्तैः सुशोभान्वितम् ॥४॥

घोड़े पूर्व अथवा पश्चिम मुख वाँधने से तेजकी हानि करते हैं दक्षिण अथवा उत्तर मुख वांधने से कीर्तियश और धान्य की वृद्धि करते हैं, हिषण घोड़े के खाने की जगह को करते हैं उसके उपर कलश वनाना चाहिये । स्थान याने घोड़े के वांधने की जगह दो हाथ ऊँची आगे की ओर करना और उसमें तोरण ७ हाथ ऊँचा शोभा युक्त होना चाहिये ॥ ४ ॥

अथाश्वमानम्—

षष्ट्या साधुहयोऽङ्गुलैर्निगदितो वेदाङ्गुलेनाधिकः
श्रीवत्सस्त्वहिलाद एव च मनोहारी द्विसप्ताङ्गुलः ।
रागाग्र्यङ्गुलकैस्तु वाजि-विजयोऽशीत्या तथा वैभवः
शान्ताख्यस्तु युगाष्टमात्र उदये मानं हरेः सप्तधा ॥ ५ ॥

जो घोड़ा ६० अङ्गुल होता है उसको साधु कहते हैं। जो ६४ अङ्गुल हो उसको श्रीवत्स, जो ६८ अङ्गुल हो उसको अहिलाद, जो ७२ अङ्गुल ऊँचा हो उसको मनोहारि, ७६ अङ्गुल ऊँचा हो उसको विजय, ८० अङ्गुल ऊँचा हो तो वैभव और ८४ अङ्गुल ऊँचा घोड़ा शान्त नामक होता है, ये सात प्रकार के घोड़े होते हैं ॥ ५ ॥

अथ गजगृहनिर्माणम्—तत्रादौ कर्तव्यता—

सिंहद्वारं पूर्वमानेन कार्यं त्रिद्व्येका वा मालिकास्तम्भशीर्षे ।
स्यातांमध्ये तोड़कौ रक्षणार्थं तुल्यौ भागेनाधिकौ वापि सार्द्धौ

पहले कही हुई रीति के अनुसार सिंह द्वार (सदर फाटक) बनाना उसके स्तम्भ के शिरे पर तीन या दो या एक मालिका (मदला) (मजिला) बनाना और मध्य में रक्षा के लिये दो तोड़क याने अर्गलाकाष्ठ बनाना ये दोनो मोटाई और चौड़ाई में बराबर हों या अधिक कम हों वा सवाई हों या डेढे सभी प्रकार का बनाया जा सकता है ॥ ६ ॥

भागे दक्षिण-वामके च करिणांशाला हरेर्द्वारतः ।
कर्तव्या सुदृढोन्नता च कलशैर्घण्टादिभिर्भूषिता ॥
संकीर्णो रसतो नगैर्निगदितो मन्दो मृगश्चाष्टभिः ।
सर्वेषूत्तम भद्रजातिरुदितो नन्दैःकरैरुच्छ्रितः ॥ ७ ॥

सिंहद्वार के दक्षिण और वाम भाग में गजशाला (हथिसार) बनाना, गजशाला दृढ़ ऊँचा और घण्टा कलश आदि से युक्त हो, ६ हाथ ऊँचा हाथी संकीर्ण, ७ हाथ ऊँचा का मन्द, ८ हाथ ऊँचा का मृग और सब से उत्तम ९ हाथ ऊँचा भद्र जाति का हाथी होता है ॥ ७ ॥

गृहसमीपे त्याज्याः । कालिदासः—

वाराह-शार्दूल-शिवा-पृदाकवो गृध्राभिधोलूक-कपोत-वायसाः
स श्येन-गोधादि-वकादि-पत्रिणो विचित्रिता-नो शरणे शुभावहाः

वाराह (शूकर), शार्दूल (व्याघ्र), शिवा (शृगाल), पृदाकू (सर्प), (सर्पः पृदाकुर्भुजगाः—इत्यमरः) गृध्र, उल्लू, कपोत, वायस, श्येन, गोधा, वकादि पक्षी इनका चित्र गृह पर लिखना शुभ नहीं होता ॥ ८ ॥

गृहसमीपे ग्राह्याग्राह्यवृक्षाः । वास्तुराजवल्लभे—

वृक्षा दुग्ध-सकण्टकाश्चफलिनस्त्याज्या गृहाद्दूरतः ।
शस्ते चम्पकपाटले च कदली जाती तथा केतकी ॥
यामादूर्ध्वमशेषवृक्ष जनिता छाया न शस्तागृहे ।
पार्श्वे कस्य हरे रवीशपुरतो जैनानु चण्ड्याः क्वचित् ॥९॥

दुग्ध वाले वृक्ष, कांटे वाले वृक्ष, फूल वाले वृक्ष, गृह के समीप अच्छे नहीं होते । चंपा, गुलाब, केला, जाती और केतकी ये अच्छे होते हैं । एक प्रहर दिन के पीछे किसी वृक्ष की छाया गृह पर अच्छी नहीं होती । ब्रह्मा के मन्दिर के पार्श्व में, विष्णु, सूर्य और शिव के मन्दिर के सामने, जैन मन्दिर के पीछे और देवी के मन्दिर के किसी भाग में गृह वनाना शुभ नहीं है ॥ ९ ॥

तथास्य फलम्—

स दुग्धवृक्षा द्रविणस्य नाशं कुर्वन्ति ते कण्टकिनोऽरिभीतिम्
प्रजाविनाशं फलिनः समीपे गृहस्य वर्ज्याःकलधौतपुष्पाः ॥

दुग्ध वाले वृक्ष धननाश, कांटे वाले वृक्ष शत्रुभय और फूल वाले वृक्ष सन्ततिनाश करते हैं । गृह के समीप पीत पुष्प शुभ नहीं होता है ॥ १० ॥

तथान्यः—

दुष्टो भूतनिषेवितोऽपि विटपी नोच्छिद्यते शक्तितः ।
तद्वद्बिल्वशमी त्वशोकवकुलौ पुन्नागसच्चम्पकौ ॥
द्राक्षा पुष्पकमण्डपं च तिलकान् कृष्णां वपेद्दाडिमीं ।
सौम्यादेः शुभदौ कपित्थक-वटावौदुम्वराश्वत्थकौ ॥ ११ ॥

जो वृक्ष दुष्ट हो अथवा जिसमें भूत वास हो उसको काटना शुभद नहीं है। विल्व, शमी, अशोक, वकुल (मौलेशरी), पुन्नाग और चम्पा को भी काटना शुभ नहीं है। द्राक्षापुष्प का मण्डप चन्दन-वृक्ष, पीपली और अनार लगाना शुभद है, गृह से उत्तर कैंत, पूर्व में वट, दक्षिण में गुलर और पश्चिम में पीपल शुभद है ॥ ११ ॥

तथा च वृहत्संहितायाम्—

शाम्यादिष्वशुभफला जातास्तरवः प्रदक्षिणेनैते ।
उदगादिषु प्रशस्ताः प्लक्षवटोदुम्बराश्वत्थाः ॥ १२ ॥

पाकड़ का वृक्ष दक्षिण दिशा में अशुभ है। एवं वट वृक्ष पश्चिम में, उदुम्बर वृक्ष उत्तर में और पीपल पूर्व दिशा में अशुभ होता है। और पाकड़ उत्तर में शुभ है, एवं वट पूर्व दिशा में, उदुम्बर दक्षिण में और पीपल पश्चिम में शुभद होता है ॥ १२ ॥

तथा च गर्गः

वर्जयेत् पूर्वतोऽश्वत्थं प्लक्षं दक्षिणतस्तथा ।
न्यग्रोधं पश्चिमे भागे उत्तरे चाप्युदुम्बरम् ॥
अश्वत्थे तु भयं ब्रूयात् प्लक्षे ब्रूयात्पराभवम् ।
न्यग्रोधे राजतः पीड़ा नेत्रामयमुदुम्बरे ॥
वटः पुरस्ताद्धन्यः स्याद्दक्षिणे चाप्युदुम्बरम् ।
अश्वत्थः पश्चिमे भागे प्लक्षस्तूत्तरतो भवेत् ॥

अथात्रापि विशेषः ।

आसन्नाःकण्टकिनो रिपुभयदाः क्षीरिणोऽर्थनाशाय ।
फलिनः प्रजाक्षयकरा दारूण्यपि वर्जयेदेषाम् ॥१३॥
छिन्द्याद्यदि न तरूँस्तान् तदन्तरे पूजितान् वपेदन्यान् ।
पुन्नागाशोकारिष्टवकुलपनसान् शमीशालौ ॥ १४ ॥

वबुल, खैर आदि कांटे के वृक्ष गृह समीप में रहने से शत्रुभय होता है। दूध वाला वृक्ष गृह समीप होने से धननाश होता है। फल का वृक्ष समीप होने से सन्तान नाश करता है। परञ्च केवल रहने ही से ये फल नहीं होते यदि उनका काष्ठ गृह में लगाया जाय तो अशुभ होता है। यदि कण्टकादि वृक्षों को काटे नहीं और उनके मध्य में श्रेष्ठ पुन्नाग, अशोक, अरिष्ट, वकुल, पनस (कटहर), शमी, शाल ये रोप दिये जांय तो उपर्युक्त दोष नहीं होते हैं ॥ १३—१४ ॥

अथ वाटिकादिमाहात्म्यम्—

वाटिका वा तड़ागो वा कूपो वा यदि निर्मितः ।
गृहात्पूर्वे कुवेर्यां च वारुणे शम्भुकोणके ॥ १५ ॥
सदा सवित्री भविता सदा दानं प्रयच्छति ।
सदा यज्ञं स पूज्येत यो रोपयाति पादपम् ॥ १६ ॥

गृह से पूर्व या उत्तर अथवा पश्चिम या ईशान में जो वाटिका अथवा तड़ाग (तालाब) या कूप बनवाता है, वह सदा गायत्री का पुरश्चरण करता है । सदा दान देता है और सदा ही यज्ञ को करता है, ऐसा समझना चाहिये उसमें वृक्ष के निस्पत लता का फल ज्यादा है । जैसा कि लिखा है ॥ १५-१६ ॥

यथा—वरं भूमिरुहा पञ्च नतु कोष्ठरुहा दश ।
पत्रैः पुष्पैः फलैर्मूलैः कुर्वन्ति पितृतर्पणम् ॥

वास्तुप्रदीपेच—

क्षीरवृक्षा वटाश्वत्थरक्तपुष्पद्रुमास्तथा ।
सकण्टका शाल्मली च प्लक्षोदुम्बरसंज्ञकौ ॥१७॥
आग्नकोणे सदा दुष्टा मृत्युपीड़ा प्रदायकाः ।
पुन्नागफलिनीनिम्बदाडिमाशोकजातिकाः ॥ १८ ॥
नागकेशर-संपुष्पं जपाकुसुमकेसरे ।
जयन्ती चन्दनंप्रोक्तं वचा चैवापराजिता ॥
मधुविल्वाम्रभृङ्गाश्च नागरं कक्कुपादिकाः ।
यत्र तत्र स्थिताश्चैते नारिकेलादयः शुभाः ॥ १९ ॥

दुग्ध वृक्ष वट पीपल लालपुष्प का वृक्ष, कण्टकी वृक्ष, सेमर पाकड़ गुलर ये वृक्ष अग्नि कोणमें हमेशः दुष्ट होते हैं तथा मृत्यु और पीड़ा को भी देते हैं । पुन्नाग फलवालावृक्ष निम्ब दाडिम (अनार) अशोक जाती नागकेशर जपाकुसुम (अढ़उल या देवीपुष्प) केशर जयन्ती चन्दन वचा अपराजिता मधु विल्व आम्र भृङ्ग (दालचिनी) नागर नारिकेल ये सब चाहे जिस किसी दिशामें हों शुभ ही होते हैं ॥ १७१ ॥

अश्वत्थं च कदम्बं च कदली वीजपूरकम्।
गृहे यस्य प्ररोहन्ति सगृही न प्ररोहति ॥ २० ॥
सर्वत्र पनसः शस्तो दक्षिणे सकलाः खलाः।

पीपल कदम्ब कदली (केरा) वीजपूरक (वीजूनीवू) ये जिसके गृहमें रहता है वह गृही (गृहमें रहने वाला) बढ़ता नहीं है याने वंशादि उसके नहीं चलते, ॥ पनस (कटहर) सर्वत्र शुभ होता है पर दक्षिण दिशा में सभी वृक्ष बुरे होते हैं ॥ २० ॥

तथा च ग्रन्थान्तरे—

अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं
न्यग्रोधमेकं दशचिञ्चिणीकम्।
कपित्थविल्वामलकत्रयञ्च
पञ्चाम्रवापी नरकं न पश्येत् ॥ २१ ॥

एक पीपल एक निम्ब एक वट दश इम्ली, कैंत विल्व अवरा तीन और पांच आम को रोपने वाला मनुष्य नरक को नहीं देखता है ॥ २१ ॥

तथाचान्यः—

ईशाने रोपयेद्धात्रीं नैर्ऋत्ये चिञ्चिणीद्रुमान्।
आग्नेय्यां दाडिमं चैव वायव्ये विल्ववृक्षकम् ॥ २२ ॥
प्लक्षोत्तरे पूर्ववटं प्रशस्तं ह्युदुम्बरं दक्षिणभागकेच।
अश्वत्थवृक्षं दिशिवारुणस्यां मध्ये तथाम्रान्विविधप्रकारान् ॥

ईशान कोण में अवरा, नैर्ऋत्य कोण में इम्ली, अग्नि कोण में अनार वायव्य कोण में विल्व वृक्ष लगाना चाहिये। तथा पाकड़ उत्तर में, वट पूर्व में, उदुम्बर दक्षिण भाग में अश्वत्थ पश्चिम भाग में और मध्य में विविध प्रकार का आम रोपना चाहिये ॥ २२-२३ ॥ लिखा भी है यथा—

प्लक्षोत्तरे प्रशस्तश्च वटः पूर्वे च शोभनः।
उदुम्बरस्तथा याम्ये पिप्पलो वारुणे तथा ॥

तथान्यः--

याम्यनैर्ऋत्ययोर्मध्ये तथा जम्बुकदम्बकौ ।
पनसश्च तथाम्रश्च प्रशस्तौ शम्भुपूर्वयोः ॥ ८४ ॥
वाटिकायाः वहिः पूर्वे रोपयेद्वंशवृक्षकम् ।
उत्तरे च शमी वाह्ये पश्चिमे खदिरो वहिः ॥ ८५ ॥
दक्षिणे वकुलो वाह्येऽरिष्टनाशाय केवलम् ।
आम्राणां वाटिका चैव द्वितीयाश्वत्थवाटिका ॥ ८६ ॥
तृतीया वटवृक्षाणां चतुर्थी प्लक्षवाटिका ।
पञ्चमी निम्बवृक्षाणां षष्ठी जम्बुकवाटिका ॥ ८७ ॥
चिञ्चिणी वृक्ष-संभूता सप्तमी परिकीर्तिता ।
एतासां वाटिकानाञ्च प्रशस्ता चाम्रवाटिका ॥ २८ ॥
फलदा पुण्यदा चैव पापं संहरते ध्रुवम् ।
न तत्करोत्यग्नि होत्रं न पुत्रा योषितोद्भवाः ॥२६॥
यत्करोति घनच्छायः पादपः पथिरोपितः ॥

दक्षिण नैऋत्य के मध्य जामुन कदम्ब, ईशान पूर्व के मध्य कटहर आम लगाना शुभ है। एवं बगीचे के बाहर पूर्व दिशा में वांस लगाना शुभ होता है, उत्तर बाहर में शमी वृक्ष और बाहर पश्चिम दिशा में खैर लगाना शुभ है और बाहर दक्षिण दिशा में मौलेशरी शुभ होता है॥ प्रथम बगीचा आम्र का दुसरा पीपल का, तीसरा वट का, चौथा पाकड़ का, पांचवां निम्बका, छठा जम्बू का, और सातवां इम्ली का बगीचा होता है इन सवों में श्रेष्ठ आम का बगीचा होता है॥ जो मनुष्य अग्निहोत्र नहीं करता और जिसको औरत पुत्र भी नहीं है उसको आम्र के बगीचा लगानेही से सब पाप का हरण होकर पुण्य एवं स्वर्गादि फल मिलता है॥ २४—२६॥

यथोक्तम्—वाराहेण—

यो वाटिकां राजपथः समीपे
स्विष्टां तथा कूपसमन्विताञ्च ।

स्वर्गे च वासं लभते मनुष्य-
श्चतुर्युगं सर्वसुखैरुपेतः ॥ ३० ॥

जो मनुष्य राजपथ (सड़क) के समीप सुन्दर बगीचा और उत्तम कूप (इनारा) बनवाता है वह चार युग पर्यन्त सभी सुखों से युक्त स्वर्ग में वास करता है ॥ ३० ॥

वास्तुराज वल्लभे—

वामे भागे दक्षिणे वा नृपाणां
त्रेधा कार्या वाटिका क्रीडनार्थम् ।
एकद्वित्रिदण्डसंख्याशतं स्यान्
मध्ये धारामण्डपं तोययन्त्रैः ॥३१॥

राजाओं के गृह के वाम वा दक्षिण भाग में क्रीड़ा करने के लिये १०० हाथ २०० हाथ या ३०० हाथ की वाटिका बनाना चाहिये इसके मध्य में जल प्रपान मण्डप और जलयन्त्र (फुहारा) लगाना चाहिये ॥ ३१ ॥

क्षेत्रं सप्तविभागभाजितमतो भद्रं च भागत्रय ।
तन्मध्ये जलवापिका जिनपदैरेकांशतो वेदिका ॥
स्तम्भैर्द्वादशभिश्च मध्यरचितः कोणेषु रूपान्वितः ।
कर्तव्यो जलयन्त्र एष विधिवद्भोगाय पृथ्वीभुजाम् ॥३२॥

जलयन्त्र बनाने के स्थान को सात सात भाग याने ४९ भाग करना इसके मध्य में चारो ओर तीन भाग में भद्र (चबूतरा) बीच के २४ भाग में जलवापिका याने हौज बनाना सबके मध्य में एक भाग में वेदी बनाना मध्य में बारह स्तंभ युक्त मण्डप बनाना । कोणों में रूपान्वित (नकासी) करना ऐसा जलयन्त्र राजाओं के भोग के लिये बनाना चाहिये ॥३२ ॥

तस्यां चम्पककुन्दजातिसुमनोवल्ली च निर्मालिका ।
जातीहेमसमानकेतकिरपि श्वेता तथा पाटला ॥३३॥
नारिङ्गः करणी वसन्तलतिका चारक्तपुष्पादिकं ।
जंवीरो वदरी च पूगमधूपा जम्बू च चूतद्रुमाः ॥ ३४ ॥

3109

मालूरः कदली च चन्दनवटावश्वत्थपथ्या शिवाः ।
चिञ्चा शोक कदम्ब निम्बतरवः खर्जूरिका दाड़िमा ॥३५॥
कर्पूरागुरुकिंशुका हयरिपुः पुन्नागको निम्बुकी ।
प्रोक्ता नागलता च वीजनिभृतास्यात्तिन्दुकी लाङ्गली ३६

पहले कहे हुये वाटिका में चम्पा, कुन्द, चमेली, वेला, निर्मालिका (नरमाली), जाती पीले फूल की केतकी, सफेद गुलाव, नारियल, कनैल, वसन्तलता, लाल पुष्प, जंवीर (नीबू), वदरी (वैर), पूगी (सुपारी), मधूप (महुआ), चूत (आम्र), मालूर (विल्व), कदली, चन्दन, वट, अश्वत्थ (पीपल), पथ्या (हरीतकी), शिवा (आंवला), चिंचा (इमली), अशोर, कदम्ब, निम्ब, खजूर, दाड़िम (अनार), कपूर, अगर, किंशुक (पलाश), हयरिपु (सफेद कनैल), पुन्नाग (जायफल), नीबू, नागलता (नागवेल), वीजनिभृता (वीजू नीबू), तिन्दुकी (तेंदुआ), लांगली (करिहारी), इन वृक्षों को लगाना चाहिये ॥ ३३—३६ ॥

द्राक्षैलाशतपत्रिका च वकुला धत्तूरकङ्कोलकौ ।
सालास्तालतमालकौ मुनिवरौ मन्दार पारिद्रुमौ ॥
अन्ये भोग्यविचित्रखाद्यसकलास्ते रोपणीया बुधैः ।
यं प्राप्नोति च भूतले शुभतरुं तच्चम्पकान् वापयेत् ॥३७॥
अस्थानप्रतिसेचनाय च घटीयन्त्रः सुसारोभवेत् ।
दोला स्त्रीजनखेलनाय रुचिरे वर्षावसन्तोत्सवे ॥
वाला-प्रौढ़वधू सुमध्यवनितागानैर्मनोहारिभिः ।
ग्रीष्मे शारदकेऽथ शीतलजलक्रीड़ा शुभे मण्डपे ॥३८॥

द्राक्षा (दाख-अङ्गूर), एला (इलाइची), शतपत्रिका (शतावरी), वकुल (मौलेशरी), धत्तूर, कंकोल, शाल, ताल, तमाल, अगस्त, मन्दार (मदार), पारिजात तथा और भी उत्तम फूल के वृक्षों को लगाना तथा चम्पा सबसे अलग लगाना चाहिये । वृक्षों को सेचन करने के लिये सार वृक्षों का घटीयन्त्र वनाना, वर्षा और वसन्त में स्त्रियों के खेलने के लिये दोला वनाना । एवं ग्रीष्म और शरद् ऋतु में शीतल जलक्रीड़ा के लिये मण्डप वनाना उचित है ॥ ३७—३८ ॥

अथ गृहाच्चतुर्दिक्षु पादपरोपणमुहूर्तः ॥

लतागुल्मवृक्षरोपो हस्तपुष्याश्विनीध्रुवैः ।
विशाखा-मृग-मूलाह्व-वारुणैश्च प्रशस्यते ॥ ३८ ॥
गुरौकेन्द्रे शुभे शुक्रे विधौ वारिणि वोदये ।
शुभयुक्तेक्षितेबन्धौ सद्वारे वा शुभोदये ॥ ३९ ॥

हस्त, पुष्य, अश्विनी, उत्तरा ३, रोहिणी, विशाखा, मृगशिरा, मूल और शतभिष ये नक्षत्र हों, गुरु केन्द्र में हों, शुक्र अच्छे हों, चन्द्रमा जलचर राशि में हों अथवा लग्न जलचर हो, चतुर्थ में शुभग्रह का योग दृष्टि हो, शुभ वार अथवा शुभ लग्न हो तो; लता, गुल्म वृक्ष का रोपण शुभ होता है ॥ ३८—३९ ॥

अथ लतादिरोपणमन्त्रः ।

"ॐ वसुधेति च सीतेति पुण्यदेति धरेति च । नमस्ते शुभगे देवि द्रुमोयं वर्द्धतामिति," इस मन्त्र से वृक्षादिरोपण उत्तम होता है ।

अथ बृहस्पतिः—

सोमवारयुते मूले चापलग्ने महाद्रुमान् ।
स्थापयेज्जीवलग्ने च रेवत्यां गुरुवासरे ॥ ४० ॥

अथवा सोमवार के दिन मूल नक्षत्र हो तो धनुर्लग्न में वृक्ष रोपण शुभ है अथवा गुरुवार को रेवती नक्षत्र हो और गुरु लग्न में हों तो भी बड़े २ वृक्षों का रोपण शुभ होता है ॥ ४० ॥

अथ शक्तियामलोक्तवृक्षचक्रम्—

सूर्यभाद्दिनभं यावद् वृक्षचक्रं विधीयते ।
त्रयं मूले भवेद्रोगस्त्वचि त्रीणि धनागमः ॥ ४१ ॥
वेदश्शाखासु नाशः स्यात् पत्रे युग्मं दरिद्रता ॥
शीर्षे त्रीणि शुभं प्रोक्तं पूर्वे एकन्तु मृत्युदम् ॥४२॥
सुतनाशं पञ्च याम्ये पश्चिमे द्वे धनप्रदे ॥
स्याद्वेद उत्तरे लाभ इत्युक्तं शाक्तियामले ॥ ४३ ॥

वृत्त चक्र में सूर्य के नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिन कर पहले ३ नक्षत्र मूल में दिया जाय उसमें यदि वृक्ष रोपण हो तो रोग होता है । उसके वाद त्वचा में ३ नक्षत्र का फल धनागम, उसके वाद शाखा में ४ नक्षत्र का फल नाश उसके वाद पत्ते पर २ नक्षत्र का फल दरिद्रता, वाद उसके शीर्ष पर ३ नक्षत्र का फल शुभ है । उसके वाद पूर्व में १ नक्षत्र का फल मृत्युकारक, वाद इसके दक्षिण में ५ नक्षत्र का फल पुत्रनाश, वाद पश्चिम में २ नक्षत्र का फल धनद, उसके वाद उत्तर में ४ नक्षत्र का फल लाभ है । यह शक्तियामल में लिखा है ॥ ४१—४३ ॥

अथान्यः—

तिथिवारसमायुक्तं सूर्यभादिन्दुभंयुतम् ।
नवभिस्तु हरेद्भागं शेषाङ्के रोपणं फलम् ॥ ४४ ॥
एके शरे त्रि फलितं निष्फलं वेदपक्षयोः ।
वसौषष्ठे भवेल्लाभो सप्तमे नवमे मृतिः ॥ ४५ ॥

सूर्य के नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गिन कर उसमें तिथि वार मिलाकर और ९ का भाग देना, शेषाङ्क से वृक्षरोपण का फल है । यथा १, ५, ३, शेष में वृक्ष फलता है । ४, २, शेष में निष्फल होता है, ८, ६, में लाभ और ७, ९, शेष में मृत्यु होता है ॥ ४४—४५ ॥

इति गृहाचतुर्दिक्षु पादपरोपण विचारः ।

अथदकार्गलम् ।

अथ दकार्गलं व्याख्यायते तत्रवाराह:—

धर्म्यं यशस्यं च वदाम्यतोऽहं
दकार्गलं येन जलोपलब्धिः ।
पुंसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव-
क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः ॥१॥
एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं
नभस्तो वसुधाविशेषात् ।

नानारसत्वं बहुवर्णतां च
गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव ॥२॥

अब इस प्रकरण के बाद वाराहमिहिर का कहा हुआ दकार्गल (जलोपलब्धि प्रकार) कहता हूं यह दकार्गल कैसा है कि धर्म और यश को देता है, जैसे पुरुष के अङ्गमें ऊँची नीची शिरायें होती हैं वैसे ही भूमि के भी ऊँची नीची शिरायें हैं, जल एकही वर्ण और रस (स्वाद) से युक्त होकर आकाश से गिरता है पर भूमि विशेष होने के कारण नाना रस और नाना प्रकार का वर्ण हो-जाता है अतः भूमि वर्ण के तुल्य नाना प्रकार के रस वर्ण का विचार करना चाहिये ।

यथोक्तम्—सशर्करा ताम्रमही कषायं क्षारं धरित्री कपिला करोति ।
आपाण्डुरायां लवणं प्रदिष्टमिष्टं पयो नीलवसुन्धरायाम् ॥

अथ शिरानामान्याह—

पुरुहूतानलयमनिर्ऋतिवरुणपवनेन्दुशङ्करा देवाः ।
विज्ञातव्याः क्रमशः प्राच्याद्यानां दिशां पतयः ॥३॥
दिक्पतिसञ्ज्ञा च शिरा नवमी मध्ये महाशिरानाम्नी ।
एताभ्योऽन्याः शतशो विनिःसृता नामभिः प्रथिताः ॥४॥
पातालादूर्ध्वशिरा शुभा चतुर्दिक्षु संस्थिता याश्च ।
कोणदिगुत्था न शुभाः शिरानिमित्तान्यतो वक्ष्ये ॥५॥

इन्द्रादि देवता क्रम से पूर्वादि दिशाओं के स्वामि होते हैं जैसे पूर्व का इन्द्र, अग्निकोण का अग्निदेव, दक्षिण का यम निर्ऋति का नैऋत्य पश्चिम का वरुण वायव्य का वायु देव उत्तर का चन्द्रमा और ईशान कोण का स्वामि शङ्कर जी होते हैं, दिशाओं के जो पति कहे तन्नामोपलक्षित शिरा होता है । जैसे पूर्व दिशा में जो शिरा है उसका नाम ऐन्द्री अग्निकोण में आग्नेयी दक्षिण में याम्या इसी तरह शेष दिशा में भी नाम होता है, एवं आठ दिशा में आठ शिरा होते हैं मध्य में महाशिरानामक नववी शिरा होती है, याने पूर्वोक्त दिशा और कोण के मध्य में नववी महाशिरा होती है और इन नवों शिराओं से अन्य भी सैकड़ों शिरायें होती हैं जिनका नाम पृथक् २ होता है, पाताल में ऊर्ध्व जो शिरा होती है वह शुभ है जो शिरा चतुर्दिक्षु में हैं वे भी शुभ होती हैं कोणादि से उत्पन्न शिरा शुभ नहीं होती अतः अब शिरा चिन्ह कहता हूं ॥

अथ तानि ताह—

यदि वेतसोऽम्वुरहिते देशे हस्तैस्त्रिभिस्ततः पश्चात् ।
सार्द्धे पुरुषे तोयं वहति शिरा पश्चिमा तत्र ॥६॥
चिह्नमपि चार्धपुरुषे मण्डूकः पाण्डुरोऽथ मृत् पीता ।
पुटभेदकश्च तस्मिन् पाषाणो भवति तोयमधः ॥७॥

जल रहित देश में याने जिस में स्वभावही में जल नहीं निकलता उस देश में यदि वेतस (वेंत) वृक्ष देख पड़े तो उस वृक्ष से पश्चिम दिशा में तीन हाथ दूरी पर सार्द्ध पुरुष (डेढ़ पोरसा) नीचे जल कहना चाहिये वहां पर पश्चिमा शिरा बहती है (पुरुष मान १२० अङ्गुल का जानना) उसमें चिन्ह ये हैं उस स्थान में अर्ध पुरुष (६० अङ्गुल) नीचे पर पाण्डुर (कुछ सपेद पीला) वर्ण का मेढक रहता है उसके नीचे पीत वर्ण मृत्तिका उसके नीचे पुटभेदक पाषाण (पत्थर) रहता है उसके वाद जल मिलता है ॥

तथा च सारस्वतः—

निर्जले वेतसं दृष्ट्वा तस्माद्वृक्षादपि त्रयम् ।
पश्चिमायां दिशि ज्ञेयमधः सार्धेन वै जलम् ॥
नरोऽत्र षष्ठिर्द्विगुणा चाङ्गुलानां प्रकीर्तितः ।
तत्र खात्वाऽर्धपुरुषं भेकः पाण्डुरवर्णकः ॥
मृत् पीता पुटभेदश्च पाषाणोऽधस्ततो जलम् ।
शिरा पश्चिमदिक्स्थात्र वहतीति विनिर्दिशेत् ॥

अन्यदप्याह—

जम्ब्वाश्चोदग्घस्तैस्त्रिभिः शिराधो नरद्वये पूर्वा ॥
मृल्लोहगन्धिका पाण्डुरा च पुरुषेऽत्र मण्डूकः ॥ ८ ॥

जल रहित देश में जम्बू वृक्ष हो तो उस वृक्ष से उत्तर दिशा में तीन हाथ दूरी पर दो पुरुष नीचे पूर्वा शिरा वहती है उसका चिन्ह यों है पहले १ पुरुष नीचे लोह सदृश गन्धकी मृत्तिका रहती है उसके वाद थोड़ा श्वेत उसके नीच मण्डूक (भेंक) रहता है ॥

अन्यदप्याह —

जम्बूवृक्षस्य प्राग्वल्मीको यदि भवेत् समीपस्थः ।
तस्माद्दक्षिणपार्श्वे सलिलं पुरुषद्वये स्वादु ॥ ९ ॥

अर्धपुरुषे च मत्स्यः पारावतसन्निभश्च पाषाणः ।
मृद्भवति चात्रनीला दीर्घं कालं च बहुतोयम् ॥ १० ॥

जम्बू वृक्ष से पूर्व समीप में ही यदि वल्मीक हो तो उस वृक्ष से ३ हाथ दक्षिण दो पुरुष नीचे खोदने से स्वादु (मीठा) जल होता है वहां पर भी चिन्ह ऐसा होता है, पहले आधे पुरुष नीचे खोदने से मछली देख पड़ती है उसके नीचे पारावत (कबूतर) सदृश वर्ण का पत्थर मिलता है उसके बाद नील वर्ण मृत्तिका रहती है उसके बाद चिरकाल व्यापी बहुत जल रहता है ॥ १० ॥

तथा च सारस्वतः—

जम्बूवृक्षात् पूर्वभागे वल्मीको यदि दृश्यते।
तरोर्दक्षिणतो हस्तांस्त्रींस्त्यक्त्वाऽधो जलं वदेत् ॥
नरद्वयेऽर्धपुरुषे मत्स्योऽश्मा पक्षिसन्निभः ।
ततोऽपि मृत्तिका नीला ततो मृष्टं जलं वदेत् ॥

अन्यदप्याह—

पश्चादुदुम्बरस्य त्रिभिरेव करैर्नरद्वये सार्धे ।
पुरुषे सितोऽहिरश्माञ्जनोपमोऽधः शिरा सुजला ॥११॥

यदि निर्जल देश में उदुम्बर (गुलर) वृक्ष देख पड़े तो उदुम्बर से पश्चिम ३ हाथ दूरी पर २॥ पुरुष नीचे स्वादु जल निकलता है यहां भी चिन्ह ये हैं आधे पुरुष नीचे पहले सपेद सर्प निकलेगा—उसके बाद अञ्जन सदृश काला पत्थर देख पड़ेगा उसके नीचे शिरा होगी जिसमें स्वादु जल रहता है यहां उदुम्बर के समीप वल्मीक हो या न हो इसके लिये विशेषता नहीं है ॥११॥

अन्यदप्याह—

उदगर्जुनस्य दृश्यो वल्मीको यदि ततोऽर्जुनाद्धस्तैः ॥
त्रिभिरम्बु भवति पुरुषैस्त्रिभिरर्धसमन्वितैः पश्चात् ॥ १२॥
श्वेता गोधार्धनरे पुरुषे मृद्धूसरा ततः कृष्णा ॥
पीता सिताससिकता ततो जलं निर्दिशेदमितम् ॥१३॥

अर्जुन वृक्ष के उत्तर दिशा यदि वल्मीक देख पड़े तो अर्जुन वृक्ष से पश्चिम ३ हाथ दूरी पर ३॥ पुरुष नीचे जलहोताहै । वहां चिन्ह ये होते हैं

पहले ½ पुरुष नीचे सपेद गोधा (गोह) देख पड़ेगी उसके एक पुरुष नीचे धूसर (काला सपेद) मृत्तिका वाद उसके काली मिट्टी उसके नीचे पीतवर्ण मृत्तिका उसके बाद वालु सहित सपेद मिट्टी उसके नीचे वहुत जल निकलेगा ऐसा कहना चाहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥

अन्यदप्याह—

वल्मीकोपचितायां निर्गुण्ड्यां दक्षिणेन कथितकरैः ।
पुरुषद्वये सपादे स्वादु जलं भवति चाशोष्यम् ॥ १४ ॥
रोहितमत्स्योऽर्धनरे मृत् कपिला पाण्डुरा ततः परतः ।
सिकता सशर्कराऽथ क्रमेण परतो भवत्यम्भः ॥ १५ ॥

निर्गुण्डी (सफेद फूलका एक वृक्ष होता है) वृक्षके समीपवल्मीक होतो उस वृक्ष सें दक्षिण दिशामें ३ हाथ दूरी पर २¼ पुरुष नीचे स्वदुजल वहुत (अगाध) होता है उसका चिन्ह यों है पहले ½ पुरुष नीचे खोदने सें रोहित मछली मिलेगी उसके नीचे (कपिल) गौर वर्ण मृत्तिका उसके नीचे पाण्डुर (कुछ सफेद) मिट्टी उसके नीचे वालुका सहित मिट्टी उसके बाद जल मिलेगा ॥ १४-१५ ॥

अन्यदप्याह—

पूर्वेण यदि वदर्या वल्मीको दृश्यते जलं पश्चात् ।
पुरुषैस्त्रिभिरादेश्यं श्वेता गृहगोधिकार्द्धनरे ॥ १६ ॥

यदि वदरी (वैर) वृक्ष से पूर्वमें वल्मीक होवै तो वदरी वृक्ष से पश्चिम ३ हाथ दूरी पर ३ पुरुष नीचे जल कहना, पहले ½ पुरुप नीचे सफेद गृहगोधिका (सरट = गिरगिट) देख पड़ेगा । (सरटः कृकलासः स्यान्मुसली गृहगोधिका इत्यमरः) ॥ यथोक्तम्—

पूर्वभागं वदर्याश्चेद्वल्मीको दृश्यते जलम् ।
पश्चाद्धस्तत्रये वाच्यं खाते तु पुरुषत्रये ॥
अधःखातेऽर्धपुरुषे दृश्यते गृहगोधिका ।
श्वेतवर्णा ततोऽधःस्थं जलं भवति निर्मलम् ॥

अन्यदप्याह—

सपलाशा वदरी चेद्दिश्यपरस्यां ततो जलं भवति ।
पुरुषत्रये सपादे पुरुषेऽत्र च दुण्डुभश्चिन्हम् ॥ १७ ॥

निर्जलदेशमें पलाश सहित यदि बदरीवृक्ष देख पड़े वल्मीक सहित हो या-नहीं हो तो उस बदरीवृक्ष से पश्चिम ३ हाथ दूरी पर ३¼ पुरुष नीचे जल कहना यहां चिह्न यह है कि १ पुरुष नीचे पहले निर्विष सर्प मिलेगा, यथोक्तम् सारस्वतेन।

पलाशयुक्ता बदरी यत्र दृश्या ततोपरे।
हस्तत्रयादधस्तोयं सपादे पुरुषत्रये॥
नरे तु डुण्डुभः सर्पो निर्विषश्चिन्हमेव च।
अधस्तोयश्च सुस्वादु दीर्घकालं प्रवाहितम्॥ इति

अन्यदप्याह—

बिल्वोदुम्बरयोगे विहाय हस्तत्रयं तु याम्येन।
पुरुषैस्त्रिभिरम्बु भवेत् कृष्णोऽर्द्धनरे च मण्डूकः॥१८॥

बिल्व (बेल) उदुम्बर (गूलर) का जहाँ योग हो याने एकही साथ दोनों वृक्ष जहां हों वहाँ से दक्षिण ३ हाथ दूरी छोड़कर बाद में ३½ हाथ नीचे जल कहना, उसमें पहले ½ पुरुष नीचे काला मण्डूक (मेढ़क) देख पड़ेगा॥१८॥

अन्यदप्याह—

काकोदुम्बरिकायां वल्मीको दृश्यते शिरा तस्मिन्।
पुरुषत्रये सपादे पश्चिमदिक्स्था वहति सा च॥१९॥
आपाण्डुपीतिका मृद्गोरसवर्णश्च भवति पाषाणः।
पुरुषार्धे कुमुदनिभो दृष्टिपथं मूषको याति॥२०॥

काकोदुम्बरिका (काला उदुम्बर) जहाँ हो उसके समीप यदि वल्मीक देख पड़े तो उस वल्मीक में ही ३¼ पुरुष नीचे पश्चिम शिरा होती है। उसमें चिन्ह ये हैं पहले पीतवर्ण मृत्तिका, उसके नीचे शुक्ल वर्ण पाषाण (पत्थर) और उसके नीचे ½ पुरुष पर सपेद मूषक दृष्टिगोचर होगा।

अन्यदप्याह—

जलपरिहीने देशे वृक्षः कम्पिल्लको यदा दृश्यः।
प्राच्यां हस्तत्रितये वहति शिरा दक्षिणा प्रथमम्॥२१॥

मृन्नीलोत्पलवर्णा कापोता दृश्यते ततस्तस्मिन् ।
हस्तेऽजगन्धको मत्स्यकः पयोऽल्पं च सक्षारम् ॥२२॥

यदि निर्जल देश में कम्पिल्लक वृक्ष देख पड़े तो उससे पूर्व ३ हाथ के बाद ३¼ पुरुष नीचे शिरा बहती है। पहले नील कमल के वर्ण सदृश मृत्तिका बाद इसके कपोतवर्ण सदृश मिट्टी, इसके १ हाथ नीचे बकरा के गन्ध सदृश मछली देख पड़ेगी। इसके बाद थोड़ा जल कहना वह भी क्षार (खार) होगा ॥ २१-२२ ॥

तथा च सारस्वतः—निर्जले यत्र कम्पिल्लो दृश्यस्तस्मात् करत्रये ।
प्राच्यां त्रिभिर्नरैर्वारि सा भवेद्दक्षिणा शिरा ॥
अधो नीलोत्पलाभासा मृत् कापोतप्रभा क्रमात् ।
हस्तेऽजगन्धको मत्स्यो जलमल्पमशोभनम् ॥

अन्यदप्याह—

शोणाकतरोरपरोत्तरे शिरा द्वौ करावतिक्रम्य ।
कुमुदा नाम शिरा सा पुरुषत्रयवाहिनी भवति ॥२३॥

जल रहित देश में जहाँ पर शोणाक (सोनापाढ़ा) वृक्ष देख पड़े वहाँ से पश्चिम उत्तर (वायव्य कोण) दिशा में दो हाथ के बाद कुमुदा नाम शिरा होती है वहाँ तीन पुरुष नीचे जल रहता है ॥ २३ ॥

अन्यदप्याह—

आसन्नो वल्मीको दक्षिणपार्श्वे विभीतकस्य यदि ।
अध्यर्धे भवति शिरा पुरुषे ज्ञेया दिशि प्राच्याम् ॥२४॥

यदि विभीतक (बहेरा) वृक्ष के समीप दक्षिण दिशा में वल्मीक हो तो उस बहेरा के वृक्ष से पूर्व २ हाथ के बाद १½ पुरुष के नीचे शिरा रहती है वहाँ जल समझना चाहिये ॥ २४ ॥

तथा च सारस्वतः—विभीतकस्य याम्यायां वल्मीको यदि दृश्यते ।
करद्वयान्तरे पूर्वे सार्धे च पुरुषे जलम् ॥

अथान्यदप्याह—

तस्यैव पश्चिमायां दिशि वल्मीको यदा भवेद्धस्ते ।
तत्रोदग्भवति शिरा चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः ॥२५॥

श्वेतो विश्वम्भरकः प्रथमे पुरुषे तु कुङ्कुमाभोऽश्मा ।
अपरस्यां दिशि च शिरा नश्यति वर्षत्रयेऽतीते ॥२६॥

उसी वहेरा वृक्ष के पश्चिम दिशामें यदि वल्मीक होतो उस वृक्षसे उत्तर १ हाथ छोड़कर ४½ पुरुष नीचे शिरा बहती है। वहां पर भी चिन्ह ये हैं पहले १ पुरुष खोदने पर सफेद वर्णका विश्वम्भर (जीव विशेष) देख पड़ेगा उसके बाद कुंकुम सदृश (लाल) पत्थर मिलेगा उसके बाद पश्चिम दिशामें बहती हुई शिरा होगी वह शिरा ३ वर्ष गत हो जाने पर मिट जाती है ॥२५-२६॥

अन्यदप्याह—

सकुशासित ऐशान्यां वल्मीको यत्र कोविदारस्य ।
मध्ये तयोर्नरैरर्धपञ्चमैस्तोयमक्षोभ्यम् ॥ २७ ॥
प्रथमे पुरुषे भुजगः कमलोदर सन्निभो महीरक्ता ।
कुरुविन्दः पाषाणश्चिन्हान्येतानि वाच्यानि ॥ २८ ॥

जिस भूमिपर कोविदार (कचनार) का वृक्ष हो यदि उस वृक्ष से ईशान कोणमें कुशा से युक्त वल्मीक सफेद रंग का होतो उस कचनार और वल्मीक के मध्य में ४½ पुरुष नीचे अक्षोभ (कभी भी न सूखे) जल कहना चाहिये वहां चिन्ह ये होते हैं। पहले पुरुष में कमलोदर सदृश सर्प मिलेगा उसके बाद लाल (लोहित) वर्ण भूमि मिलेगी, उसके बाद कुरुविन्द (हरे रंग-का पत्थर) होगा, इतना चिन्ह वहां कहना चाहिये ॥ २७-२८ ॥

अन्यदप्याह—

यदि भवति सप्तपर्णो वल्मीकवृक्षस्तदुत्तरे तोयम् ।
वाच्यं पुरुषैः पञ्चभिरत्रापि भवन्ति चिह्नानि ॥२९॥
पुरुषार्धे मण्डूको हरितो हरितालसन्निभा भूश्च ।
पाषाणोऽभ्रनिकाशः सौम्या च शिरा शुभाम्बुवहा ॥३०॥

यदि वल्मीक से युक्त सप्तपर्ण (छतीवन) वृक्ष हो तो उस वृक्ष से उत्तर १ हाथ दूरी पर पांच पुरुष नीचे जल रहता है। उसमें चिन्ह ये हैं। पहले ½ पुरुष नीचे हरितवर्ण का मेढक मिलेगा उसके बाद हरिताल सदृश भूमि मिलेगी, उसके बाद मेघ सदृश रंग का पत्थर मिलेगा उसके नीचे उत्तराशिरा होगी जिसका जल मीठा होगा ॥ २९-३० ॥

१५

तथा च सारस्वतः—

भुजङ्गगृहसंयुक्तो यत्र स्यात् सप्तपर्णकः ।
ततः सौम्ये हस्तमात्रात् पञ्चभिः पुरुषैरधः ॥
वाच्यं जलं नरार्धं तु मण्डूको हरितो भवेत् ।
हरितालनिभा भूश्च मेघाभोऽश्मा ततः शिरा ॥
उत्तरा सुजला ज्ञेया दीर्घा मृष्टाम्बुवाहिनी ।

अन्यदप्याह—

सर्वेषां वृक्षाणामधः स्थितो दर्दुरो यदा दृश्यः ।
तस्माद्धस्ते तोयं चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः ॥३१॥
पुरुषे तु भवति नकुलो नीला मृत् पीतिका ततः श्वेता ।
दर्दुरसमानरूपः पाषाणो दृश्यते चाऽत्र ॥३२॥

सभी वृक्षों में जिसके नीचे दर्दुर (मेढक) हो, उस वृक्ष के उत्तर दिशा में १ हाथ दूरी पर ४½ पुरुष नीचे जल रहता है। वहां पर चिन्ह ये हैं एक पुरुष खोदने से नकुल (नवला—नेउर) मिलेगा उसके वाद नीली मिट्टी, उसके वाद सपेद मिट्टी उसके वाद दर्दुर (मेढक) सदृश पत्थर मिलेगा उसके नीचे जल होगा॥ ३१-३२ ॥

तथा च सारस्वतः—

तरुणां यत्र सर्वेषामधस्थो दर्दुरो भवेत् ।
वृक्षादुदग्दिशि जलं हस्तात् सार्धैर्नरैरधः ॥
चतुर्भिः पुरुषे खाते नकुलो नीलमृत्तिका ।
पीतश्वेता ततो भेकसदृशोऽश्मा प्रदृश्यते ॥

अन्यदप्याह—

यद्यहिनिलयो दृश्यो दक्षिणतः संस्थितः करञ्जस्य ।
हस्तद्वये तु याम्ये पुरुषत्रितये शिरा सार्धे ॥३३॥
कच्छपकः पुरुषार्द्धे प्रथमं चोद्भिद्यते शिरा पूर्वा ।
उदगन्या स्वादुजला हरितोऽश्माधस्ततस्तोयम् ॥३४॥

यदि करञ्ज वृक्ष के दक्षिण दिशा में सर्पावास का वल्मीक दीख पड़े तो करञ्ज वृक्ष से दक्षिण दिशा में २ हाथ दूरी के वाद ३½ पुरुष नीचे शिरा रहती है उसके चिन्ह ये हैं। पहले ½ पुरुष खोदने पर कच्छप (कछुआ) मिलेगा।

उसके वाद पहले पूर्वाशिरा (पूर्वाभिमुख जल बहता हुआ) देख पड़ेगा दूसरा उत्तरा शिरा मीठा जलवाला मिलेगा उसके नीचे हरे रंग का पत्थर मिलेगा उसके वाद जल मिलेगा ॥ ३३-३४ ॥

अन्यदप्याह—

उत्तरतश्च मधूकादहिनिलयः पश्चिमे तरोस्तोयम् ।
परिहृत्य पञ्च हस्तानर्धाष्टमपौरुषान् प्रथमम् ॥ ३५ ॥
अहिराजः पुरुषेऽस्मिन् धूम्रा धात्री कुलुत्थवर्णोऽश्मा ।
माहेन्द्री भवति शिरा वहति सफेनं सदा तोयम् ॥३६॥

मधूक (महुआ) वृक्ष से उत्तर दिशा में यदि सर्पका वल्मीक देख पड़े तो मधूक वृक्ष से पश्चिम ५ हाथ दूरी के वाद ७ ½ पुरुष नीचे जल रहता है पहले १ पुरुष नीचे सर्पराज मिलेगें उसके नीचे धूम्र (रक्त श्याम) वर्ण भूमि होगी उसके नीचे कुलुत्थ वर्ण का पत्थर मिलेगा वहां पर माहेन्द्री नाम पूर्वा शिरा होती है उसमें सर्वदा फेन युक्त जल बहता है ॥ ३५-३६ ॥

अन्यदप्याह—

वल्मीकः स्निग्धो दक्षिणेन तिलकस्य सकुशदूर्वश्चेत् ।
पुरुषैः पञ्चभिरम्भो दिशि वारुण्यां शिरा पूर्वा ॥ ३७ ॥

यदि तिलक वृक्ष से दक्षिण उत्तम वल्मीक हो वहां पर कुशा और दूर्वा लगी हो तो तिलक वृक्ष से पश्चिम ५ हाथ के बाद पांच पुरुष नीचे जल रहता है वहां पूर्वाशिरा है ॥ ३७ ॥

तथा च सारस्वतः—

तिलकाद्दक्षिणे स्निग्धः कुशदूर्वासमायुतः ।
वल्मीकाच्चोत्तरे पञ्च हस्तात् सन्त्यज्य पश्चिमे
नरः पञ्चभिरम्भोऽधः शिरा पूर्वात्र विद्यते ॥

अन्यदप्याह—

सर्पावासः पश्चाद्यदा कदम्बस्य दक्षिणेन जलम् ।
परतो हस्तत्रितयात् षड्भिः पुरुषैस्तुरी[illegible]ः ॥३८॥
कौवेरी चात्र शिरा वहति जलं लोहगं [illegible]स्यम् ।
कनकनिभो मण्डूको नरमात्रे मृत्तिसन्[illegible]का पीता ॥ ३९ ॥

यदि कदम्ब वृक्ष से पश्चिम दिशामें सर्पावास वल्मीक हो तो दक्षिण दिशामें ३ हाथ दूरी के वाद ५ $\frac{१}{२}$ पुरुष नीचे जल वहता है ॥ वहां उत्तरा शिरा होती है लोहेके गन्ध सदृश अत्यन्त जल वहता है उसमें चिन्ह ये हैं पहले एक पुरुष नीचे खोदने से सुवर्ण सदृश माण्डूक (मेढ़क) मिलता है और पीत वर्ण की मिट्टी रहती है ॥ ३८-३९ ॥

अन्यदप्याह—

वल्मीकसंवृतो यदि तालो वा भवति नालिकेरो वा ।
पश्चात् षड्भिर्हस्तैर्नरैश्चतुर्भिः शिरा याम्या ॥ ४० ॥

ताल वृक्ष या नालिकेर (नारियल) का वृक्ष यदि वल्मीक से युक्त हो तो उस ताल और नारियल वृक्ष से पश्चिम दिशामें ६ हाथ के वाद ४ पुरुष नीचे दक्षिणा शिरा वहती है ॥ ४० ॥

अन्यदप्याह—

याम्येन कपित्थस्याहिसंश्रयश्चेदुदग्जलं वाच्यम् ।
सप्त परित्यज्य करान् खात्वा पुरुषान् जलं पञ्च ॥४१॥
कर्बुरकोऽहिः पुरुषे कृष्णा मृत् पुटभिदपि च पाषाणः।
श्वेता मृत् पश्चिमतः शिरा ततश्चोत्तरा भवति ॥४२॥

यदि कपित्थ (कईत) वृक्ष से दक्षिण दिशामें सर्पावास वल्मीक हो तो उस कपित्थ वृक्ष से उत्तर ७ हाथ परित्याग करके पांच पुरुष नीचे जल कहना, उसमें चिन्ह ये हैं पहले १ पुरुष खोदने पर कर्वुर (चित्र) वर्ण का सर्प होगा और काली २ मिट्टी होगी उसके वाद पुटभेदी पत्थर होगा वाद श्वेत मृत्तिका वहां ही पश्चिमा शिरा १ होगी उसके वाद उत्तरा शिरा भी होगी ४१-४२

अन्यदप्याह—

अश्मन्तकस्य वामे वदरी वा दृश्यतेऽहिनिलयो वा ।
षड्भिरुदक् तस्य करैः सार्धे पुरुषत्रये तोयम् ॥ ४३ ॥
कूर्मः प्रथमे पुरुषे पुषाणो धूसरः ससिकता मृत् ।
आदौ [illegible] शिरा [illegible] पूर्वोत्तरतो द्वितीया च ॥ ४४ ॥

अश्मन्तक वृक्षके वा[illegible] उत्तर दिशामें वदरीवृक्ष हो वा सर्पावास वल्मीक हो तो उस अश्मन्तक वृक्ष [illegible] से उत्तर दिशामें ६ हाथ के वाद ३½ पुरुष

नीचे जल होता है वहां चिह्न ये हैं, १ पुरुष खोदने से कूर्म (कछुआ) देख पड़ेगा उसके बाद धूसर (काला-सफेद) वर्णका पत्थर होगा उसके नीचे बालुकायुक्त मिट्टी बाद पहले दक्षिण शिरा होगी उसके बाद दूसरा पूर्वोत्तरा (ऐशानी) शिरा होती है ॥ ४३-४४ ॥

अन्यदप्याह—

वामेन हरिद्रतरोर्वल्मीकश्चेज्जलं भवति पूर्वे ।
हस्तात्रितये सत्र्यंशैः पुम्भिः पञ्चभिर्भवति ॥ ४५ ॥
नीलो भुजगः पुरुषे मृत् पीता मरकतोपमश्चाश्मा ।
कृष्णा भूः प्रथमं वारुणी शिरा दक्षिणेनान्या ॥४६॥

हरिद्रा वृक्षके उत्तर भाग में यदि वल्मीक देख पड़े तो हरिद्रा वृक्ष से पूर्व दिशा में ३ हाथ के बाद ५ ⅓ पुरुष नीचे जल रहता है। वहां पर भी पहले १ पुरुष नीचे नील सर्प देख पड़ेगा बाद उसके नीचे पीली मिट्टी उसके बाद मर्कत सदृश पत्थर मिलेगा बाद काली भूमि वहां वारुणी (पश्चिमा) शिरा पहले होगी दुसरी दक्षिणा शिरा होगी ॥ ४५-४६ ॥

अन्यदप्याह—

जलपरिहीने देशे दृश्यन्तेऽनूपजानि चेन्निमित्तानि ।
वीरणदूर्वा मृदवश्च यत्र तस्मिन् जलं पुरुषे ॥ ४७ ॥
भार्ङ्गी त्रिवृता दन्ती सूकरपादी च लक्ष्मणा चैव ।
नवमालिका च हस्तद्वयेऽम्बु याम्ये त्रिभिः पुरुषैः ॥४८॥

जल रहित देश में जहां पर नीचे लिखे चिन्ह देख पड़ें वहां वहुत जल कहना चाहिये याने जहां पर जल रहता है उसके ऊपर वीरण तृण विशेष और दूर्वा होती है वहां की भूमि अति कोमल होती है उस भूमि पर १ पुरुष नीचे जल रहता है ॥ भार्ङ्गी (ब्रह्मदण्डी) त्रिवृता (त्रिधारा) दन्ती (वज्रदन्ती) सूकरपादी (केवाँच) लक्ष्मणा नवमालिका (नेवारी) वृक्ष ये सव वृक्ष जहां हो उससे दक्षिण २ हाथ के वाद ३ पुरुष नीचे जल रहता है ॥ ४७-४८ ॥

अन्यदप्याह—

स्निग्धाः प्रलम्बशाखा वामनाविकटद्रुमाः समीपजलाः ।
सुषिरा जर्जरपत्रा रूक्षाश्च जलेन सन्त्यक्ताः ॥ ४९ ॥

जो वृक्ष स्निग्ध (चिकना) प्रलम्ब शाखा (फैली हुई लताओंसे युक्त) वामन (अत्यन्त छोटा) विकट (विस्तीर्ण) हों उनके समीप में जल रहता है तथा जो वृक्ष सुषिर (अन्तः सार,) जर्जर (फटा हुआ) पत्र तथा रूक्ष (रूखर) हैं उनके समीप जल नहीं रहता है ॥ ४९ ॥

अन्यदप्याह—

तिलकाम्रातकवरुणकभल्लातकविल्वतिन्दुकाङ्कोलाः ।
पिण्डारशिरीषाञ्जनपरूषका वञ्जुलोऽतिबला ॥ ५० ॥
एते यदि सुस्निग्धा वल्मीकैः परिवृतास्ततस्तोयम् ।
हस्तैस्त्रिभिरुत्तरतश्चतुर्भिरर्धेन च नरेण ॥ ५१ ॥

तिलक वृक्ष अम्रातक (अमड़ा) वरुणक वृक्ष भल्लातक (भिलावा) विल्व, तिन्दुक (तेन्दुआ), अङ्कोल, पिण्डार, शिरीष, अञ्जन वृक्ष, परुषक वृक्ष वञ्जुल और अतिवला, ये वृक्ष यदि सुस्निग्ध वल्मीक करके युक्त हों तो इन तिलकादि वृक्षों से उत्तर दिशा में ३ हाथ के वाद ४½ पुरुष नीचे जल कहना चाहिये ॥ ५०-५१ ॥

अन्यदप्याह--

अतृणे सतृणा यस्मिन् सतृणे तृणवर्जिता मही यत्र ।
तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा वक्तव्यं वा धनं चास्मिन् ॥५२॥

तृण रहित भूमि पर जहां तृण हो अथवा तृण सहित भूमि पर जहां तृण न हो उस स्थान के नीचे शिरा कहना, वहां जल रहता है अथवा उस स्थान में धन रहता है । किसी के मत से ४½ पुरुष नीचे रहता है, यह अनुवर्तन किया गया है ॥ ५२ ॥

अन्यदप्याह----

कण्टक्यकण्टकानां व्यत्यासेऽम्भस्त्रिभिः करैः पश्चात् ।
खात्वा पुरुषत्रितयं त्रिभागयुक्तं धनं वा स्यात् ॥५३॥

जहां पर कण्टकी वृक्ष (खैरा आदि) अकण्टक (पलासादि) वृक्ष के मध्य में हो अथवा विपरीत हो याने कण्टकी वृक्ष के मध्य अकण्टक वृक्ष हो तो उस वृक्ष से पश्चिम दिशा में ३ हाथ के वाद ३⅓ पुरुष खोदने से उसके नीचे जल अथवा धन रहता है ॥ ५३ ॥

अन्यदप्याह—

नदति मही गम्भीरं यस्मिंश्चरणाहता जलं तस्मिन् ।
सार्धैस्त्रिभिर्मनुष्यैः कौवेरी तत्र च शिरा स्यात् ॥५४॥

जिस स्थान पर भूमि को पाद (चरण) से आहत (मारण) करने से गम्भीर (मधुर) शब्द करे उसी स्थान में ३½ पुरुष नीचे उत्तरा शिरा वहती है, वहां जल रहता है ॥ ५४ ॥

अन्यदप्याह—

वृक्षस्यैका शाखा यदि विनता भवति पाण्डुरा वा स्यात् ।
विज्ञातव्यं शाखातले जलं त्रिपुरुषं खात्वा ॥५५॥

जिस किसी वृक्ष की शाखा यदि नम्र होकर पाण्डु (विवर्ण) हो जावे तो उसी शाखा के नीचे ३ पुरुष खोदना उसके नीचे जल जानना चाहिये ॥५५॥

अन्यदप्याह—

फलकुसुमविकारो यस्य तस्य पूर्वे शिरा त्रिभिर्हस्तैः ।
भवति पुरुषैश्चतुर्भिः पाषाणोऽधः क्षितिः पीता ॥५६॥

जिस वृक्ष के फल फूल में विकार पैदा होजाय उस वृक्ष के पूर्व दिशा में ३ हाथ दूरी के वाद ४ पुरुष नीचे शिरा होती है तथा नीचे पाषाण (पत्थर) और पीत भूमि होगी ॥ ५६ ॥

अन्यदप्याह—

यदि कण्टकारिका कण्टकैर्विना दृश्यते सितैः कुसुमैः ।
तस्यास्तलेऽम्बु वाच्यं त्रिभिर्नरैरर्धपुरुषे च ॥५७॥

यदि कण्टकारिका (भटकटैया रेंगनी) कांटे से रहित हो उसके पुष्प सफेद हो तो उसके नीचे ३½ पुरुष पर जल कहना चाहिये ॥ ५७ ॥

खर्जूरी द्विशिरस्का यत्र भवेज्जलविवर्जिते देशे ।
तस्याः पश्चिमभागे निर्देश्यं त्रिपुरुषैर्वारि ॥ ५८ ॥

जिस निर्जल देशमें दो शिर का खर्जूर (खजूर) वृक्ष हो उस खर्जूर वृक्ष के पश्चिम भाग में २ हाथ के वाद ३ पुरुष नीचे खोदने से जल कहना ॥५८॥

तथा च सारस्वतः—

खर्जूरी द्विशिरस्का स्यान्निर्जले चेत् करद्वये ।
निर्देश्यं पश्चिमे वारि खात्वाऽधः पुरुषत्रयम् ॥

अन्यदप्याह—

यदि भवति कर्णिकारः सितकुसुमः स्यात् पलाशवृक्षो वा ।
सव्येन तत्र हस्तद्वयेऽम्बु पुरुषद्वये भवति ॥ ५९ ॥

कर्णिकार (कठचम्पा) पुष्प का वृक्ष अथवा पलाश का वृक्ष जहां पर श्वेत पुष्प युक्त हो उस स्थान में कर्णिकार और पलाश वृक्ष से दक्षिण २ हाथ दूरी के बाद २ पुरुष नीचे जल होता है ॥ ५६ ॥

अन्यदप्याह—

यस्यामूष्मा धात्र्यां धूमो वा तत्र वारि नरयुगले ।
निर्देष्टव्या च शिरा महता तोयप्रवाहेण ॥ ६० ॥

जिस भूमि पर उष्मा (गरमी) देख पड़े या जहां पर धूम देख पड़े वहां पर २ पुरुष नीचे बहुत बड़ा जल प्रवाह से युक्त शिरा कहना चाहिये॥६०॥

अन्यदप्याह—

यस्मिन् क्षेत्रोद्देशे जातं सस्यं विनाशमुपयाति ।
स्निग्धमति पाण्डुरं वा महाशिरा नरयुगे तत्र ॥ ६१ ॥

जिस भूमि पर उत्पन्न सस्य (अन्न-घास) नाश होजाता हो अथवा जिस भूमि पर स्निग्ध सस्य ज्यादा होता हो अथवा अत्यन्त पीत वर्ण पत्ते हो जावें, उस भूमि पर २ पुरुष नीचे महाशिरा होती है वहां विशेष जलप्रवाह रहता है ॥ ६१ ॥

एवं जाङ्गलानूपभूम्योर्जलपरिज्ञानमभिधाय अधुना मरुभूमौ शिराविज्ञानं कथयामीत्याह—

मरुदेशे भवति शिरा यथा तथातः परं प्रवक्ष्यामि ।
ग्रीवा करभाणामिव भूतलसंस्थाः शिरा यान्ति ॥६२॥

पृथ्वी का जो भाग जल से रहित हो उसको मरुभूमि कहते हैं । उस मरुभूमि में शिराज्ञान जिस प्रकार हो, उसको कहता हूं । करभ (उष्ट्र) का ग्रीवा जिस प्रकार कुटिल होता है उसी प्रकार शिरा भी भूतल संस्था (पृथ्वीतल में) अर्थात् बहुत नीचे होती है ॥ ६२ ॥

तत्राह—

पूर्वोत्तरेण पीलोर्यदि वल्मीको जलं भवति पश्चात् ।
उत्तरगमना च शिरा विज्ञेया पञ्चभिः पुरुषैः ॥ ६३ ॥
चिन्हं दर्दुर आदौ मृत् कपिला तत्परं भवेद्धरिता ।
भवति च पुरुषेऽधोऽश्मा तस्य तलेऽम्भो विनिर्देश्यम् ॥६४॥

यदि पीलू (अखरोट मेवा) वृक्ष के ईशान कोण में वल्मीक कृत मिट्टी समूह हो तो उस पीलू वृक्ष से पश्चिम ४½ हाथ के बाद ५ पुरुष नीचे जल होता है वहां उत्तर दिशा में वहने वाली शिरा होती है जिसके चिन्ह ये हैं ।

पहले १ पुरुष खोदने से मण्डूक (मेढक) का चिन्ह होगा उसके नीचे कपिला मिट्टी होगी, उसके नीचे हरित वर्ण भूमि होगी इन चिन्हों के बाद पत्थर होगा उस पत्थर के नीचे जल कहना चाहिये ॥ ६३-६४ ॥

तथा च सारस्वतः—

ऐशान्यां पीलुवृक्षस्य वल्मीकश्चोज्जलं वदेत् ।
चतुर्भिः सरलैर्हस्तैः पश्चिमे नरपञ्चमे ॥
प्रथमे पुरुषे भेकः कपिला हरिता च मृत् ।
पाषाणस्य तले सौम्यां शिरां बहुजलां वदेत् ॥

अन्यदप्याह—

पीलोरेव प्राच्यां वल्मीकोऽतोऽर्धपञ्चमैर्हस्तैः ।
दिशि याम्यायां तोयं वक्तव्यं सप्तभिः पुरुषैः ॥६५॥
प्रथमे पुरुषे भुजगः सितासितो हस्तमात्रमूर्त्तिश्च ।
दक्षिणतो वहति शिरा सक्षारं भूरि पानीयम् ॥६६॥

यदि पीलू (अखरोट मेवा) वृक्ष से पश्चिम वल्मीक देख पड़े तो उस पीलू वृक्ष से दक्षिण दिशा में ४½ हाथ के बाद ७ पुरुष नीचे जल कहना चाहिए । वहां चिन्ह ये हैं पहले १ पुरुष खोदने से सफेद और काला वर्ण का १ हाथ की सर्पमूर्ति देख पड़ेगी (यहां मूर्ति शब्द कहने से सर्प का आकार समझना चाहिये) । बाद दक्षिण दिशा में शिरा होगी जिसमें बहुतक्षार जल बहता है ॥ ६६ ॥

अन्यदप्याह—

उत्तरतश्च करीरस्याहिगृहं दक्षिणे जलं स्वादु ।
दशभिः पुरुषैर्ज्ञेयं पुरुषे पीतोऽत्र मण्डूकः ॥ ६७ ॥

यदि करीर वृक्ष से उत्तर दिशा में सर्प गृह का वल्मीक देख पड़े तो उस करीर वृक्ष से दक्षिण दिशा में ४½ हाथ के बाद १० पुरुष नीचे स्वादु (मीठा) जल जानना चाहिये वहां भी १ पुरुष खोदने से पीत वर्ण का मण्डूक (मेढक) देख पड़ेगा ॥ ६७ ॥

तथा च सारस्वतः—

उदक्करीराद्वल्मीको दृश्यते चेज्जलं वदेत् ।
चतुर्भिर्दक्षिणैर्हस्तैः सार्धैर्दशनरादतः ॥
नरे भेकः पीतवर्णो दृश्यते चिन्हमत्र हि ॥

अन्यदप्याह—

रोहीतकस्य पश्चादहिवासश्चेत्त्रिभिः करैर्याम्ये ।
द्वादश पुरुषान् खात्वा सक्षारा पश्चिमेन शिरा ॥६८॥

रोहितक वृक्ष से पश्चिम यदि सर्पावास का वल्मीक देख पड़े तो रोहितक वृक्ष से दक्षिण दिशा में ३ हाथ के बाद १२ पुरुष नीचे खोदने से उसके नीचे क्षार जल का शिरा पश्चिमाभिमुख बहती हुई मिलेगी ॥ ६८ ॥

अन्यदप्याह—

इन्द्रतरोर्वल्मीकः प्राग्दृश्यः पश्चिमे शिरा हस्ते ।
खात्वा चतुर्दश नरान् कपिला गोधा नरे प्रथमे ॥६९॥

इन्द्रतरु (अर्जुन वृक्ष) से पूर्व दिशा में यदि वल्मीक देख पड़े तो उस इन्द्रतरु से पश्चिम दिशा में १ हाथ के बाद १४ पुरुष खोदने से उसके नीचे शिरा होती है वह नीचे को बहती है उसमें भी पहले पुरुष खोदने से कपिलवर्ण की गोधा (गोहिआ) देख पड़ेगी ॥ ६९ ॥

अन्यदप्याह—

यदि वा सुवर्णनाम्नस्तरोर्भवेद्वामतो भुजङ्गगृहम् ।
हस्तद्वये तु याम्ये पञ्चदशनरावसानेऽम्बु ॥ ७० ॥
क्षारं पयोऽत्र नकुलोऽर्धमानवे ताम्रसन्निभश्चाश्मा ।
रक्ता च भवति वसुधा वहति शिरा दक्षिणा तत्र ॥७१॥

यदि सुवर्ण (अमलतास) वृक्षके वामभाग (उत्तर दिशा) में सर्पावासका वल्मीक देख पड़े तो उस वृक्ष से दक्षिण दिशामें २ हाथ के बाद १५ पुरुष खोदने से उसके नीचे जल होता है, वहां क्षारजल जानना चाहिये, जिसमें

पहले ३ पुरुष नीचे नकुल एवं ताम्बेरंग का पत्थर और रक्त (लाल) वर्णकी भूमि होगी वहां दक्षिण शिरा वहती है ॥

अन्यदप्याह—

वदरीरोहितवृक्षौ सम्पृक्तौ चेद्विनापि वल्मीकम् ।
हस्तत्रयेऽम्बु पश्चात् षोड़शभिर्मानवैर्भवति ॥ ७२ ॥
सुरसं जलमादौ दक्षिणा शिरा वहति चोत्तरेणान्या ।
पिष्टनिभः पाषाणो मृत् श्वेता वृश्चिकोऽर्धनरे ॥ ७३ ॥

जहां पर वदरी (वैर) रोहित वृक्ष मिले हुये हों वल्मीक हो या न हो तो उन वृक्षों से पश्चिम दिशामें ३ हाथ के वाद १६ पुरुष नीचे जल होता है यहां सुरस (मीठा) जल होगा प्रथमा शिरा दक्षिणाभिमुख और दुसरा शिरा उत्तराभिमुख होगी वहां पिष्ट (धानका चूर्ण) सदृश रंग का पत्थर सपेद मृत्तिका होगी आधे पुरुष खोदने से वृश्चिक (विच्छू) देख पड़ेगी ॥

अन्यदप्याह—

सकरीरा चेद्वदरी त्रिभिः करैः पश्चिमेन तत्राम्भः ।
अष्टादशभिः पुरुषैरैशानी वहुजला च शिरा ॥ ७४ ॥

यदि वदरी (वैर) वृक्ष करीर वृक्ष के साथ देख पड़े तो उस वृक्ष से पश्चिम ३ हाथ दूरी के वाद १८ पुरुष नीचे खोदने से जल रहता है वहां ईशान कोण में विशेष जल से युक्त शिरा वहती है ॥ ७४ ॥

अन्यदप्याह—

पीलुसमेता वदरी हस्तत्रयसम्मिते दिशि प्राच्याम् ।
विंशत्या पुरुषाणामशोष्यमम्भोऽत्र सक्षारम् ॥ ७५ ॥

पीलू (अखरोट) वृक्ष के युक्त वदरी (वैर) यदि देख पड़े तो उस वृक्ष से पूर्व दिशामें ३ हाथ दूरी के वाद २० पुरुष नीचे अशोष्य (कभी नहीं सूखने वाला) प्रभूत (वहुत) जल रहता है वह क्षार होता है ॥ ७५ ॥

ककुभकरीरावेकत्र संयुतौ यत्र ककुभविल्वौ वा ॥
हस्तद्वयेऽम्बु पश्चान्नरैर्भवेत् पञ्चविंशत्या ॥ ७६ ॥

जिस भूमिपर ककुभ (अर्जुन) वृक्ष और करीर वृक्ष एक साथ देख पड़े अथवा जहां पर ककुभ और विल्व वृक्ष एक साथ हो तो उस वृक्ष से पश्चिम दिशामें २ हाथ के वाद २५ पुरुष नीचे जल कहना चाहिये ॥ ७६ ॥

अन्यदप्याह—

वल्मीकमूर्धनि यदा दूर्वा च कुशाश्च पाण्डुराः सन्ति ।
कूपो मध्ये देयो जलमत्र नरैकविंशत्या ॥ ७७ ॥

यदि वल्मीक के ऊपर दूर्वा वा कुशा पाण्डुर वर्ण का हो तो वल्मीक के ऊपर मध्यमें ही कूप खोदना इस स्थान में २१ पुरुष नीचे जल रहता है ॥ ७७ ॥

अन्यदप्याह—

भूमिः कदम्बक युता वल्मीके यत्र दृश्यते दूर्वा ।
हस्तद्वयेन याम्ये नरैर्जलं पञ्चविंशत्या ॥ ७८ ॥

जिस स्थान की भूमि कदम्ब वृक्ष से युक्त हो और वहां ही वल्मीक से युक्त दूर्वा देख पड़े तो उस कदम्ब वृक्ष से दक्षिण दिशा में दो २ हाथ के बाद २५ पुरुष नीचे जल रहता है ॥ ७ ॥

अन्यदप्याह—

वल्मीकत्रयमध्ये रोहीतकपादपो यदा भवति ।
नानावृक्षैः सहितस्त्रिभिर्जलं तत्र वक्तव्यम् ॥ ५७ ॥
हस्तचतुष्के मध्यात् षोड़शभिश्चाङ्गुलैरुदग्वारि ।
चत्वारिंशत् पुरुषान् खात्वाऽश्माऽधः शिरा भवति ॥८०॥

यदि तीन वल्मीक के मध्य में रोहितक वृक्ष हो और वह वृक्ष विजातीय तीन से अधिक वृक्षों के सहित हो तो उस स्थान में जल कहना वल्मीकत्रय के मध्य में जो रोहितक वृक्ष है उस से उत्तर दिशा में ४ हाथ १६ अङ्गुल के बाद ४० पुरुष नीचे खोदने से पत्थर देख पड़ेगा उसके नीचे शिरा रहती है ॥

अन्यदप्याह—

ग्रन्थिप्रचुरा यस्मिन् शमी भवेदुत्तरेण वल्मीकः ।
पश्चात् पञ्चकरान्ते शतार्धसङ्ख्यैर्नरैः सलिलम् ॥८१॥

जिस भूमि पर ग्रन्थि प्रचुर से युक्त शमी वृक्ष हो उसके उत्तर यदि वल्मीक हो तो शमी वृक्ष से पश्चिम ५ हाथ दूरीके बाद ५० पुरुष नीचे सलिल (जल) होता है ॥ ८१ ॥

अन्यदप्याह—

एकस्थाः पञ्च यदा वल्मीका मध्यमो भवेच्छ्वेतः ।
तास्मिन् शिरा प्रदिष्टा नर षष्ट्या पञ्चवर्जि तया ॥८२॥

यदि एक स्थान में ५ वल्मीक हो तो उनमें पांचवाँ मध्य होता है वह मध्यस्थ पांचवाँ वल्मीक यदि श्वेत वर्ण का हो तो उस मध्य वल्मीक में शिरा कहना वह शिरा ५५ पुरुष नीचे होती है।

अन्यदप्याह—

सपलाशा यत्र शमी पश्चिमभागेऽम्बु मानवैः षष्ट्या ।
अर्धनरेऽहिः प्रथमं सवालुका पीतमृत् परतः ॥८३॥

जिस प्रदेश में पलाश वृक्ष से युक्त शमी वृक्ष हो तो उस शमी वृक्ष से पश्चिम दिशा में ५ हाथ के वाद ६० पुरुष नीचे जल रहता है जिसमें पहले ½ पुरुष खोदने से सर्प रहता है उसके वाद वालुका सहित पीत (पीली) वर्ण मृत्तिका होती है।

तथा च सारस्वतः—

शमी पलाशसंयुक्ता यत्र स्यात्तत्र पश्चिमे ।
पञ्चहस्ताज्जलं वाच्यं षष्ट्यात्र पुरुषैरधः ॥
अत्रार्धपुरुषे सर्पः पीता मृत्स्यात् सवालुका ।
तदधोऽम्भो विनिर्दिश्यं दीर्घकालं प्रवाहितम् ॥

अन्यदप्याह—

वल्मीकेन परिवृतः श्वेतो रोहीतको भवेद्यस्मिन् ।
पूर्वेण हस्तमात्रे सप्तत्या मानवैरम्बु ॥८४॥

जिस प्रदेश में श्वेत (सपेद) रोहितक वृक्ष वल्मीक करके युक्त हो, उस प्रदेश में रोहितक वृक्ष से पूर्व दिशा में १ हाथ के वाद ७० पुरुष नीचे जल रहता है ॥ ८४ ॥

अन्यदप्याह—

श्वेता कण्टकबहुला यत्र शमी दक्षिणेन तत्र पयः ।
नरपञ्चकसंयुतया सप्तत्याहिर्नरार्धे च ॥ ८५ ॥

जिस प्रदेश में शुक्ल वर्ण का और वहुत कण्टक (कांटा) से युक्त शमी वृक्ष हो वहां उस शमी वृक्ष से दक्षिण १ हाथ के वाद ७५ पुरुष नीचे जल रहता है जिस में ½ पुरुष पहले खोदने से सर्प होगा ॥ ८५ ॥

तथा च सारस्वतः—

श्वेतातिकण्टका यत्र शमीस्यात्तत्र दक्षिणे ।
हस्तेन पञ्चसप्तत्या नराणां निर्दिशेज्जलम् ॥

खातेऽर्धपुरुषे सर्पो दृश्यतेऽञ्जनसप्रभः ।
सुरसं च जलं ज्ञेयं चिरकालप्रवाहितम् ॥

अत्रैव विशेषान्तरमाह—

मरुदेशे यच्चिन्हं न जाङ्गले तैर्जलं विनिर्देश्यम् ।
जम्बूवेतसपूर्वैर्ये पुरुषास्ते मरौ द्विगुणाः ॥ ८६ ॥

जो लक्षण मरु देश में कहा है, उन लक्षण और चिन्हों से जाङ्गल (स्वल्पोदक) देश में जल नहीं कहना चाहिये । जैसे "वेतसोऽम्बुरहिते देशे" तथा "जम्ब्वाश्चोदग्घस्ते" जम्बू, वेतस द्वारा जो पूर्व लक्षण कहा है, उन्हीं चिन्हों को मरु देश में देखने से कहे हुये के द्विगुणित नीचे जल कहना चाहिये८६।

अन्यदप्याह—

जम्बूस्त्रिवृता मौर्वी शिशुमारी सारिवा शिवा श्यामा ।
वीरुधयो वाराही ज्योतिष्मती गरुड़वेगा च ॥ ८७ ॥
सूकरिकमाषपर्णीव्याघ्रपदाश्चेति यद्यहेर्निलये ।
वल्मीकादुत्तरतस्त्रिभिः करैस्त्रिपुरुषे तोयम् ॥८८॥

जम्बू वृक्ष, त्रिवृता (त्रिधारा या निसोत), मौर्वी (मूर्वा), शिशुमारी, सारिवा (सरिवन), शिवा (शमी या हर्रे), श्यामा ये औषधियां तथा वाराही (कन्दविशेष), ज्योतिष्मती (मालकंगुनी), गरुणवेगा सूकरिक माषपर्णी (प्रसिद्ध), व्याघ्रपदा, ये औषधियां जिस स्थान पर सर्पावास वल्मीक से युक्त हो वहां वल्मीक से उत्तर दिशा में ३ हाथ के बाद ३ पुरुष खोदने से उसके नीचे जल कहना चाहिये ॥ ८७-८८ ॥

किं सर्वत्र न इत्याह—

एतदनूपे वाच्यं जाङ्गलभूमौ तु पञ्चभिः पुरुषैः ।
एतैरेव निमित्तैर्मरुदेशे सप्तभिः कथयेत् ॥ ८९ ॥

यह जो मैंने कहा, सो बहूदक (बहुत जल वाले) भूमि में कहना । यह लक्षण जाङ्गल (थोड़े जल वाले) भूमि में ५ पुरुष पर कहना और यही पूर्वोक्त चिन्ह से मरु (निर्जल) भूमि में ७ पुरुष नीचे जल कहना चाहिये ।८९।

अन्यदप्याह—

एकनिभा यत्र मही तृणतरुवल्मीकगुल्मपरिहीना ।
तस्यां यत्र विकारो भवति धरित्र्यां जलं तत्र ॥९०॥

जो भूमि जहां पर एक रंग की हो और तृण, वृक्ष, वल्मीक, गुल्म (लता) से हीन हो, उस भूमि में जहां पर विकार पैदा हो याने अन्य सदृश हो जाय उस भूमि पर १५ पुरुष नीचे जल कहना चाहिये ।। ९० ।।

तथा च सारस्वतः—

एकवर्णा मही यत्र वृक्षगुल्मतृणादिभिः ।
वल्मीकैश्चापि रहिता तस्यां तत्र विपर्ययः ॥
पञ्चभिः पुरुषैस्तत्र जलं भूमावधः स्थितम् ।

अन्यदप्याह—

यत्र स्निग्धा निम्ना सवालुका सानुनादिनी वा स्यात् ।
तत्रार्धपञ्चकैर्वारि मानवैः पञ्चभिर्यदि वा ॥ ९१ ॥

जिस स्थान की भूमि स्निग्ध (चिकनी) नीची वालुका युक्त और शब्द युक्त हो उस स्थान में ४½ अथवा ५ पुरुष नीचे जल कहना चाहिये ॥ ९१ ॥

अन्यदप्याह—

स्निग्धतरुणां याम्ये नरैश्चतुर्भिर्जलं प्रभूतं च ।
तरुगहनेऽपि हि विकृतो यस्तस्मात् तद्वदेव वदेत् ॥९२॥

जिस भूमिपर स्निग्ध वृक्ष वहुत से होते है उनमें उन स्निग्ध वृक्षों से दक्षिण दिशा में ४ पुरुष नीचे वहुत जल होता है, उन स्निग्ध वृक्ष समूहों में भी जिस वृक्षके फल पुष्पमें विकार (अन्य सदृश) पैदा होजाय उस वृक्ष से भी दक्षिण दिशा में ४ पुरुष नीचे जल कहना चाहिये ।। ९२ ।।

अन्यदप्याह—

नमते यत्र धरित्री सार्धे पुरुषेऽम्बु जाङ्गलानूपे ।
कीटा वा यत्र विनालयेन वहवोऽम्बु तत्रापि ॥९३॥

जिस प्रदेश की भूमि पादाहत (पैर से दवाने) से नम्र हो जाय याने नीचे को जाय वह जाङ्गल भूमि हो या वह्वदक भूमि हो वहां १½ पुरुष नीचे जल होता है, एवं कीट या कृमी जहां पर गृह विना ही वास करें वहां भी १½ पुरुष नीचे वहुत जल कहना चहिये ।। ९३ ।।

अन्यदप्याह—

उष्णा शीता च मही शीतोष्णाम्भस्त्रिभिर्नरैः सार्धैः ।
इन्द्रधनुर्मत्स्यो वा वल्मीको वा चतुर्हस्तात् ॥९४॥

जिस किसी स्थान में सर्वत्र भूमि उष्ण (गरम) हो पर उसी के एक भाग में कहीं शीत हो, अथवा सर्वत्र शीत हो एक स्थान में कहीं पर उष्ण हो वहां ३½ पुरुष पर जल कहना चाहिये, अथवा जाङ्गल और अनूप देश में जहां पर इन्द्र धनुषाकार अथवा मछली के आकार की भूमि हो अथवा जहां पर वल्मीक हो वहां पर ४ पुरुष नीचे जल कहना चाहिये ॥ ६४ ॥

अन्यदप्याह—

वल्मीकानां पङ्क्त्यां यद्येकोऽभ्युच्छ्रितः शिरा तदधः ।
शुष्यति न रोहते वा सस्यं यस्यां च तत्राम्भः ॥९५॥

जिस स्थान में वल्मीकों की पङ्क्ति हो उस पंक्ति में यदि एक वल्मीक विशेष ऊंचा हो तो उस ऊँचे वल्मीक के नीचे ४ हाथ पर शिरा होती है, अथवा जिस भूमि पर उत्पन्न सस्य सुख जाता हो या बीजाङ्कुर ही उत्पन्न न हो उस भूमि पर भी ४ हाथ नीचे जल होता है। यह विचार केवल जाङ्गल और अनूप देश के लिये है ॥ ६५ ॥

तथा च सारस्वतः—

वल्मीकपङ्क्त्यां यद्येकोऽभ्युच्छ्रितस्तदधो जलम् ।
न रोहते शुष्यते वा यत्र सस्यं चतुष्करात् ॥
जलं तत्रैव निर्देश्यं भूमौ निःसंशयं तदा ।

अन्यदप्याह—

न्यग्रोधपलाशोदुम्बरैः समेतैस्त्रिभिर्जलं तदधः ।
वटापिप्पलसमवाये तद्वद्वाच्यं शिरा चोदक् ॥ ६६ ॥

न्यग्रोध (वट) पलाश और उदुम्बर (गुल्लर) ये तीन वृक्ष जहां पर एक साथ हों वहां पर इन वृक्षों के नीचे ३ हाथ पर जल कहना वहां पर शिरा भी उत्तरा होती है। एवं वट पिप्पल का योग जहां पर हों वहां भी उसके नीचे ३ हाथ पर जल कहना चाहिये।

तथा च सारस्वतः—

पलाशोदुम्बरौ यत्र स्यातां न्यग्रोधसंयुतौ ।
वटपिप्पलकौ वाथ समेतौ तदधो जलम् ॥
करैस्त्रिभिरुदक् चाम्भः शिरां शुभजलां वदेत् ।

अथ कूपलक्षण माह—

आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवेत् कूपः ।
नित्यं स करोति भयं दाहं च समानुषं प्रायः ॥६७॥

नैर्ऋतकोणे बालक्षयं च वनिताभयं च वायव्ये।
दिक्त्रयमेतत्त्यक्त्वा शेषासु शुभावहाः कूपाः ॥९८॥

ग्राम अथवा पुर के अग्निकोण में यदि कूप हो तो वह कूप उस ग्राम और पुर में सर्वदा भय करता है। प्रायः मनुष्य के सहित वह दाह करता है याने अग्नि भय करता है।

यदि ग्राम या पुर के नैर्ऋत कोण में कूप हो तो बालकों को क्षय करता है। वायव्य कोण में कूप हो तो स्त्रियों को भय करता है अतः उपर्युक्त ३ दिशाओं को परित्याग कर शेष ५ दिशाओं में कूप शुभप्रद होता है ॥ ९८ ॥

एतद्यदुक्तंदकार्गलं तत्सारस्वतं दृष्ट्वेदानीं मानवं वक्ष्यामीत्याह—

सारस्वतेन मुनिना दकार्गलं यत् कृतं तदवलोक्य।
आर्याभिः कृतमेतद्वृत्तैरपि मानवं वक्ष्ये ॥९९॥

वराह मिहिर कहते हैं कि, यह जो मैं ने दकार्गल कहा सो सारस्वत मुनि का रचना देख कर आर्या छन्दों में कहा। अब मानव (मनु) कृत दकार्गल को अनेक छन्दों में कहता हूं ॥ ९९ ॥

तच्चाह—

स्निग्धा यतः पादपगुल्मवल्ल्यो
निश्छिद्रपत्राश्च ततः शिरास्ति।
पद्मक्षुरोशीरकुलाः सगुण्ड्राः
काशाः कुशा वा नलिका नलो वा ॥१००॥
खर्जूरजम्ब्वर्जुनवेतसाः स्युः
क्षीरान्विता वा द्रुमगुल्मवल्ल्यः।
छत्रेभनागाः शतपत्रनीपाः
स्युर्नक्तमालाश्च ससिन्दुवाराः ॥१०१॥
विभीतको वा मदयन्तिका वा
यत्रास्ति तस्मिन् पुरुषत्रयेऽम्भः।

१७

स्यात् पर्वतस्योपरि पर्वतोऽन्य-
स्तत्रापि मूले पुरुषत्रयेऽम्भः ॥ १०२ ॥

जिस भूमि के वृक्षों के गुल्म (शाखा समूह), वल्ली (लता) स्निग्ध (चिकना) हो और पत्ते छिद्र रहित हों उसी स्थान में ३ पुरुष नीचे शिरा रहती है। अथवा जहां पर स्थल, कमल गोक्षुर (गोखरू), उशीर (खस), कुल, ये द्रव्य विशेष गुण्ड्र (तृण विशेष) से सहित हो अथवा काश कुशा, नलिका, ये तृण एवं खर्जूर, जम्बू, अर्जुन, वेतस ये वृक्ष हों अथवा क्षीर वाले वृक्ष को गुल्म (शाखा समूह), वल्ली एकमूला हो एवं छत्र हस्तिकर्ण (नागकेसर) जहां पर उत्पन्न हो तथा शतपत्र (पद्म) नीप (वृक्षविशेष) नक्तमाला (करंज) ये वृक्ष सिन्दुवार (सेन्दुवार) वृक्ष से युक्तहो अथवा विभीतक मदयन्तिका ये जिस प्रदेश में हो वहां भी ३ पुरुष नीचे जल होता है, और जहां पर पर्वत के उपर पर्वत रहता है वहां ३ पुरुषनीचे जल रहता है तथा जहांपर एक पर्वत के ऊपर दुसरा पर्वत रहता है वहां दुसरे पर्वत के मूल से ३ पुरुष नीचे जल रहता है ॥ १००-१०२ ॥

तथा च मनुः—

गुल्मपादपवल्ल्यः स्युः पत्रैश्चाखण्डितैर्युताः ।
तदधो विद्यते वारि खाते तु पुरुषत्रये ॥
पद्मक्षुरोशीरकुला गुण्ड्रा काशः कुशोऽथवा ।
नलिकानलखर्जूरजम्बूवेतसकार्जुनाः ॥
यत्र स्युर्द्रुमवल्लयश्च क्षीरयुक्ताः फलान्विताः ।
छत्रेभनागनीपाश्च शतपत्रविभीतकाः ॥
सिन्दुवारा नक्तमालाः सुगन्धा मदयन्तिकाः ।
यत्रैते स्युस्तत्र जलं खातेऽम्भः पुरुषत्रये ॥
गिरेरुपरि यत्रान्यः पर्वतः स्यात्ततो जलम् ।
तस्यैव मूले पुरुषैस्त्रिभिर्वाऽधो विनिर्दिशेत् ॥

अन्यदप्याह—

या मौञ्जिकैः काशकुशैश्च युक्ता नीला च मृद्यत्र सशर्करा च ।
तस्यां प्रभूतं सुरसं च तोयं कृष्णाथवा यत्र च रक्तमृद्वा ॥ १०३ ॥

जो भूमि मौञ्जिक (मूंज) काश और कुश करके युक्त हो और जिस भूमि पर नीलवर्ण मृत्तिका शर्करा (कणिका) युक्त हो वहां उस भूमिके नीचे बहुत मीठा जल होता है ॥ एवं जिस भूमिकी मिट्टी कृष्ण या रक्तवर्ण की हो वहां भी बहुत ही स्वदिष्ट बहुत जल निकलता है ॥ १०३ ॥

अथ भूगुणानाह—

सशर्करा ताम्रमही कषायं, क्षारं धरित्री कपिला करोति ।
आपाण्डुरायां लवणं प्रदिष्टं, मृष्टं पयो नीलवसुन्धरायाम् ॥१०४॥

जो भूमि शर्कर (कणिका) युक्त होती हुई ताम्र वर्णकी हो वहां का जल कषाय होता है, और कपिल वर्ण की भूमि क्षार जल करती है और नीला भूमि मीठा जल करती है ॥ १०४ ॥

अन्यदप्याह—

शाकाश्वकर्णार्जुनविल्वसर्जाः श्रीपर्ण्यरिष्टाधवशिंशपाश्च ।
छिद्रैश्च पत्रैर्द्रुमगुल्मवल्ल्यो रुक्षाश्च दूरेऽम्बु निवेदयन्ति ॥१०५॥

शाक अश्वकर्ण अर्जुन विल्व सर्ज श्रीपर्णी अरिष्ट धव शिंशप ये वृक्ष जहां पर छिद्रयुक्त पत्र द्रुम गुल्म और वल्ली से सहित हों वहां पर बहुत दूर नीचे जल रहता है ॥ १०५ ॥

अन्यदप्याह—

सूर्याग्निभस्मोष्ट्रखरानुवर्णा
या निर्जला सा वसुधा प्रदिष्टा ।
रक्ताङ्कुराः क्षीरयुताः करीरा
रक्ता धरा चेज्जलमश्मनोऽधः ॥१०६॥

जो भूमि सूर्य अग्नि भस्म उष्ट्र खर (गदहा) के वर्णका हो वह निर्जल होती है और जहां पर करीर वृक्ष रक्तवर्ण अङ्कुर से तथा क्षीर (दूध) से युक्त हो और वहां की भूमि यदि रक्त वर्ण से युक्त हो तो उस स्थान पर पत्थर के नीचे जल रहता है ॥ १०६ ॥

अन्यदप्याह—

वैदूर्यमुद्गाम्बुदमेचकाभा,
पाकोन्मुखोदुम्बरसन्निभा वा ।
भृङ्गाञ्जनाभा कपिलाथवा या
ज्ञेया शिला भूरिसमीपतोया ॥१०७॥

जो पत्थर वैदूर्यमणि के सदृश मुद्ग (मंग) मेघ मेचक (कृष्ण वर्ण) हो एवं जो पत्थर पके हुये उदुम्बर फलके सदृश हो, और जो पत्थर भङ्ग (टुकड़ा)

करने से अञ्जन (सुरमा) के सदृश हो, जो पत्थर कपिल वर्ण हो वह बहुत ही समीप बहुत जल से युक्त कहना चाहिये ॥ १०७ ॥

अन्यदप्याह—

पारावतक्षौद्रघृतोपमा या क्षौमस्य वस्त्रस्य च तुल्यवर्णा ।
या सोमवल्ल्याश्च समानरूपा साप्याशु तोयं कुरुतेऽक्षयं च १०८

जो शिला (पत्थर) पारावत (कबूतर) पक्षीके सदृश हो जो क्षौद्र (मधुमक्खी) तथा घृतके सदृश हो अथवा जो शिला सोमयज्ञ के वल्ली (लता) समान हो वह बहुत शिघ्रही अक्षय जलको करता है ॥ १०८ ॥

अन्यदप्याह—

ताम्रैः समेता पृषतैर्विचित्रै-
रापाण्डुभस्मोष्ट्रखरानुरूपा ।
भृङ्गोपमाङ्गुष्ठिकपुष्पिका वा
सूर्याग्निवर्णा च शिला वितोया ॥१०९॥

जो शिला (पत्थर) ताम्रवर्ण के पृषत (तिलक) से युक्त हो, अथवा नाना वर्णके चिन्हों से चिन्हित हो, या जो शिला पाण्डुवर्ण भस्म ऊंट खर (गदहा) के समान वर्ण का हो, या जो भ्रमर सदृश हो, अथवा अङ्गुष्ठिका (वृक्ष विशेष) के पुष्प सदृश या सूर्य अग्नि के वर्ण सदृश जो शिला हो वह जल से रहित होता है ॥१०९॥

अन्यदप्याह—

चन्द्रातपस्फटिकमौक्तिकहेमरूपा
याश्चेन्द्रनीलमणिहिङ्गुलकाञ्जनाभाः ।
सूर्योदयांशुहरितालनिभाश्च याः स्यु-
स्ताःशोभना मुनिवचोऽत्र च वृत्तमेतत् ॥११०॥

जो शिला चन्द्रातप (स्फटिक) सदृश, मौक्तिक (मोती) सदृश एवं सुवर्ण अथवा इन्द्रनील या हिङ्गुलक (लाल) वर्ण सदृश हो वा अञ्जन सदृश कान्ती जिसकी या सूर्योदय के समय जैसा सूर्य का वर्ण होता है वैसा और जो हरिताल सदृश शिला है वे सभी उत्तम होते हैं । इस प्रकरण में वक्ष्यमाण जो श्लोक है वह मुनि वचन है ॥ ११० ॥

ततश्च मुनिवचनमाह—

एता ह्यभेद्याश्च शिलाः शिवाश्च
यक्षैश्च नागैश्च सदाभिजुष्टाः ।
येषां च राष्ट्रेषु भवन्ति राज्ञां
तेषामवृष्टिर्न भवेत् कदाचित ॥१११॥

ये पूर्वोक्त सभी शिलायें अभेद्य (तोड़ने योग्य नहीं) हैं कारण ये सब कल्याण कारक है, और सदा ही यक्ष (देवयोनी) और नागों करके सेवित हैं ये शिलायें जिस राजा के राज्य और देश में होते हैं उसमें कभी भी अवृष्टि (अवर्षण) नहीं होता अर्थात् नित्य ही वहां इन्द्रदेव वर्षा किया करते हैं ।

अथ गेहादेशान्यादौ कूपफलमुत्तरामः—

कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाश-
स्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृद्धिः ।
सूनोर्नाशः स्त्रीविनाशो मृतिश्च
सम्पत्पीडाशत्रुतः स्याच्च सौख्यम् ॥११२॥

वास्तु (गृह) के मध्य भाग में कूप हो तो धननाश ईशान कोण में पुष्टि पूर्व में ऐश्वर्य वृद्धि, अग्निकोण में पुत्रनाश, दक्षिण में स्त्री विनाश नैऋत्य में मृत्यु पश्चिम में सम्पत्ति वायव्य कोण में शत्रु से पीड़ा और उत्तर में सौख्य होता है वसिष्ठ का भी ऐसा ही वचन हैं । यथा—

ऐश्वर्यं पुत्रहानिश्च स्त्रीनाशो निधनं भवेत् ।
संपच्छत्रुभयं सौख्यं पुष्टिः प्रागादितः क्रमात् ॥
कूपे कृते मध्यमे तु धनहानिश्च वास्तुनः ।
तस्मात्सम्यग्विचार्यैवं कूपं कुर्याच्च बुद्धिमान् ॥

अथ कूपचक्रम् ग्रन्थान्तरे—

कूपेऽर्कभान्मध्यगतैस्त्रिभिर्भैः
स्वादूदकं पूर्वदिशिस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
स्वल्पंजलं स्वादुजलं जलक्षयं
स्वादूदकं क्षारजलं च मिश्रितम् ॥११३॥

मिष्टंजलं क्षारजलं क्रमेण वै
पुरातनैरुक्तमतः प्रवीणैः ।

कूपारम्भ के समय कूप चक्र बनाना चाहिए यथा कूप चक्र में सूर्य नक्षत्र से ३ नक्षत्र कूप के मध्य भाग में देना उसमें कूपारम्भ करने से स्वादिष्ट जल होता है, बाद ३ नक्षत्र पूर्व में देने से उसका फल स्वल्प (खराड) जल, बाद ३ नक्षत्र अग्नि कोण में देने से स्वादूजल, बाद ३ नक्षत्र दक्षिण देने से जलनाश, बाद ३ नक्षत्र नैॠत्य में देने से स्वादूजल इसके बाद ३ नक्षत्र पश्चिम देने से क्षारजल, बाद ३ वायु कोण में हो तो उसका फल मिश्र जल, बाद ३ नक्षत्र उत्तर में हो तो उसका फल मीठाजल, इसके बाद ३ नक्षत्र ईशान में दिया जाय उसमें यदि कूपारम्भ हो तो उसका फल क्षारजल होता है ऐसा पुरातन (प्राचीन) विद्वानों का कथन है, इसी के आधार पर अन्य भी वचन है । यथा—

कूपेऽर्कभात्क्रमान्मध्य भागतस्त्रिस्त्रिभानि च ।
शुभाशुभानि चोक्तानि ब्राह्मभात्कैश्चिदीरितम् ॥

" ब्राह्मभात् कैश्चिदीरितम् " इसके लिये रोहिणी नक्षत्र से भी कूप चक्र का विचार लिखा है ।

यथा ज्योतिः प्रकाशे—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कूपचक्रे वरानने ।
रोहिण्यादिलिखेच्चक्रं मध्येत्रयप्रतिष्ठितम् ॥१४॥
पूर्वादिदिक्षु सर्वासु त्रित्रिमार्गेण दीयते ।
मध्येशीघ्रजलं स्वादु पूर्वेभूमिश्च खण्डिता ॥१५॥
आग्नेय्यां सुजलं प्रोक्तं दक्षिणे निर्जलं तथा ।
नैॠत्येचामृतं वारि पश्चिमे शोभनं जलम् ॥१६॥
वायव्यामपि जलं हन्ति चोत्तरे स्वादुकं जलम् ।
ईशान्ये कटुकं क्षारमल्पतीक्ष्णस्य संभवम् ॥ १७ ॥

अब रोहिणी नक्षत्र से कूपचक्र कहता हूँ जैसे रोहिणी नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गणना करके ३ नक्षत्र मध्य में और तीन तीन नक्षत्र पूर्वादि आठो दिशाओं में देना उसका फल यों हैं यथा मध्य के ३ नक्षत्र में कूपारम्भ करने से शीघ्रही स्वादू जल होता है और पूर्व के ३ नक्षत्र में सुजल, दक्षिण के ३ नक्षत्र में निर्जल,

निर्ऋति के ३ नक्षत्र में अमृतजल, पश्चिम के ३ नक्षत्र में शोभनजल, वायुकोण के ३ नक्षत्र में जलहानि, उत्तर के ३ नक्षत्र में स्वादुजल और ईशान कोणके ३ नक्षत्र में कटुक्षार अल्प (थोड़ा) एवं तीक्ष्ण जल होता है ॥ ११४—११७ ॥

अथ भौमभात्कूपचक्रम्—

शशिशराब्धि त्रित्र्यब्धिगुणाब्धये
वधजलेषु ससिद्धिरभङ्गदम् ।
रुजमसिद्धि यशोऽर्थप्रसिद्धये
जलविभङ्गकरः, कुजभादिषु ॥ ११८ ॥

कूप चक्रमें मङ्गल के नक्षत्र से १ नक्षत्र में जलमें वध, वाद ५ नक्षत्र में सिद्धि, वाद ४ नक्षत्र में अभङ्ग, वाद ३ नक्षत्र में रोग, वाद ३ में असिद्धि, वाद ४ में यश प्रसिद्धि, वाद ३ में अर्थ प्रसिद्धि, वाद ४ में जल हानि होता है ॥ ११८ ॥

अथ राहुभात्कूप चक्रम् । मुहूर्त्तकल्पद्रुमे—

राहुभाच्चत्रयं पूर्वे त्रयमाग्नेयतः क्रमात् ।
मध्ये चत्वारि ऋक्षान्ते फलं वाच्यं शुभाशुभम् ॥११९॥

कूप चक्रमें राहुके नक्षत्र से ३ नक्षत्र पूर्व में देना वाद तीन नक्षत्र अग्निकोणादि सभी दिशाओं में देना और अन्त्य के ४ नक्षत्र मध्य में देकर शुभाशुभ फल कहना ॥११९॥

फलमपितत्रैव—

पूर्वेशोककरं राहुः आग्नेय्यां जलदं सदा ।
दक्षिणे स्वामिमरणं नैर्ऋत्यांदुःखदायकम् ॥ १२० ॥
पश्चिमे सुखसौभाग्यं वायव्ये जलवर्द्धनम् ।
उत्तरे निर्जलंविंद्यादीश्वरेजलसिद्धिदम् ॥ १२१ ॥
मध्ये च सजलं वाच्यं नान्यथारुद्रभाषितम् ।
स्वयं रुपी सदाराहुःपालयते तत्क्षणे भुवि ॥ १२२ ॥

पूर्व के नक्षत्र में कूपारंभ करने से शोक, अग्निकोण के नक्षत्र में जल, दक्षिण के नक्षत्र में स्वामिका मरण, नैर्ऋत्यकोण के नक्षत्र में दुःख, पश्चिम के

नक्षत्र में सुख सौभाग्य, वायुकोण के नक्षत्र में जलवृद्धि, और उत्तर के नक्षत्र में सजल कहना चाहिये ॥ १२०-१२२ ॥

अथ कूपमुहूर्तः—

हस्तात्तिस्रो वासवं वारुणश्च
मित्रं पित्र्यं त्रीणिचैवोत्तराणि ।
प्राजापत्यं चापिनक्षत्रमाहुः
कूपारम्भेश्रेष्ठमाद्यैर्मुनीन्द्रैः ॥१२३॥

हस्त चित्रा स्वाति धनिष्ठा शतभिष अनुराधा मघा उत्तरा ३ और रोहिणी नक्षत्र में मुनियों ने कूपारम्भ शुभ कहा है ॥ १२३ ॥

अथ तड़ागचक्रम्—

तड़ागे च प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मयामले ।
सूर्यभाच्चन्द्रभं यावद्गणयेत्सततं बुधैः ॥१२४॥
दिक्षुऋक्षद्वयं न्यस्य मध्ये पञ्च नियोजयेत् ।
षड्ऋक्षे वारिवाहे च फलं तत्र विचारयेत् ॥१२५॥
पूर्वे तु बहुशोकं स्यादाग्नेय्यां च जलं बहु ।
दक्षिणे वारिनाशं च नैर्ऋत्यं चामृतं जलम् ॥१२६॥
पश्चिमे च जलं स्वादु वायव्ये वारिशोषणम् ।
उत्तरे च स्थिरं तोयमीशान्ये कुत्सितं जलम् ॥१२६॥
मध्ये शीघ्रजलं यातिवारिवाहेति पूर्णता ।

तड़ाग (तालाब) चक्र कहता हूं जो कि ब्रह्मयामल में कहा है सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गणना करके तीन २ नक्षत्र दिशाओं में ५ नक्षत्र मध्य में और ६ नक्षत्र वारिवाह में देना इसके बाद फल का विचार करना चाहिये यथा—

पूर्व में बहुशोक, अग्निकोण में बहुत जल, दक्षिण में जल नाश निऋति में अमृत सदृश जल, पश्चिम में स्वादु जल, वायु कोण में जल शोषण उत्तर में स्थिर जल और ईशान में कुत्सित जल, मध्य में शीघ्र जल, और वारिवाह में जल का अतिपूर्णता कहना चाहिये ॥ १२४-१२६ ॥

अथ तड़ागमुहूर्त्तः—

ध्रुव वसु जल पुष्यं च नैर्ऋतं मैत्रसंज्ञकम्।
नक्षत्रं शुभदं ज्ञेयं तडागे सर्वदा बुधैः ॥ १२६ ॥

ध्रुव (उत्तरा ३ रो.) धनिष्ठा पूर्वाषाढ़ पुष्य मूल मैत्र (मृ. रे. चि. अनु) संज्ञक नक्षत्र में तड़ाग (तालाब) बनाना सर्वदा शुभ होता है ॥ १२६ ॥

अथ वापी मुहूर्त्तः—

स्वात्याश्विपुष्यहस्तेषु मैत्रे चैव पुनर्वसौ।
रेवत्यां वारूणे चैव वापीकार्य्यं प्रशस्यते ॥ १२७ ॥

स्वाति अश्विनी पुष्य हस्त अनुराधा पुनर्वसु रेवती और शतभिष में वापी (बावली) का आरम्भ शुभ होता है ॥ १२७ ॥

अथ निर्वार चक्रम्—

निर्वारेपूर्वतस्त्रीणि त्रीणित्रीणि च सर्वतः।
मध्ये चत्वारि देयानि राहुभाच्चन्द्रभं बुधैः ॥ १२८ ॥

निर्वार (जमवट) चक्र में राहु के नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गिनकर पूर्वादि दिशाओं में तीन तीन नक्षत्र और मध्य में ४ नक्षत्र देना ॥ १२८ ॥

फलम्—

मध्ये पूर्वे जलं सौख्यं चोत्तरे धनवर्द्धनम्।
याम्यनैर्ऋत्ययोर्दुःखं भयं बहुपरेऽन्यदिक् ॥ १२६ ॥

मध्य में जल, पूर्व में सौख्य, उत्तर में धन वृद्धि, दक्षिण और नैर्ऋत्य कोण में दुःख अवशिष्ट दिशाओं में बहुत भय होता है ॥ १२६ ॥

अथ वापीकूपाद्यारम्भः—

चित्रा स्वातिपुनर्वसू मृगशिरो मूलाश्विनीरोहिणी-
हस्ताःपुष्यधनिष्ठकं शतभिषक् मित्रोत्तरारेवती।
एतेषु श्रवणान्वितेषु मकरे लग्ने च कुम्भेऽझषे
वापीकूपजलाशयादिखननं शस्तं प्रशस्तेदिने ॥१३०॥

चित्रा स्वाति पुनर्वसु मृगशिरा मूल अश्विनी रोहिणी हस्त पुष्य धनिष्ठा शतभिष अनुराधा उत्तरा ३ रेवती ये नक्षत्र श्रवण सहित हो तो मकर कुंभ और मीन लग्नमें शुभ दिन होने से वापी कूप और अन्य जलाशयादिकों का आरंभ शुभ होता है ॥ १३० ॥

तथान्यः—

रेवती रोहिणी मैत्र पूर्वाषाढोत्तरात्रये ।
सौम्यवारुणपुष्येषु तोयारम्भः शुभावहः ॥ १३१ ॥

इसका अर्थ स्पष्टही है ॥ १३१ ॥

सर्वतोयाश्रयारम्भः कर्तव्यो विबलैः खलैः ।
लग्नस्थे ज्ञेऽथवाजीवे लग्नभेऽब्जे सिते खगे ॥१३२॥
ध्रुववासवयुग्मार्कपुष्यमैत्रमघासु च ।
वापिकूप तड़ागादि वारिबन्धनमोक्षणम् ॥ १३३ ॥

पाप ग्रह निर्बल हों तो सभी जलाशयों का आरंभ करना लग्न में बुध अथवा गुरु हो अथवा लग्न में चन्द्रमा और शुक्र दशम हों तो ध्रुव (उ. ३. रो.) धनिष्ठा शतभिष हस्त पुष्य मैत्र (मृ. रे. चि. अनु) और मघा नक्षत्र हो तो वापीकूप तड़ाग और वरिबन्ध मोक्षण (बंधा हुआ जलका मार्ग खोलना) शुभ होता है ॥ १३२ ॥ ॥ १३३ ॥

इतिदकार्गलः

अथ वृहत्संहितोक्तवृक्षायुर्वेदाध्यायः ।

तत्रादौ तत्प्रयोजनमाह ।

प्रान्तच्छायाविनिर्मुक्ता न मनोज्ञा जलाशयाः ।
यस्मादतो जलप्रान्तेष्वारामान् विनिवेशयेत् ॥ १ ॥

जिस कारण जलाशय (वापी कूप तड़ाग) समीपवर्ती छाया के विना चित्त प्रसन्न कारक नहीं होता है अतः जल समीप में वाटिका लगाना चाहिये १

अथ तत्र भूलक्षणमाह—

मृद्वी भूः सर्ववृक्षाणां हिता तस्यां तिलान् वपेत् ।
पुष्पितांस्तांश्च मृद्नीयात् कर्मैतत्प्रथमं भुवः ॥ २ ॥

मधुर भूमि सभी वृक्षों के लिये हितकारक होती है अतः वाटिका लगाने योग्य भूमि पर पहले तिल लगाना (बोना) चाहिये वे तिल जब फूल युक्त हो तो उसको वहां हीं मर्दन कर देना, इतना कर्म वाटिका लगाने के पहले करना चाहिये ॥ २ ॥

अधुना प्रथमरोप्यान् वृक्षानाह—

अरिष्टाशोकपुन्नागशिरीषाः सप्रियङ्गवः।
माङ्गल्याः पूर्वमारामे रोपणीया गृहेषु वा ॥ ३ ॥

अरिष्ट-अशोक-पुन्नाग-शिरीष ये तथा प्रियङ्गु वृक्ष वाटिका अथवा गृह में पहले रोपण करने से प्रशस्त होता है ॥ ३ ॥

अधुना काण्डरोप्याणां विधानमाह—

पनसाशोककदलीजम्बूलकुचदाडिमाः।
द्राक्षापालवताश्चैव वीजपूरातिमुक्तकाः ॥ ४ ॥
एते द्रुमाः काण्डरोप्या गोमयेन प्रलेपिताः।
मूलोच्छेदेऽथवा स्कन्धे रोपणीयाः परं ततः ॥ ५ ॥

पनस (कटहर), अशोक, कदली, जम्बू, लकुच, दाड़िम, द्राक्षा, पालीवत (चोच), वीजपूर, अतिमुक्तक, इन वृक्षों के शाखा को गोमय से लिप्त करके रोपण करना चाहिये। अन्य वृक्षों के मूल काट कर दूसरे विजातीय वृक्षों के साथ लगाना अथवा अन्य वृक्षों के शाखा को ही काट कर विजातीय वृक्ष के मूल में वांधना इसको लोक में कलमी वृक्ष कहते हैं। परञ्च गोमय के साथ मृत्तिका का श्लेष (मिलावट) भी होना चाहिये ॥ ४-५ ॥

अथ वृक्षाणां कालनियमार्थमाह—

अजातशाखान् शिशिरे जातशाखान्[1] हिमागमे।
वर्षागमे च सुस्कन्धान्[2] यथादिक्स्थान् प्ररोपयेत् ॥६॥

जिस वृक्ष में लता, अङ्कुर न हो उसको शिशिर (माघ, फाल्गुन) ऋतु में लगाना चाहिये, जिसमें शाखादि हों उनको हेमन्त (मार्गशीर्ष, पौष) ऋतु में लगाना, महाशाखा युक्त वृक्षों को वर्षा (श्रावण, भाद्रपद) ऋतु में लगाना,

१ जातशाखान् घनागमे-इति पाठान्तरम्

२ वर्षागमे च सुस्कन्धान्-इति पाठान्तरम्

"पाठान्तर" के मत से वर्षा ऋतु के मध्य में लगाना चाहिये और इन वृक्षों का क्रम पूर्व पूर्व दिशा में याने एक वृक्ष जहां लगा है वहां से पूर्वादि अनुलोम क्रम से दूसरा वृक्ष लगाना चाहिये ॥ ६ ॥

तथा च काश्यपः—

अजातशाखा ये वृक्षाः शिशिरे तांश्च रोपयेत् ।
जातशाखाश्च हेमन्ते रोपणीया विधानतः ॥
सुस्कन्धाः शाखिनो ये तान् प्रावृट्काले तु रोपयेत् ॥

अन्यदप्याह—

घृतोशीरतिलक्षौद्रविडङ्गक्षीरगोमयैः ।
आमूलस्कन्धलिप्तानां संक्रामणविरोपणम् ॥ ७ ॥

घी उशीर (खश) तिल क्षौद्र (मधु)विडङ्ग गौ का दुग्ध गोमय इन सब वस्तुओं को मूल से प्रति शाखा पर्यन्त वृक्षों में लेपन करके संक्रामण विरोपण याने एक देश से दूसरे देश में ले जाकर रोपण करना चाहिए ॥ ७ ॥

तथा च —

घृतं क्षीरं तथा क्षौद्रमुशीरतिलगोमयैः ।
विडङ्गलेपनं मूलात् सङ्क्रामणविरोपणम् ॥

अथरोपण प्रकारमाह—

शुचिर्भूत्वा तरोः पूजां कृत्वा स्नानानुलेपनैः ।
रोपयेद्रोपितश्चैव पत्रैस्तैरेव जायते ॥ ८ ॥

पवित्र होकर स्नान चन्दन से वृक्ष का पूजन करके रोपण करना चाहिए तो उसमें जो पत्रादि रहते हैं उसके साथ ही उसका वृद्धि होता है अर्थात् वे पत्र (पत्ते) सुखते नहीं हैं ॥ ८ ॥

अथ रोपितानां सेचनविधानमाह—

सायं प्रातश्च घर्मर्त्तौ शीतकाले दिनान्तरे ।
वर्षासु च भुवः शोषे सेक्तव्या रोपिता द्रुमाः ॥ ६ ॥

रोपित वृक्षों का ग्रीष्म ऋतु में सायं प्रातःकाल याने अपराह्न और पूर्वाह्न में, शीतकाल में दिन के मध्य में और वर्षा ऋतु में जब कभी भूमि सुख जाय तभी सींचना अच्छा होता है ।

अथानूपजान् वृक्षानाह—

जम्बूवेतसवानीरकदम्बोदुम्बरार्जुनाः ।
वीजपूरकमृद्वीकालकुचाश्च सदाडिमाः ॥ १० ॥

वञ्जुलो नक्तमालश्च तिलकः पनसस्तथा।
तिमिरोऽम्रातकश्चेति षोड़शानूपजाः स्मृताः ॥११॥

जम्बू (जामुन) वेतस (बेंत) वानीर कदम्ब उदुम्बर (गुलर) अर्जुन बीजपूरक मृद्वीक (द्राक्षा) लकुच दाड़िम वञ्जुल नक्तमाल तिलक पनस (कटहर) तिमिर अम्रातक ये सोलह वृक्ष बहुत जल से होते हैं अतः इनमें विशेष जल देने का जरूरत होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ रोपितानां वृक्षाणां किम्प्रमाणान्तरं कार्यमित्याह—

उत्तमं विंशतिर्हस्ता मध्यमं षोड़शान्तरम्।
स्थानात् स्थानान्तरं कार्यं वृक्षाणां द्वादशावरम् ॥१२॥

एक वृक्ष से २० हाथ दूरी पर दूसरा वृक्ष लगाना यह उत्तम प्रमाण है तथा १६ हाथ दूरी पर वृक्ष लगाना यह मध्यम है और १२ हाथ के अन्तर देकर वृक्ष लगाना यह निकृष्ट प्रमाण है ॥ १२ ॥

तथा च कश्यपः—

अन्तरं विंशतिर्हस्ता वृक्षाणामुत्तमं स्मृतम्।
मध्यमं षोड़शं ज्ञेयमधमं द्वादश स्मृतम् ॥

तदर्थमाह—

अभ्यासजातास्तरवः संस्पृशन्तः परस्परम्।
मिश्रैर्मूलैश्च न फलं सम्यग्यच्छन्ति पीडिताः ॥१३॥

कारण यह है कि जो वृक्ष समीप होते हैं वे परस्पर स्पर्श करने के कारण, एवं जिनका मूल परस्पर मिला हुआ रहता है वे भी यथार्थ फल नहीं देते अतः समीप में वृक्ष नहीं लगाना चाहिए ॥ १३ ॥

अथ तेषां रोगज्ञानमाह—

शीतवातातपै रोगो जायते पाण्डुपत्त्रता ॥
अवृद्धिश्च प्रवालानां शाखाशोषो रसस्रुतिः ॥ १४ ॥

शीत वात (वायु), आतप (धूप), से वृक्षों को रोग पैदा होता है। इसका निदान (पहिचान) ये है पत्रों के ऊपर पाण्डुता (पीलापन) आजाना, प्रवाल अंकुर का ह्रास और रस का स्राव होना इस चिन्ह से वृक्ष को रोगी जानना ॥ १४ ॥

अथैतेषां चिकित्सितमाह—

चिकित्सितमथैतेषां शस्त्रेणादौ विशोधनम् ॥
विडङ्गघृतपङ्काक्तान् सेचयेत् क्षीरवारिणा ॥ १५ ॥

अब रोगी वृक्षों का चिकित्सा कहते हैं । पहले वृक्ष के जिन २ अङ्गों में व्रण भया हो उसको शस्त्र (हथियार) से काट देना बाद विडङ्ग घी पङ्क (कर्दम) को मिलाकर अच्छी तरह लेप करना और दूध जल में मिलाकर उसको सींचना उससे रोग दूर होता है ॥ १५ ॥

तथा च काश्यपः—

शाखाविटपपत्त्रैश्च छायया विहिताश्च ये ।
येऽपि पर्णफलैर्हीना रूक्षाः पत्त्रैश्च पाण्डुरैः ॥
शीतोष्णवर्षवाताद्यैर्मूलैर्व्यामिश्रितैरपि ।
शाखिनां तु भवेद्रोगो द्विपानां लेखनेन च ॥
चिकित्सितेषु कर्त्तव्या ये च भूयः पुनर्नवाः ।
शोधयेत् प्रथमं शस्त्रैः प्रलेपं दापयेत्ततः ॥
कर्दमेन विडङ्गैश्च घृतमिश्रैश्च लेपयेत् ।
क्षीरतोयेन सेकः स्याद्रोहणं सर्वशाखिनाम् ॥

अथ फलनाशचिकित्सितमाह—

फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः ।
शृतशीतपयःसेकः फलपुष्पसमृद्धये ॥ १६ ॥

वृक्षोंका जब फल नाश हो तो कुलत्थ (कुरथी) उर्द मुद्ग (मुँग) तिल और जव सबको मिलाकर जलके साथ क्वाथ करना जब वह ठण्ढा होजाय तब उस जलमें दुग्ध मिलाकर सेचन करने से फूल और फलका वृद्धि होता है ॥१६॥

अथ वृद्ध्यर्थप्रयोगमाह—

अविकाजशकृच्चूर्णस्याढ़के द्वे तिलाढ़कम् ॥
सक्तुप्रस्थो जलद्रोणो गोमांसतुलया सह ॥ १७ ॥
सप्तरात्रोषितैरेतैः सेकः कार्यो वनस्पतेः ॥
वल्लीगुल्मलतानां च फलपुष्पाय सर्वदा ॥ १८ ॥

भेड़ी और बकरे का पुरीष (मल) एक एक आढ़क, तिल एक आढ़क सत्तु एक प्रस्थ जल एक द्रोण गोमांस एक तुला ये सब मिलाकर सात रात्र

पर्यन्त रखे बाद वृक्षमें सेंक करे तो वल्ली लता और फलकी विशेष वृद्धि होती है यह प्रमाण एक वृक्षके लिये है अतः इतना २ हर वृक्षों के लिये करना चाहिये ॥

त्रियवं कृष्णलं विन्द्यान्माषलः पञ्चकृष्णलः ।
ते स्युर्द्वादश लक्षाख्यं सुवर्णमथ षोडश ॥
पञ्चलक्षैश्चतुर्भिस्तु सुवर्णैर्निष्क उच्यते ।
चतुष्पलोऽथ कुड़वः प्रस्थः स्यात्तच्चतुष्टयम् ।
आढ़कस्तु चतुष्प्रस्थो, द्रोणस्तु चतुराढ़कः ।
मानिकातु चतुर्द्रोणा खारी स्यात्तच्चतुष्टयम् ॥
तुला पलशतं ज्ञेयं भारः स्याद्विंशतिस्तुलाः ।
शुष्कद्रव्येषु सङ्ख्येयं चार्द्रेषु द्विगुणाभवेत् ॥

अथ वीजानां वापन विधानमाह—

वासराणि दश दुग्धभावितं वीजमाज्ययुतहस्तयोजितम् ।
गोमयेन वहुशो विरूक्षितं क्रोड़मार्गपिशितैश्च धूपितम् ।१६।
मांससूकरवसासमन्वितं रोपितं च परिकर्मितावनौ ।
क्षीरसंयुतजलावसेचितं जायते कुसुमयुक्तमेवतत् ॥ २० ॥

जिस किसी वृक्ष का वीज लगाना हो पहले हाथ में घी लगाकर उस हाथ से वीज को दुग्ध में भिगो देवे ऐसे ही दश दिन वरावर करे वाद उसको गोमय के साथ मर्दन करें फिर सूकर और मृग के मांस का धूप दिखलावें पुनः उसमें सूकर और मृग के मांस को मिलाले फिर भूमि पर रोपण [1] करें वाद दुग्ध और जल से अच्छी तरह सींचे ऐसे करने से फूल लग जाता है ।

अथ तिन्तिडीविधानमाह—

तिन्तिडीत्यपि करोति वल्लरीं व्रीहिमाषतिलचूर्णसक्तुभिः ।
पूतिमांससहितैश्च सेचिता धूपिता च सततं हरिद्रया ॥ २१ ॥

तिन्तिडी (इमली) का वीज को व्रीहि चूर्ण माष (उर्द) चूर्ण तिल चूर्ण सत्तु और पूति (दुर्गन्धयुक्त) मांस में मिलाकर हल्दी का धूप देना तो वल्लरी (शाखा) आदि करती है अपि शब्द देने से और वृक्ष भी वल्लरी कारक हो जांय तो इसमें कोई सन्देह नहीं ।

---

१ रोपण के लिये भूमि वही चाहिये जिस पर पहले तिल वोया है ।

अधुना कपित्थवीजरोपणमाह—

कपित्थवल्लीकरणाय मूला-
न्यास्फोतधात्रीधववासिकानाम् ।
पलाशिनि वेतससूर्यवल्ली
श्यामातिमुक्तैः सहिताष्टमूली ॥ २२ ॥
क्षीरे शृते चाप्यनया सुशीते
तालाशतं स्थाप्य कपित्थवीजम् ।
दिने दिने शोषितमर्कपादै-
र्मासं विधिस्त्वेष ततोऽधिरोप्यम् ॥ २३ ॥
हस्तायतं तद्द्विगुणं गभीरं
खात्वावटं प्रोक्तजलावपूर्णम् ।
शुष्कं प्रदग्धं मधुसर्पिषातत्
प्रलेपयेद्भस्मसमन्वितेन ॥ २४ ॥
चूर्णीकृतैर्माषतिलैर्यवैश्च
प्रपूरयेन्मृत्तिकयान्तरस्थैः ।
मत्स्यामिषाम्भस्सहितं च हन्या-
द्यावद्घनत्वं समुपागतं तत् ॥ २५ ॥
उप्तञ्च वीजं चतुरङ्गुलाधो-
मत्स्याम्भसा मांसजलैश्च सिक्तम् ।
वल्ली भवत्याशु शुभप्रवाला
विस्मापनी मण्डपमावृणोति ॥ २६ ॥

कपीत्थ (कईत) वीज में वल्ली पैदा करने के लिये ये उपाय हैं यथा आस्फोत (सारिवा) धात्री (अवरा) धव वृक्ष वासिका वृक्ष इन चारों वृक्षों का मूल लेना तथा वेतस (वेंत) वृक्ष, समूल पत्र के सूर्यवल्ली श्यामा और अति मुक्त वृक्ष का मूल इन सबों को मिलाने से अष्ट मूली होती है, इसको दुग्ध

के साथ क्वाथ बनाना, पुनः उसको शीत (ठण्ढा) करना उसमें कपीत्थ का वीज छोड़ देना १०० वार ताली वजाने में जितना समय लगे उतने समय तक उसको क्वाथ में रखना वाद उसको निकाल लेना उसके वाद उसको सूर्यरश्मि (धूप) में सुखा देना ऐसे ही ३० दिन तक बरावर करते जाना वाद इसके उसका रोपण करना रोपण के लिये गर्त्त एक एक हाथ लम्बा चौड़ा और २ हाथ गहड़ा खोद कर दुग्ध मिश्रित जल से उसको पूरित कर देना जब वह शुष्क हो जाय तब अग्नि से उसको जला देवै फिर जला हुआ गर्त्त में मधु घी भस्म को लेपन करा देवै ।

वाद इसके चार अङ्गुल तक उसमें मृत्तिका भर दे फिर उर्द तिल और जव का चूर्ण उसमें छोड़े पुनः चार अङ्गुल मृत्तिका वाद फिर भी उर्द, तिल, जव का चूर्ण एवं वार वार करना, जब तक गर्त पूरा न हो जावे । इसके वाद मछली के मांस से युक्त जो जल उसमें देकर उसको हनन करना याने पीटना, तबतक पीटना जबतक वह कड़ा न हो जाय । वाद इसके उसी स्थान पर चार अङ्गुल नीचे वीज रोपण कर, मछली के मांस सहित जल से सींचन करै तो शीघ्र ही उत्तम अङ्कुर और वल्ली पैदा होती है । यह वल्ली विस्मय जनक होती हुई मण्डल को आच्छादन करती है ॥ २२-२६ ॥

अथान्येषां रोपणमाह—

शतशोऽङ्कोलसम्भूतफलकल्केन भावितम् ॥
एतत्तैलेन वा वीजं श्लेष्मातकफलेन वा ॥ २७ ॥
वापितं करकोन्मिश्रमृदि तत्क्षणजन्मकम् ।
फलभारान्विता शाखा भवतीति किमद्भुतम् ॥२८॥

यदि अन्य किसी वृक्ष का वीज लगाना हो तो उस वीज को अङ्कोल (पिस्ता) के फल कल्क से १०० वार भावना देकर अथवा इसके तैल से ही १०० वार भावना देकर पुनः उस वीज को १०० वार श्लेषात्मक वृक्ष के फल कल्क या तैल करके भी भावना देना फिर उस वीज को लगाने से उसी क्षण में विजली के माफिक शाखा लता फल के भार से युक्त हो जाता है ॥ २७-२८ ॥

अथ श्लेष्मातकरोपणमाह—

श्लेष्मातकस्य वीजानि निष्कुलीकृत्य भावयेत् प्राज्ञः ॥
अङ्कोलविज्जलाद्भिश्छायायां सप्तकृत्वैवम् ॥ २९ ॥
माहिषगोमयघृष्टान्यस्य करीषे च तानि निक्षिप्य ।
करकाजलमृद्योगे न्युप्तान्यह्ना फलकराणि ॥ ३० ॥

बुद्धिमान् मनुष्य श्लेष्मातक का वीज को पहले छिलका उतार कर उस को अङ्कोल फल का जो पिच्छिल है उसमें भावना दे फिर छाया में सुखावे ऐसा ही सात वार करे। याने भावना देकर छाया में सुखाता जाय पुनः उस वीज को महिष (भैंस) के गोमय से घिसे, घिसने के वाद गोमय समूह में गाड़ दे वे उसमें तवतक रखे रहे जवतक पृथ्वी पर करका (पत्थर) नहीं गिरे। जहां करका गिरे वहां उस वीज को रोपण करे फिर एक ही दिन में वह फलने लगता है ॥ ७-३० ॥

अथ वृक्षाणां रोपणनक्षत्राण्याह—

ध्रुवमृदुमूलविशाखा गुरुभं श्रवणस्तथाश्विनी हस्तः ॥
उक्तानि दिव्यदृग्भिः पादपसंरोपणे भानि ॥ ३१ ॥

उत्तरा ३ रो० अनु० मृगशिरा, रेवती, चित्रा, मूल, विशाखा, पुष्य, श्रवण, अश्विनी, हस्त ये नक्षत्र दिव्य दृष्टिवाले ऋषियों ने पादप (वृक्ष) रोपण के लिये कहा है। शुभम् ॥ ३१ ॥

इति वृहत्संहितोक्त वृक्षायुर्वेदाध्यायः ॥

अथ प्रासादलक्षणम् । तत्रादौतत्प्रयोजनमाह—

कृत्वा प्रभूतं सलिलमारामान् विनिवेश्य च ।
देवतायतनं कुर्याद्यशोधर्म्माभिवृद्धये ॥ १ ॥
इष्टापूर्त्तेन लभ्यन्ते ये लोकास्तान् वुभूषता ।
देवानामालयः कार्यो द्वयमप्यत्र दृश्यते ॥ २ ॥

पर्याप्त जलाशय (पुष्कर कूप तड़ाग आदि) वनवाकर वगीचा लगा कर उस स्थान पर यशधर्म वृद्धि के लिये देव मन्दिर वनवावै, इष्ट (यज्ञ) पूर्त्त (जलाशय) के निर्म्माण से जिन पुण्यलोकों (स्वर्गादिकों) की प्राप्ति होती है उन पुण्यलोकों की प्राप्ति के लिये देवतागृह (मन्दिर) वनवाना चाहिये यहां पर दोनों फल देखे जाते हैं ॥ १-२ ॥

तथा च काश्यपः

इष्टापूर्त्तादिभिर्यज्ञैर्यावत् कुर्वन्ति मानवाः ।
अग्निष्टोमादिपशुभिरिष्टं यज्ञं प्रकीर्तितम् ॥
वापीकूपतड़ागादिदेवतायतनानि च ।
स्वर्गस्थितिं सदा कुर्यात् तद्दानं पूर्त्तसंज्ञितम् ॥
देवानामालयः कार्यो द्वयमप्यत्र लभ्यते ।

किंदृशेषु स्थानेषु सुरारज्यन्त इत्याह ।

सलिलोद्यानयुक्तेषु कृतेष्वकृतकेषु च ।
स्थानेष्वेतेषु सान्निध्यमुपगच्छन्ति देवताः ॥ ३ ॥

जलाशय तथा बगीचा यह बनवाया हो वा स्वाभाविक हो इन स्थानों में देवता निवास करते हैं ॥ ३ ॥

अन्यच्च किंदृशेष्वित्याह ।

सरःसु नलिनीछत्रनिरस्तरविरश्मिषु ।
हंसांसाक्षिप्तकह्लारवीथीविमलवारिषु ॥ ४ ॥
हंसकारण्डवक्रौञ्चचक्रवाकविराविषु
पर्यन्तनिचुलच्छायाविश्रान्तजलचारिषु ॥ ५ ॥

जिस तालाव में खिला हुआ कमल पुष्प सूर्य रश्मि रोकने के लिये छाते का काम देरहा है और कल्हार के पुष्प को हंस अपने कंधे से फेक दिया है उससे जो जलमें वीथी बनी है उस जलमें देवता निवास करते हैं । हंस कारण्डव क्रौंच चक्रवाक इन पक्षियों का शब्द जिस तालाव में हो तथा जल प्रान्त में निचुल (वृक्षविशेष) को छाया में जहां जलचारी विश्राम करते हों वहां नित्यही देवता वास करते हैं ॥ ४-५ ॥

अन्यत्कीदृशेष्वित्याह ।

क्रौञ्चकाञ्चीकलापाश्च कलहंसकलस्वराः ।
नद्यस्तोयांशुका यत्र शफरीकृतमेखलाः ॥ ६॥
फुल्लतीरद्रुमोत्तंसाः सङ्गमश्रोणिमण्डलाः ।
पुलिनाभ्युन्नतोरस्या हंसत्रासाश्च निम्नगाः ॥ ७ ॥

क्रौञ्च पक्षी के कांची कलाप (शब्द करते समय जिह्वाका विस्तार) और राजहंसका मधुर स्वर जिस जलाशय में हो और जिस नदी में जल ही वस्त्र है छोटी २ मछलिया मेखला (किनारी) हैं ऐसे नदियों में देवता रमण करते हैं जिस नदी के तट पर प्रफुल्लित (खिला हुआ पुष्प) वृक्ष ही कर्ण पुष्प या मुण्ड-माला है और तीर पर जो उन्नत प्रदेश है वही जिसके स्तन है और हंस पक्षि शुक्ल (सपेद) होने के कारण जिसके वस्त्र है ऐसी स्त्री रुपा नदी में देवता क्रीड़ा करते हैं ॥ ६-७ ॥

अन्यत्कीदृशेषु स्थानेषु रमन्त इत्याह ।

वनोपान्तनदीशैलनिर्झरोपान्तभूमिषु ।
रमन्ते देवता नित्यं पुरेषूद्यानवत्सु च ॥ ८ ॥

वन के उपान्त (अन्त भाग के समीप) में नदियों में पर्वतों पर और निर्झरोपान्त भूमि (झरना के समीप) में नित्य ही देवता रमण करते हैं और नगर उद्यान (बगीचा) में भी नित्य ही देवता रमण करते हैं ॥ ८ ॥

अधुना प्रतिष्ठाकरणे भूमिगुणानाह ।

भूमयो ब्राह्मणादीनां याः प्रोक्ता वास्तुकर्मणि ।
ता एव तेषां शस्यन्ते देवतायतनेष्वपि ॥ ९ ॥

वास्तु कर्म में ब्राह्मणादि वर्णों के लिये जैसी भूमि कही गई है वैसी ही भूमि देवता के प्रासाद में भी शुभ होती है (भूमि का लक्षण इसी ग्रन्थ के ६-७ पृष्ठ में २९ से ३४ श्लोक तक लिखा है) ॥ ९ ॥

अधुना देवतागृहे वास्तुपुरुषलक्षणं द्वारविभागं चाह ।

चतुःषष्टिपदं कार्यं देवतायतनं सदा ।
द्वारं च मध्यमं तस्मिन् समदिक्स्थं प्रशस्यते ॥१०॥

सदा देवता गृह ६४ पद का बनाना चाहिये, यथा-पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण नव नव रेखा करना तो ६४ कोष्ठक होंगे इसमें मध्य के ४ पद के अन्त से चारो कोण पर्यन्त ४ तिर्यक् रेखा बनाना इसके मध्यमें ४ पद ब्रह्मा और वाह्यकोण में ८ देवता (आप १, आपवत्स २, सविता ३, सावित्र ४, इन्द्र ५, जयन्त ६, राजयक्ष्मा ७, रुद्र ८,) का अर्धपद है, इसके बाद भी शिखि, अन्तरिक्ष अनिल पितृ पाप यक्ष्मा रोग अदिति ये भी अर्धपद हैं, इसके बाद पर्जन्य, भृश, भृङ्गराज, दौवारिक, शोष, नाग, अदिति भृश ये आठ सार्ध १½ पदिक हैं इससे अवशिष्ट जो जो देवता हैं वे द्विपदिक हैं जैसे जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश, वितथ, बृहत्क्षत, यम, गन्धर्व, कुसुमदन्त, अम्बुपति, असुर, मुख्य भल्लाट, सोम, भुजग, अर्यम, विवस्वत, मित्र, पृथ्वीधर इसीको किसी ने वास्तुनर भी कहा है, उस देवालय में सभी दिशाओं के मध्य भाग में द्वार शुभ, होता है उपर्युक्त ६४ पद का काष्ठक ग्रन्थान्त में देखना ॥ १० ॥

अथ प्रासादानां विधानमाह—

यो विस्तारो भवेद्यस्य द्विगुणा तत्समुन्नतिः ।
उच्छ्रायाद्यस्तृतीयांशस्तेन तुल्या कटिः स्मृता ॥११॥

विस्तारार्धं भवेद्गर्भो भित्तयोऽन्याः समन्ततः ।
गर्भपादेन विस्तीर्णं द्वारं द्विगुणमुच्छ्रितम् ॥ १२ ॥
उच्छ्रायात् पादविस्तीर्णा शाखा तद्वदुदुम्बरः ।
विस्तारपादप्रतिमं बाहुल्यं शाखयोः स्मृतम् ॥ १३ ॥
त्रिपञ्चसप्तनवभिः शाखाभिस्तत् प्रशस्यते ।
अधःशाखाचतुर्भागे प्रतीहारौ निवेशयेत् ॥ १४ ॥
शेषंमङ्गल्यविहगैः श्रीवृक्षैः स्वस्तिकैर्घटैः ।
मिथुनैः पत्त्रवल्लीभिः प्रमथैश्चोपशोभयेत् ॥ १५ ॥
द्वारमानाष्टभागोना प्रतिमा स्यात् सपिण्डिका ।
द्वौ भागौ प्रतिमा तत्र तृतीयांशश्च पिण्डिका ॥१६॥

देव गृहका जो विस्तार है उस (विस्तार) से द्विगुण उसकी ऊँचाई होती है (जैसे मेरुप्रासाद का विस्तार ३२ हाथ है तो ऊँचाई उसकी ६४ हाथ होना चाहिए) ऊँचाई का तीसरा भाग उस देवगृह का कटि होना चाहिये (जैसे मेरू का ६४ हाथ ऊँचाई है तो २१ हाथ ८ अङ्गुल उसका कटि हुआ सिढ़ी के ऊपर जहां से देवगृह का प्रारम्भ किया जाता है उसका नाम कटि है) देवगृह का जो विस्तार कहा उसका आधा गर्भ होता है जैसे मेरुका विस्तार ३२ हाथ है तो उसका गर्भ १६ हाथ होगा । गर्भ के चतुर्दिक्षुभित्ति होता है जिसमें १ हाथ भूमि परिक्रमा के लिये रख कर शेष ३ हाथ में भित्ति करना) गर्भ का जो विस्तार मान है उसके चतुर्थांशविस्तार द्वार करना (यथा मेरुका गर्भ १६ हाथ है तो उसका चैाथाई ४ हाथ द्वार का विस्तार हुआ) और विस्तार से दूनी उस द्वार की ऊँचाई करना याने मेरु द्वार का विस्तार ४ हाथ है तो उस द्वार की ऊँचाई ८ हाथ होना चाहिए । द्वार की जो ऊँचाई उसका चतुर्थांश विस्तार तुल्य शाखा बनाना जैसे मेरु द्वार की ऊँचाई ८ हाथ है तो २ हाथ शाखा का विस्तार रखना उसी तरह उदुम्बर भी रखना (उदुम्बर उसको कहते हैं जो शाखा के ऊपर और नीचे काष्ठ दिये जाते हैं) शाखा का जो विस्तार है उसका चतुर्थांश तुल्य शाखाओं की मोटाई करनी चाहिये । (जैसे मेरु के द्वार शाखा का विस्तार २ हाथ है तो १२ अङ्गुल उसकी मोटाई रखनी चाहिये) वह द्वार ३, ५, ७, ६ शाखाओं से प्रशस्त होता है, शाखा विस्तार यदि ३ से न पूरा हो तो ५ से पूरा करना यदि उससे भी न पूरा हो तो ७ से और ६ से पूरा करना शाखा के जो नीचे का भाग है उसके चतुर्थांश से प्रतिहार (नन्दी दण्डादिकों को रखना । शेष तीन भाग में मङ्गल पक्षी याने हँस, कारण्डव,

चक्रवाक जीवकादि पक्षियों करके और श्रीवृक्ष एवं वास्तु पुरुष सदृश स्वस्तिघट (कलश) मिथुन (जोड़ा) लता पत्रादिकों से तथा गणों से शोभा उत्पन्न करना, द्वार की ऊंचाई का जो अष्टमांश उसको द्वार के ऊंचाई में घटाकर स-पिण्डिका प्रतिमा करना उसमें भी दो भाग प्रतिमा और एक भाग पिण्डिका होता है जैसे मेरु द्वार की ऊंचाई ८ हाथ है उसका अष्टमांश १ हाथ हुआ इसको ८ में घटाने से ७ हुआ इसमें दो भाग याने ४ हाथ १६ अङ्गुल प्रतिमा का प्रमाण और उसी का तीसरा भाग २ हाथ ८ अङ्गुल पिण्डिका प्रमाण करना इसी प्रकार सभी प्रासादों में समझना चाहिये ॥ ११-१६ ॥

अथ प्रासादानां नामान्याह—

मेरुमन्दरकैलासविमानच्छन्दनन्दनाः ।
समुद्रपद्मगरुडनन्दिवर्धनकुञ्जराः ॥ १७ ॥
गुहराजो वृषो हंसः सर्वतोभद्रको घटः ।
सिंहो वृत्तश्चतुष्कोणः षोड़शाष्टाश्रयस्तथा ॥ १८ ॥
इत्येते विंशतिः प्रोक्ताः प्रासादाः सञ्ज्ञया मया ।
यथोक्तानुक्रमेणैव लक्षणानि वदाम्यतः ॥ १६ ॥

मेरु आदि २० प्रकार के प्रासाद (देवमन्दिर) होते हैं यथा १ मेरु, २ मन्दर, ३ कैलास, ४ विमानच्छन्द, ५ नन्दन, ६ समुद्र, ७ पद्म, ८ गरुड़, ९ नन्दिवर्धन, १० कुञ्जर, ११ गुहराज, १२ वृष, १३ हंस, १४ सर्वतोभद्र, १५ घट १६ सिंह, १७ वृत्त, १८ चतुष्कोण, १९ षोडशाश्रि और २० अष्टाश्रि इसी प्रकार २० तरह के प्रासाद मैंने कहा। इसके बाद यथाक्रम से इनका लक्षण कहता हूँ ॥ १७—१९ ॥

तत्रादौ मेरुप्रासादस्य लक्षणमाह—

तत्र षडश्रिर्मेरुर्द्वादशभौमो विचित्रकुहरश्च ।
द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्द्वात्रिंशद्धस्तविस्तीर्णः ॥ २० ॥

उस प्रासाद लक्षण में मेरु नामक जो प्रासाद है, उसमें छः कोण द्वादश भूमिका (१२ महल) ऊपर ऊपर होता है । जिसमें नानाप्रकार के कुहर (अभ्यन्तर गवाक्ष—खिड़कियां) होती हैं उसमें चारो दिशाओं में ४ द्वार होते हैं उसका विस्तार ३२ हाथ होता है और ६४ हाथ उसकी ऊँचाई होती है ॥ २० ॥

तथा च काश्यपः—

द्वात्रिंशद्धस्तविस्तीर्णं चतुर्द्वारं षडश्रिकम् ।
भूमिकास्तत्र कर्त्तव्या विचित्रकुहरान्विताः ॥

द्वादशोपर्युपरिगा वर्त्तुलाण्डैः समायुताः ।
प्रासादो मेरुसञ्ज्ञः स्यान्निर्दिष्टो विश्वकर्मणा ॥

अथ मन्दरकैलासयोर्लक्षणमाह—

त्रिंशद्धस्तायामो दशभौमो मन्दरः शिखरयुक्तः ।
कैलासोऽपि शिखरवानष्टाविंशोऽष्टभौमश्च ॥ २१ ॥

६ कोण, ३० हाथ विस्तार, ६० हाथ ऊँचा, दश भूमि (१० महल) का शिखर युक्त मन्दर प्रासाद होता है ।

तथा च काश्यपः—

त्रिंशद्धस्तास्तु विस्तीर्णः प्रासादोऽयं द्वितीयकः ।

एवं कैलास प्रासाद भी ६ कोण शिखर युक्त २८ हाथ विस्तार, ५६ हाथ ऊंचा और आठ महल का होता है ॥ २१ ॥

तथा च काश्यपः—

अष्टभौमश्च कैलासो हस्ताष्टाविंशतिः स्मृतः ।
षडश्रिः शिखरोपेतः प्रासादस्तु तृतीयकः ॥

अथ विमाननन्दनयोर्लक्षणमाह ।

जालगवाक्षकयुक्तो विमानसञ्ज्ञस्त्रिसप्तकायामः ।
नन्दन इति षड्भौमो द्वात्रिंशः षोडशाण्डयुतः ॥ २२॥

विमान संज्ञक प्रासाद जालीदार गवाक्ष (खिड़की) से युक्त २१ हाथ विस्तार ४२ हाथ ऊंचा छः कोण और अष्ट भूमि याने आठ महल का हाता है

तथा च काश्यपः—

गवाक्षजालसंयुक्तो विमानश्चैकविंशतिः ।
षडश्रिरष्टभौमश्च प्रासादः स्याच्चतुर्थकः ॥

नन्दन प्रासाद छः कोण, ३२ हाथ विस्तार ६४ हाथ ऊंचा, ६ महल और १६ अण्ड शिखर से युक्त होता है, (अण्ड प्रसाद के उपर होता है) ॥ २२ ॥

तथा च काश्यपः—

नन्दनस्तु षडश्रिः स्यात् द्वात्रिंशद्धस्तविस्तृतः ।
षड्भौमः षोडशाण्डस्तु प्रासादः पञ्चमो मतः ॥

अथ समुद्गपद्मयोर्लक्षणमाह ।

वृत्तः समुद्गनामा पद्मः पद्माकृतिः शया अष्टौ ।
शृङ्गेणैकेन भवेदेकैव च भूमिका तस्य ॥ २३ ॥

समुद्रनाम प्रासाद वृत्त (गोला) याने मूँगके आकार का पद्मप्रासाद कमल के आकार (अष्टदल) का होता है ये दोनों प्रासाद ८ हाथ विस्तार और १६ हाथ ऊंचा एवं १ शृङ्ग एकही अण्ड और एक भूमिक (एक महल) होते हैं ॥ २३ ॥

तथा च काश्यपः—

वर्त्तुलस्तु समुद्रः स्यात् पद्मः पद्माकृतिस्तथा ।
हस्ताष्टकं तु विस्तीर्णौ भूमिका शृङ्गभूषिता ॥

अथ गरुडनन्दिवर्धनयोर्लक्षणमाह ।

गरुडाकृतिश्च गरुडो नन्दीति च षट्चतुष्कविस्तीर्णः ।
कार्यस्तु सप्तभौमो विभूषितोऽण्डैस्तु विंशत्या ॥ २४ ॥

गरुड़प्रासाद गरुड़पक्षी के आकार पुच्छ युत होता है, नन्दिवर्धन भी गरुड़ाकार ही है पर पुच्छ नहीं है इन दोनों का विस्तार २४ हाथ ४८ हाथ ऊंचा सातभूति (महल) और २० अण्डों से युक्त करना चाहिये ॥ २४ ॥

तथा च काश्यपः ।

गरुडो गरुडाकारः पत्तपुच्छविभूषितः ।
नन्दी तथाकृतिर्ज्ञेयः पत्तादिरहितः पुनः ॥
कराणां षट्चतुष्कास्तु विस्तीर्णौ सप्तभूमिकौ ।
दशभिर्द्विगुणैरण्डैर्भूषितौ कारयेत् तु तौ ॥

अथ कुञ्जरगुहराजयोर्लक्षणमाह ।

कुञ्जर इति गजपृष्ठः षोडशहस्तः समन्ततो मूलात् ।
गुहराजः षोडशकस्त्रिचन्द्रशाला भवेद्वलभी ॥ २५ ॥

कुञ्जरप्रासाद हस्तिपृष्ठाकार १६ हाथ विस्तार, ३२ हाथ ऊँचा और एक भूमिक होता है। गुहराज प्रासाद भी १६ हाथ विस्तार और ३२ हाथ ऊँचा एक भूमिक होता है इन दोनों प्रासादों में वलभी और कुहर (गवाक्ष) ३ चन्द्रशाला से युक्त बनाना ॥ २५ ॥

तथा च काश्यपः—

कुञ्जरो गजपृष्ठाभो हस्ताः षोडश विस्तृतः ।
गुहराजो गुहाकारो विष्कम्भात् षोडश स्मृतः ॥
त्रिचन्द्रशाला वलभी तयोः कार्या सुलक्षणा ।
दशमैकादशावेतौ प्रासादौ द्वौ प्रकीर्तितौ ॥

अथ वृषहंसघटानां लक्षणमाह—

वृष एकभूमिशृङ्गो द्वादशहस्तः समन्ततो वृत्तः ।
हंसो हंसाकारो घटोऽष्टहस्तः कलशरूपः ॥ २६ ॥

वृष संज्ञकप्रासाद १२ हाथ विस्तार, २४ हाथ ऊँचा चारो तरफ से गोल एक भूमिक, एक शृंग (शिखर) से युक्त होता है । हंसप्रासाद हंस पक्षी के सदृश चंचु, पक्ष और पुच्छ युक्त १२ हाथ विस्तार, २४ हाथ ऊँचा और एक भूमिक बनाना, घट संज्ञक प्रासाद कलशाकार ८ हाथ विस्तार, १६ हाथ ऊँचा एक भूमिक और एक शृङ्ग (शिखर) युक्त बनाना ॥ २६ ॥

तथा च काश्यपः ।

वृषो द्वादशहस्तस्तु समवृत्तैकभूमिकः ।
शृङ्गेणैकेन संयुक्तः प्रासादः परिकीर्त्तितः ॥
हंसो हंसाकृतिर्ज्ञेयो हस्ता द्वादश विस्तृतः ।
एकभूमिकया युक्तः पक्षपुच्छाद्यलङ्कृतः ॥
घटः कलशरुपस्तु विस्तीर्णोऽष्टकरः स्मृतः ।

अथ सर्वतोभद्रस्य लक्षणमाह ।

द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्वहुशिखरो भवति सर्वतोभद्रः ।
वहुरुचिरचन्द्रशालः षड्विंशः पञ्चभौमश्च ॥ २७ ॥

सर्वतोभद्र प्रासाद चारो दिशामें चार द्वार और बहुत शिखरों से युक्त तथा बहुत सुन्दर चन्द्रशाला (शिरोगृह) से युक्त २६ हाथ विस्तार और ५२ हाथ ऊंचा पांच मंजिला एवं चतुरस्र बनाना चाहिये ॥ २७ ॥

तथा च काश्यपः ।

शिखरैर्वहुभिर्युक्तश्चतुर्द्वारविभूषितः ।
रुचिरैश्चन्द्रशालैश्च बहुभिः परिवारितः ॥
चतुरस्रः पञ्चभौमः षड्विंशद्धस्त विस्तृतः ।
सर्वतोभद्र इत्युक्तः प्रासादो दशपञ्चमः ॥

अथसिंहवृत्तचतुष्कोणषोडशाश्वष्टाश्रीणां लक्षणमाह ।

सिंहः सिंहाक्रान्तो द्वादशकोणोऽष्टहस्तविस्तीर्णः ।
चत्वारोऽञ्जनरूपाः पञ्चाण्डयुतस्तु चतुरस्रः ॥ २८ ॥

सिंह संज्ञक प्रासाद सिंहके समान, द्वादश कोण विस्तार ८ हाथ, ऊंचा १६ हाथ, एक मंजिला बनाना चाहिये एवं वृत्त चतुष्कोण षोड़श कोण अष्टकोण ये चारो नामके सदृश हैं अन्धकार और एक शिखर युक्त होना चाहिये जिसमें चतुष्कोण मात्र पांच शिखर युक्त और शेष तीन एक शिखर युक्त बनाना, देव प्रासादके समीप चारो दिशाओं में भित्ति करके प्रासाद के पश्चिम भागमें द्वार करना वह द्वार भी भित्तिके ऊर्ध्वभाग में करना उसमें भी बाहर के द्वार से प्रवेश करके वामभाग से आकर प्रासाद के आगे द्वार करना उसमें मणिमयी प्रतिमा स्थापन करना जिसमें मणिके तेजसेही मन्दिर प्रकाशित रहे ॥ २८ ॥

तथाच काश्यपः ।

सिंहः सिंहसमाक्रान्तः कोणैर्द्वादशभिर्युतः ।
विष्कम्भादष्टहस्तः स्यादेका तस्य च भूमिका ॥
वृत्तो वृत्ताकृतिः कार्याः सञ्ज्ञास्तुल्यास्तथापरे ।
सान्धकारास्तु सर्वेते भूमिकैकाः समावृताः ॥
एकाण्डरूपिताः सर्वे पञ्चभिश्चतुरस्रकः ।

अथ मयविश्वकर्मणोर्मतेन भूमिकाप्रमाणमपरमतेनैकवाक्यताञ्चाह ।

भूमिकाङ्गुलमानेन मयस्याष्टोत्तरं शतम् ।
सार्द्धं हस्तत्रयं चैव कथितं विश्वकर्मणा ॥ २९ ॥
प्राहुः स्थपतयश्चात्र मतमेकं विपश्चितः ।
कपोतपालिसंयुक्ता न्यूना गच्छन्ति तुल्यताम् ॥३०॥

मयके मतसे १०८ अङ्गुल भूमि का मान है यथा—"प्रासाद भूमिका मानं शतमष्टोत्तरं स्मृतम्" और विश्वकर्मा के मतसे ३½ हाथ याने ८४ अङ्गुल भूमि का मान है यथा "चतुर्भिरधिकाशीतिरङ्गुलानां तु भूमिका" इस हालत में विद्वान् स्थपति (वढ़ई) लोग विश्वकर्मा के मत में जो २४ अङ्गुल न्यून भूमि का मान कहा है उसको कपोत और पालि से युक्त करके मय के मत से तुल्यता (बराबरी) कर देते हैं ॥ २९-३० ॥

तथाच तन्त्रान्तरे पठ्यते ।

कपोतपालिरहितं मानं चतुरशीतिकम् ।
भूमिकानां सह तथा शतमष्टोत्तरं स्मृतम् ॥
अङ्गुलानामतः साम्यं भूमिकासु प्रकीर्तितम् ।

इति प्रासाद लक्षणम् ।

अथ जलाशयारामदेवप्रतिष्ठामुहूर्त्ताः तत्र रामः।

जलाशयारामसुरप्रतिष्ठा सौम्यायने जीवशशाङ्कशुक्रे।
दृश्ये मृदुक्षिप्रचरध्रुवे स्यात् पक्षे सिते स्वर्क्षतिथिक्षणे वा॥
रिक्तारवर्ज्ये दिवसेऽतिशस्ता शशाङ्कपापैस्त्रिभवाङ्गसंस्थैः।
व्यन्त्याष्टगैः सत्खचरैर्मृगेन्द्रे सूर्यो घटे को युवतौ च विष्णुः॥
शिवो नृयुग्मे द्वितनौ च देव्यः क्षुद्राश्चरे सर्वइमे स्थिरर्क्षे।
पुष्ये ग्रहा विघ्नपयक्षसर्पभूतादयोऽन्त्ये श्रवणे जिनश्च॥३॥

सूर्य उत्तरायण हों बृहस्पति चन्द्रमा और शुक्र उदय हों तो जलाशय (वापी-कूप-आदि) आराम (बगीचा) देवता का प्रतिष्ठा करना—

तत्र वसिष्ठः—अथ प्रतिष्ठां कथयामि सम्यक् शिवस्य विष्णोस्त्वथवा परेषाम्।
सौम्यायने देवगुरौ च शुक्रे संदृश्यमाने परिचारकाणाम्॥

तथाच गुरुः—उत्तरायणगेसूर्ये प्रतिष्ठा शोभना भवेत्।
दक्षिणायनगेसूर्ये प्रतिष्ठा नैव शोभना॥

शैवसिद्धान्तेऽपि—अष्टोत्तरे प्रतिष्ठास्यादयने मुक्तिमिच्छताम्।
दक्षिणे तु मुमुक्षूणां मलमासे न सा क्वचित्॥

तथाचान्यः—देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठामुत्तरायणे।
माघादिपञ्चमासेषु कृष्णेऽप्यापञ्चमीदिनम्॥
दक्षिणे त्वयने कुर्वन्न तत्फलमवाप्नुयात्।

मृदु (मृ. रे. चि. अनु) क्षिप्र (ह. अश्वि. पुष्य, अभि) चर (स्वा. पुन, श्र. ध. श.) ध्रुव (उ. ३. रो.) ये नक्षत्र और शुक्ल पक्ष हो अथवा अपना नक्षत्र तिथि मुहूर्त हो रिक्ता तिथि और मङ्गल वार को परित्याग करके चन्द्रमा और पापग्रह ३, ६, ११, में हों अष्टम द्वादश में शुभग्रह नहीं हों तो सिंह में सूर्य, कुंभ में ब्रह्मा, कन्या में विष्णु, मिथुन में शङ्कर और द्विस्वभाव लग्न में देवियों का एवं चर लग्न में क्षुद्रदेवता और स्थिर में सभी का पुष्य में ग्रहों का। गणेश, यक्ष, सर्प भूतादिकों का रेवती में और श्रवण में जिन का स्थापना शुभ होता है इसमें भी जलप्रतिष्ठा के लिये विशेष है।

यथा—मार्त्तण्डेन्दुशुद्धौ [1]मुरजिदशयने माघषट्कस्य शुक्ले
मूलाषाढोत्तराश्विश्रवणगुरुकरे पौष्णशक्राज चान्द्रे ।
मैत्रे ब्राह्म च पूर्णामदनरवितिथौ सद्द्वितीये तृतीये
कार्या तीर्थप्रतिष्ठा झगुरुसितदिने कालशुद्धे सुलग्ने ॥

अथ प्रतिष्ठायां मासफलम्, गुरुः ।

पौषे राजविवृद्धिःस्यान्माघे मासे तु संपदः ।
फाल्गुने द्रव्यलाभश्च चैत्रे मासि शुभावहा ॥ ४ ॥
अतीवसौख्यं वैशाखे ज्येष्ठे मासे जयावहः ।
आषाढे स्थापितोदेवो यजमानविनाशनः ॥ ५ ॥
सौरमानेन विज्ञेयः श्रावणे राज्यराष्ट्रहा ।
भाद्रे सन्मानहानिस्स्यादाश्विनेऽपि च राज्यहा ॥६॥
कार्तिके शत्रुवृद्धिःस्यान्मार्गशीर्षे तथैव हि ।
सर्वेषामेव वर्णानां वसन्तश्शोभनोभवेत् ॥ ७ ॥

पौष में प्रतिष्ठा करने से राज्य वृद्धि, माघ में संपत्ति, फाल्गुन में द्रव्य लाभ, चैत्र में शुभ, वैशाख में विशेष सौख्य, ज्येष्ठ में जय, आषाढ़ में यजमान का नाश, श्रावण में राज्य और राष्ट्र की हानि, भाद्रपद में सन्मान की हानि, आश्विन में राज्यहानि, कार्तिक और मार्गशीर्ष में शत्रु वृद्धि होती है अथवा सभी वर्णों के लिये वसन्त ऋतु शुभ होता है, पौष मास में भी मकर सक्रान्ति के वाद ही शुभ है ॥ ४—७ ॥ मत्स्य पुराण में भी लिखा है यथा—

चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवेऽपि वा ॥
माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठाशुभदा भवेत् ॥
प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीतेचोत्तरायणे ॥

नारद के मत से चैत्र मास निषिद्ध है यथा—

विचैत्रेष्वेव मासेषु माघादिषु च पञ्चसु॥

---

१. मुरजिद्विष्णुस्तस्याशयनं विष्णुशयनाभावइति ।

अथोग्रप्रकृतीनां दक्षिणायनेऽपि स्थापनमुक्तम्—

मातृभैरववाराहनारसिंहत्रिविक्रमाः ।
महिषासुरहन्त्रीच स्थाप्या वै दक्षिणायने ॥ ८ ॥

इसका अर्थ स्पष्टही है ॥ ८ ॥

अथ देवविशेषेण ग्राह्यमासाः ।

श्रावणे स्थापयेल्लिङ्गमाश्विने जगदम्बिकाम् ।
मार्गशीर्षे हरिं चैव सर्पान् पौषेऽपि केचन ॥ ९ ॥

श्रावण में शङ्करजी का लिङ्ग, आश्विन में जगदम्बा, मार्गशीर्ष में हरि, पौष में सर्प का स्थापन करना यह भी किसी का मत है ॥ ९ ॥

अथ पक्षशुद्धिः ।

बलक्षपक्षः शुभदः समस्तः सदैव तत्राद्यदिनं विहाय ।
अन्त्यत्रिभागं परिहृत्यकृष्णपक्षोऽपिशस्तःखलुपक्षयोस्तु ॥

सम्पूर्ण शुक्लपक्ष शुभ होता है परञ्च प्रतिपत् को त्याग कर देना कृष्ण पक्ष में भी अन्त्य का त्रिभाग त्याग कर याने दशमी तक शुभ होता हैं ॥ १० ॥ पर नारद के मत से कृष्ण पञ्चमी ही तक शुभ है यथा—

"शुक्लपक्षेषु कृष्णेषु तदादिपञ्चसु स्मृतम्" ॥

दिनेषु यस्य देवस्य या तिथिस्तत्र तस्य च ।
द्वितीयादिद्वयोः पञ्चम्यादितस्तिसृषु क्रमात् ॥११॥
दशम्यादेश्चतसृषु पौर्णमास्यां विशेषतः ।

जिस देव की जो तिथि है उसी तिथि में प्रतिष्ठा शुभ होती है । द्वितीया से दो, पञ्चमी से तीन एवं दशमी से चार तिथि और विशेष करके पूर्णिमा भी शुभ है ।

यथा गुरुः—

द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा ।
त्रयोदशी च सर्वेषां शुभदा शोभने विधौ ॥

अथ जातिभेदेन—

ब्राह्मणानां द्वितीया च तृतीयाचातिशोभना ।
क्षत्रियाणां पञ्चमी तु सप्तमी शोभनप्रदा ॥ १२ ॥

वैश्यानां दशमी प्रोक्ता शूद्राणाञ्च त्रयोदशी ।

ब्राह्मण जाति के लिये द्वितीया और तृतीया, क्षत्रियों के लिये पञ्चमी और सप्तमी, वैश्यों के लिये दशमी और शूद्रों के लिये त्रयोदशी शुभ है ।

अथ वारफलम्—तत्र वसिष्ठः—

कीर्तिप्रदं क्षेमकरं कृशानुभीतिप्रदं वृद्धिकरं दृढञ्च ।
लक्ष्मीकरं सुस्थिरदंरविनादिवारेषु संस्थापनमामनन्ति १३

रविवार को प्रतिष्ठा करने से कीर्ति (यश) प्रद, सोमवार को क्षेम (कल्याण), मङ्गल को अग्निभय, बुध को वृद्धि, गुरुवार को दृढता, शुक्रवार को लक्ष्मी प्राप्ति, और शनिवार को प्रतिष्ठा स्थिर रहती है ।

नारद का भी यही मत है—

—कुजवर्जितवारेषु कर्तुः सूर्यबलप्रदे ।

अथ जातिभेदेन वारफलम्—तत्र बृहस्पतिः—

विप्राणां शुभदौ वारौ स्थापने गुरुशुक्रयोः ।
वारौ दिवाकरेन्द्वोश्च क्षत्रियाणां शुभावहौ ॥ १४ ॥
वैश्यानां बुधवारः स्यात्सुरसंस्थापने शुभः ।
मन्दवारस्तु शूद्राणां प्रतिष्ठायां शुभावहः ॥ १५ ॥
जीवशुक्रबुधानां च सर्वेषांशोभनावहाः ।
पापग्रहाणां वाराश्च वलिनः शुभदास्मृताः ॥ १६ ॥

ब्राह्मण जाति के लिये गुरु शुक्रवार, क्षत्रियों के लिये रवि सोम, वैश्यों के लिये, बुधवार और शूद्र जाति के लिये शनिवार प्रतिष्ठा में शुभ होती है अथवा गुरु, शुक्र और बुधवार या वली पाप वार भी सभी जाति के लिये शुभ है ॥ १४–१६ ॥

अथ नक्षत्राण्याह वसिष्ठः—

हस्तत्रये मित्रहरित्रये च पौष्णद्वयादित्यसुरेज्यभेषु ।
तिस्रोत्तराधातृशशाङ्कभेषु सर्वामरस्थापनमुत्तमंस्यात् ॥१७।

हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तरा ३, रोहिणी और मृगशिरा में सभी देवताओं का स्थापन शुभ होता है तथा अपने नक्षत्र तिथि में भी प्रतिष्ठा शुभ होती है ॥१७॥

जैसा कि लिखा है—

देवस्य यस्योडुतिथिप्रशस्तः संस्थापने कर्मणि वासराश्च ।
कर्तुर्दिनेशस्य बलं सदैव ग्रामाधिपो ग्रामबलं विचार्यम् ॥

अथ जातिभेदेन—

उत्तरात्रिकपुष्याश्च ब्राह्मणानां शुभावहाः ।
श्रवणा हस्तमूले च क्षत्रिये शुभदाः स्मृताः ॥१८॥
वैश्यानां स्वातिमैत्रे च पौष्णे चैव शुभावहाः ।
शूद्राणामश्विनीश्रेष्ठा तैतिलस्थापने शुभे ॥ १९ ॥

उत्तरा ३, पुष्य ब्राह्मण जाती के लिये, श्रवण, हस्त और मूल क्षत्रियों के लिये, वैश्यों के लिये, स्वाति, अनुराधा रेवती और शूद्रों के लिये अश्विनी देव-स्थापन में शुभ होता है ॥ १८-१९ ॥

अथ जातिभेदेनराशिश्चाह—

ब्राह्मणक्षात्रियाणां च शोभनाः स्थिरराशयः ।
उभयोः राशयोर्वैश्यशूद्राणां शोभनाः स्मृताः ॥२०॥

ब्राह्मण क्षत्रिय के लिये स्थिर राशि और वैश्य शूद्रों के लिये द्विस्वभा-वराशि प्रतिष्ठा में शुभ होता है ॥ २० ॥

अथ समयज्ञानम्—

पूर्वाह्णे चोत्तमं प्रोक्तं मध्याह्ने मध्यमं बुधैः ।
सायाह्ने न मया प्रोक्ता स्वगृहे चाशुभे विधौ ॥ २१ ॥

कदाचिन्निश्यपिप्रोक्ता प्रतिष्ठा च कृते युगे ।
कलौ युगेऽतिदोषाय प्रतिष्ठानिशिमानवैः ॥ २२ ॥

पूर्वाह्न में उत्तम मध्याह्न में मध्यम और सायंकाल में प्रतिष्ठा उत्तम नहीं है अशुभ चन्द्रमा स्वगृहका भी उत्तम नहीं होता सत्ययुग में कदाचित् रात्री में भी प्रतिष्ठा शुभ है और कलियुग में विशेष दोष होता है॥ २१-२२ ॥

वसिष्ठः—

रिक्तावमायुक्तदिनेषु निन्द्ययोगेषु वैनाशिकवर्जितेषु ।
दिनेमहादोषविवर्जितेषु शशाङ्कताराबलसंयुतेषु ॥ २३ ॥

रिक्ता अमावास्या तिथि निन्द्ययोग और वैनाशिक नक्षत्र एवं महादोषयुक्त दिनको परित्याग कर चन्द्रमा ताराबलयुक्त हो तो देवप्रतिष्ठा शुभ होता है ॥ २३ ॥

वैनाशिकनक्षत्राणि—

जन्मभाद्दशमं कर्म संघातर्चञ्च षोडशम् ।
अष्टादशः सामुदायं त्रयोविंशं विनाशनम् ॥ २४ ॥
मानसं पञ्चविंशर्च्च नाचरेच्छुभमेषु तु ।

जन्म नक्षत्र से दशवें नक्षत्र का नाम कर्म सोलहवें का नाम संघात १८वें का नाम सामुदाय २३वें का नाम विनाश २५वें का नाम मानस है इसमें शुभ कार्य नहीं करना चाहिये ॥ २४ ॥

अथ लग्नशुद्धिः तत्र वसिष्ठः—

पञ्चाङ्गशुद्धौ दिवसे दिनस्य पूर्वार्द्धभागे शुभदे मुहूर्ते ।
शुभग्रहैर्वीक्षित संयुते वा न नैधने नैधनशुद्धिलग्ने ॥२५॥
केन्द्रत्रिकोण भवमूर्तिषु सद्ग्रहेषु
चन्द्रार्कभौमशनिषु त्रिषडायगेषु ।

सान्निध्यमेतिनियतं प्रतिमासु देवः
कर्तुःसुतार्थसुखसम्पदरोगता च ॥ २६ ॥

जिसदिन पञ्चाङ्ग (तिथि-वार-नक्षत्र-योग, करण) शुद्ध हो उसी दिन दिन के पूर्वभाग और शुभ मुहूर्त में लग्न के उपर शुभग्रह का योगदृष्टि हो जन्म राशि लग्न से अष्टम लग्न न हो, अष्टम शुद्धियुक्त हो, केन्द्र त्रिकोण (१।४।७।१०। ५।६) में तथा ११ में शुभग्रह हों और चन्द्रमा सूर्य मङ्गल और शनि तृतीय षष्ठ एकादशमें हों तो ऐसे समय में प्रतिष्ठा करने से निश्चयही उस प्रतिमा में देवता वास करते हैं और प्रतिष्ठा करनेवाले को पुत्र, धन, सुख, सम्पत्ति एवं आरोग्यता की प्राप्ति होती है ॥ २५-२६ ॥

शुक्रस्थितांशे राशेर्वा केन्द्रपञ्चायगे विधौ ।
देवप्रतिष्ठा कालेऽत्र दोषाः सर्वे शमं ययुः ॥ २७ ॥

शुक्र जिस राशिनवांश में हों उसी में होकर चन्द्रमा यदि केन्द्र पञ्चम और एकादश हो जांयतो देवप्रतिष्ठा काल में जो दोष हैं सभी शमन हो जाते हैं, पर लग्न में चर राशि नवांश त्याज्य है जैसा वसिष्ठ का वचन है, ॥ २७ ॥

चरोदये लग्नगते न कार्यं संस्थापनं नैव चरांशकेऽपि
चरोऽपि मुख्यः सकलांशकश्च सदा मृदुत्वान् सुरसन्निवेशे

अथ नारदमतेन लग्नशुद्धिः—

चन्द्रताराबलोपेते पूर्वाह्णे शोभने दिने ।
शुभलग्ने शुभांशे च कर्तुर्न निधनोदये ॥ २८ ॥
राशयः सकलाः श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिताः ।
शुभग्रहयुते लग्ने शुभग्रहनिरीक्षिते ॥ २९ ॥
राशिः स्वभावजं हित्वा फलं ग्रहजमाश्रयेत्—

चन्द्रमा और तारा बलयुक्त हों शुभदिन के पूर्वार्ध में शुभग्रह का लग्न नवांश हो तो प्रतिष्ठा शुभ है पर वह लग्न नवांश कर्ता के राशिलग्न से अष्टम न हो । तथा शुभग्रह के योगदृष्टि से सभी राशियां अच्छी होजाती है ॥ एवं जिस राशि के उपर शुभग्रह का योगदृष्टि हो जाती है वह राशि अपना स्वभाव गुण को परित्याग कर ग्रह से उत्पन्न फल को देता है ॥ २८-२९ ॥

अथ दुष्टलग्नापवादमाह । वसिष्ठः—

एकोऽपि जीवो बलवान् तनुस्थः
सितोऽपि सौम्योऽप्यथवा वली चेत् ।
दोषानशेषान्विनिहन्ति सद्यः-
स्कन्दोयथा तारकदैत्यबृन्दम् ॥ ३० ॥

बृहस्पति, शुक्र अथवा बुध में एक भी ग्रह बलवान होकर लग्न में होजाय तो समस्त दोषों को सद्यः नाश करता है यथा स्कन्द ने तारकासुर आदि दैत्य समूहों को नाश किया था ॥ ३० ॥

गुणाधिकतरे लग्ने दोषाल्पत्वतरे यदि ।
सुराणां स्थापनं तत्र कर्तुरिष्टोर्थसिद्धिदम् ॥ ३१ ॥

जिस लग्न में गुण अधिक और दोष थोड़े हों उसमें प्रतिष्ठा करनेवाले मनुष्य को अभीष्ट अर्थ की सिद्धि होती है ॥ ३१ ॥

अथ प्रतिष्ठाया दोषानाह—

हन्त्यर्थहीना कर्तारं मन्त्रहीना तु ऋत्विजम् ।
श्रियं लक्षणहीना तु न प्रतिष्ठा समोरिपुः ॥ ३२ ॥

द्रव्यहीन प्रतिष्ठा यजमान को मन्त्रहीन प्रतिष्ठा ऋत्विज (आचार्य) को और लक्षणहीन प्रतिष्ठा लक्ष्मी को नाश करती है इस लिए प्रतिष्ठा के समान कोई शत्रु नहीं है ॥ ३२ ॥

वास्तुराजवल्लभेः—

ब्रह्माविष्णुशिवेन्द्रभास्करगुहाः पूर्वापरास्याः शुभाः-
प्रोक्तौ सर्वदिशामुखौ शिवजिनौ विष्णुर्विधाता तथा ।
चामुण्डाग्रहमातरो धनपतिर्द्वैमातुरो भैरवो-
देवो दक्षिणदिङ्मुखः कपिवरो नैर्ऋत्यवक्त्रो भवेत् ।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य ग्रह (स्वामी कार्तिकेय) को पूर्व पश्चिम मुख शिव और जिनको सभी दिशा में तथा विष्णु ब्रह्मा को भी सभी दिशा में मुख कर सकते हैं। चामुण्डा ग्रह मातृगण कुबेर गणेश और भैरव को दक्षिणमुख और हनुमानजी का नैर्ऋत्य मुख रखना शुभ है ॥ ३३ ॥

अथगृहे पूर्वादिदिक्प्लवविचारः—

पूर्वप्लवो वृद्धिकरो धनदश्चोत्तरे तथा ।
याम्यां रोगप्रदोज्ञेयो धनहा पश्चिमेप्लवः ॥ १ ॥
ईशान्ये प्रागुदक्प्लवस्त्वत्यन्तवृद्धिदोनृणाम् ।
अन्यदिक्षु प्लवोनेष्टश्शश्वदत्यन्तहानिदः ॥ २ ॥

गृह में पूर्व दिशा का प्लव (मोरी नरदोह) हो तो वृद्धि करता है, उत्तराभिमुख धन देता है, दक्षिणामुख रोग देता है और पश्चिमाभिमुख धन-हानि करता है । एवं ईशान पूर्व और उत्तर अत्यन्त वृद्धि कारक होता है अन्य दिशा में प्लव रखने से नेष्ट और निरन्तर ही अत्यन्त हानि प्रद होता है ॥१-२॥

पृ. १४८ श्लो० १०

चतुःषष्टिपदो वास्तुनरः ।

ई — पू — आ

शिखी / दितिः	पर्जन्यः	जयन्तः	इन्द्रः	सूर्यः	सत्यः	भृशः	अन्तरिक्षः / अनिलः
अदितिः	पर्जन्यः / अदितिः	जयन्तः	इन्द्रः	सूर्यः	सत्यः	भृशः / पूषा	पूषा
भुजगः	भुजगः	आपवत्सः / आपः	अर्यमा	अर्यमा	सविता / सवित्रः	वितथः	वितथः
सोमः	सोमः	पृथिवीधरः	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवश्वान्	वृहत्क्षतः	वृहत्क्षतः
भल्लाटः	भल्लाटः	पृथिवीधरः	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवश्वान्	यमः	यमः
मुख्यः	मुख्यः	रुद्रः / राजयक्ष्मा	मित्रः	मित्रः	इन्द्रः / जयः	गन्धर्वः	गन्धर्वः
नागः	नागः / रुद्रः	असुरः	वरुणः	कुसुमदन्तः	सुग्रीवः	भृंगराजः / दौवारिकः	भृंगराजः
रोगः / पापयक्ष्मा	शोषः	असुरः	वरुणः	कुसुमदन्तः	सुग्रीवः	दौवारिकः	मृगः / पिता

उ (left) — द (right)

वा — प — नै

पृष्ठ ७२ श्लो० १२०-१२२

गृहारम्भेवत्सचक्रम् । १

सूर्यनक्षत्राद्गणना साभिजित

स्थान	न	फलानि
शीर्षे	३	अग्निभयं दाहः
अ. पादे	४	शून्यमसत्
पृ, पदे	४	स्थिरता
पृष्ठे	३	लक्ष्मीप्राप्तिः
द, कुक्षौ	४	लाभः सत्
पुच्छे	३	स्वामिनाशः
वा,कुक्षौ	४	निर्धनता
मुखे	३	पीड़ा असत्

पृष्ठ ९३ श्लो० १८

गृह प्रवेशे कुम्भचक्रम् २

सूर्यभात्

स्था.	न०	फलानि
मुखे	१	अग्निदाहः
पूर्वे	४	उद्वसनम्
दक्षिणे	४	लाभः
पश्चिमे	४	लक्ष्मी प्राप्तिः
उत्तरे	४	कलहः
गर्भे	४	विनाशः
अधः	३	स्थिरताः
कण्ठे	३	स्थिरम्

पृष्ठ १३३ श्लो० ११३

सूर्यभात् कूपचक्रम् । ३

दिशा	न०	फलानि
मध्ये	३	स्वादुजलम्
पूर्वे	३	खण्डितजलम्
अग्नि	३	स्वादुजलम्
दक्षिणे	३	जलहानिः
नैऋत्ये	३	स्वादुजलम्
पश्चिमे	३	क्षारजलम्
वायौ	३	शीतलजलम्
उत्तरे	३	मिष्टजलम्
ईशाने	३	क्षारजलम्

पृष्ठ १३४ श्लो० ११४—११७

रोहिणीन क्षत्रात् कूपचक्रम् । ४

दिशा	न०	फलानि
मध्ये	३	स्वादुजलम्
पूर्वे	३	निर्जलम्
अग्नि	३	आशुजलम्
दक्षिणे	३	निर्जलम्
नैऋत्ये	३	अमृतजलम्
पश्चिमे	३	निर्मलजलम्
वायौ	३	जलहानिः
उत्तरे	३	मधुरजलम्
ईशाने	३	क्षारजलम्

पृष्ठ १३५ श्लो० ११८

भौमभात् कूपचक्रम्। ५

न०	फलानि
१	जलेवधभयम्
५	असिद्धिः
४	अभङ्गः
३	रोगः
३	असिद्धिः
४	यशः
३	अर्थः
४	जलभङ्गः

पृष्ठ १३५ श्लो० ११९

राहुभात् कूपचक्रम्। ६

दिशा	न०	फलानि
पूर्वे	३	शोकं
अग्नि	३	जलदं
दक्षिणे	३	स्वामिमरणम्
नैऋत्ये	३	दुःखम्
पश्चिमे	३	सुखसौभाग्यम्
वायौ	३	जलवृद्धिः
उत्तरे	३	निर्जलम्
ईशाने	३	जलसिद्धिः
मध्ये	४	सजलम्

पृष्ठ १३६ श्लो० १२४—१२७

सूर्यनक्षत्रात्तड़ागचक्रम्। ७

दिशा	न०	फलानि
पूर्वे	२	बहुशोकम्
अग्नि	२	बहुजलम्
दक्षिणे	२	जलनाशम्
नैऋत्ये	२	अमृतजलम्
पश्चिमे	२	स्वादुजलम्
वायौ	२	जलशोषणम्
उत्तरे	२	स्थिर
ईशाने	२	कुत्सितजलम्
मध्ये	५	शिघ्रजलम्
वारिवाहे	६	जलस्यातिपूर्णता

पृष्ठ १३७ श्लो० १२८

निर्वारचक्रम् राहुभात्। ८

दिशा	न०	फलानि
पूर्वे	३	सौख्यम्
अग्नि	३	बहुभयम्
दक्षिणे	३	दुःखम्
नैऋत्ये	३	दुःखम्
पश्चिमे	३	बहुभयम्
वायौ	३	बहुभयम्
उत्तरे	३	धनवृद्धिः
ईशाने	३	बहुभयम्
मध्ये	४	सौख्यम्

गृहपिण्डसारणी ।

दीर्घ	१५	१७	१७	१९	१९	२१	२१	२३	२३	२३	२५	२५	२५	२७	२७	२७	२९	२९	२९	३१
विस्तार	१३	१३	१५	१५	१७	१९	२१	१९	२१	२३	२१	२३	२५	२३	२५	२७	२५	२७	२९	२५
पिण्ड	१९५	२२१	२५५	२८५	३२३	३९९	४४१	४३७	४८३	५२९	५२५	५७५	६२५	६२१	६७५	७२९	७२५	७८३	८४१	७७५
आय	३	५	७	५	३	७	१	५	३	१	५	७	१	५	३	१	५	७	१	७
वार	५	१	६	३	२	७	७	६	७	१	७	२	४	३	६	२	१	५	२	३
अंश	९	३	९	९	३	९	९	३	९	६	९	३	६	९	९	९	३	९	६	६
द्रव्य	१२	४	१२	१२	४	१२	१२	४	१२	८	१२	४	८	१२	१२	१२	४	१२	८	८
ऋण	१	७	५	७	१	५	३	७	१	३	७	५	३	७	१	३	७	५	३	५
ऋक्ष	२१	१३	१५	१२	१९	६	१८	१३	३	२०	१५	१०	५	२७	२७	२७	२२	२७	५	१७
तिथि	१५	१३	१५	१५	४	१२	३	१	९	२	१५	१०	५	३	१५	१२	१०	९	८	५
योग	२४	२०	२१	६	२३	३	९	२०	१५	१०	२१	५	१६	२७	२७	२७	११	२७	१९	२२
आयुः	१२०	८८	१२०	१२०	६४	७२	४८	१६	२४	३२	१२०	४०	८०	४८	१२०	७२	४०	२४	८	८०
दीर्घ	३१	३१	३१	३३	३३	३३	३३	३५	३५	३५	३५	३७	३७	३७	३७	३९	३९	३९	३९	४१
विस्तार	२७	२९	३१	२७	२९	३१	३३	२९	३१	३३	३५	३१	३३	३५	३७	३३	३५	३७	३९	३३
पिण्ड	८३७	८९९	९६१	८९१	९५७	१०२३	१०८९	१०१५	१०८५	११५५	१२८५	११४७	१२२१	१२९५	१३६९	१२८७	१३६५	१४४३	१५२१	१३५३
आय	५	३	१	३	५	७	१	७	५	३	१	३	५	७	१	७	५	३	१	१
वार	१	६	४	४	३	२	१	७	७	७	७	५	६	७	१	५	७	२	४	४
अंश	९	३	६	९	९	९	९	६	३	९	६	६	९	३	६	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	४	८	१२	१२	१२	१२	८	४	१२	८	८	१२	४	८	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	७	१	३	१	७	५	३	५	७	१	३	१	७	५	३	५	७	१	३	३
ऋक्ष	२७	१०	२०	२७	१५	३	१८	२०	१३	६	२६	२३	२१	१९	१७	९	१२	१५	१८	२४
तिथि	६	७	८	३	६	९	१२	५	१०	१५	५	१०	३	१०	२	६	१५	९	३	९
योग	२७	५	१०	२७	२१	१५	९	१०	२०	३	१३	३५	२४	२३	२२	१८	६	२१	९	१२
आयुः	९६	११२	८	४८	९६	२४	७२	८०	४०	१२०	८०	५६	४८	४०	३२	९६	१२०	२४	४८	२४

गृहपिण्डसारणी ।

दीर्घ	४१	४१	४१	४१	४३	४३	४३	४३	४३	४५	४५	४५	४५	४५	४७	४७	४७	४७	४७	४९
विस्तार	३५	३७	३९	४१	३५	३७	३९	४१	४३	३७	३९	४१	४३	४५	३९	४१	४३	४५	४७	४१
पिण्ड	१४३५	१५१७	१५९९	१६८१	१५०५	१५८१	१६७७	१७६३	१८४९	१६६५	१७५५	१८४५	१९३५	२०२५	१८३३	१९२७	२०२१	२११५	२२०९	२००९
आय	३	५	७	१	१	७	५	३	१	१	३	५	७	१	१	७	५	३	१	१
वार	७	३	६	१	७	४	१	५	२	५	३	१	६	४	५	४	३	२	१	७
अंश	६	३	९	६	३	६	९	३	६	९	९	९	९	९	९	६	३	९	६	३
द्रव्य	८	४	१२	८	४	८	१२	४	८	१२	१२	१२	१२	१२	१२	८	४	१२	८	४
ऋण	१	७	५	३	३	५	७	१	३	३	१	७	५	३	३	५	७	१	३	३
ऋक्ष	५	१३	२१	२	२५	११	२४	१०	२३	९	२७	२८	९	२७	३	२६	२२	१८	१४	७
तिथि	५	१	१२	८	१०	८	६	४	२	१५	१५	१५	१५	१५	९	११	१३	१५	२	७
योग	१६	२०	२४	१	२६	१९	१२	५	२५	१८	२७	९	१८	२७	१५	१३	११	९	७	१७
आयुः	८०	१६	७२	८	४०	८	९६	६४	३२	१२०	१२०	१२०	१२०	१२०	२४	५६	८८	१२०	३२	११२

दीर्घ	४९	४९	४९	४९	५१	५१	५१	५१	५१	५१	५३	५३	५३	५३	५३	५३	५५	५५	५५	५५
विस्तार	४३	४५	४७	४९	४१	४३	४५	४७	४९	५१	४३	४५	४७	४९	५१	५३	४५	४७	४९	५१
पिण्ड	२१३७	२२०५	२३०३	२४०१	२०९१	२१९३	२२९५	२३९७	२४९९	२६०१	२२७९	२३८५	२४९१	२५९७	२७०३	२८०९	२४७५	२५८५	२६९५	२८०५
आय	३	५	७	१	३	१	७	५	३	१	७	१	३	५	७	१	३	१	७	५
वार	७	७	७	७	३	४	५	६	७	१	१	३	५	७	२	४	१	४	७	३
अंश	६	९	३	६	९	९	९	९	९	९	३	९	६	३	९	६	९	३	६	९
द्रव्य	८	१२	४	८	१२	१२	१२	१२	१२	१२	४	१२	८	४	१२	८	१२	४	८	१२
ऋण	१	७	५	३	१	३	५	७	१	३	५	३	१	७	५	३	१	३	५	७
ऋक्ष	८	९	१०	११	१५	२१	२७	६	१२	१८	७	१८	२	१३	२४	८	९	२५	२४	३
तिथि	११	१५	४	८	३	९	१५	६	१२	३	७	१५	८	१	९	२	१५	१०	५	१५
योग	४	१८	५	१९	२१	२४	२७	३	६	९	१७	९	१	२०	१२	४	१८	२६	७	१५
आयुः	५६	१२०	६४	८	४८	२४	१२०	९६	७२	४८	११२	१२०	८	१६	२४	३२	१२०	४०	८०	१२०

गृहपिण्डसारणी ।

दीर्घ	५५	५५	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५९	५९	५९	५९	५९	५९	६१	६१	६१	६१	६१	६१
विस्तार	५३	५५	४७	४९	५१	५३	५५	५७	४९	५१	५३	५५	५७	५९	४९	५१	५३	५५	५७	५९
पिण्ड	२९१५	३०२५	२६७९	२७९३	२९०७	३०२१	३१३५	३२४९	२८९१	३००९	३१२७	३२४५	३३६३	३४८१	२९८९	३१११	३२३३	३३५५	३४७७	३५९९
आय	३	१	७	१	३	५	७	१	३	१	७	५	३	१	५	७	१	३	५	७
वार	६	२	३	७	४	१	५	२	७	५	३	१	६	४	७	६	५	४	३	२
अंश	३	६	९	९	९	९	९	९	३	९	६	३	९	६	६	९	३	६	९	३
द्रव्य	४	८	१२	१२	१२	१२	१२	१२	४	१२	८	४	१२	८	८	१२	४	८	१२	४
ऋण	१	३	५	३	१	७	५	३	१	३	५	७	१	३	७	५	३	१	७	५
ऋक्ष	१९	८	२१	१५	९	३	२४	१८	१६	१५	१४	१३	१२	११	१७	२१	२५	२	६	१०
तिथि	१०	५	१२	९	६	३	१५	१२	१३	१२	११	१०	९	८	२	३	४	५	६	७
योग	२३	४	२४	२१	१८	१५	१२	९	८	२१	७	२०	६	१९	२२	२४	२६	१	३	५
आयुः	४०	८०	७२	२४	९६	४८	१२०	७२	८८	७२	५६	४०	२४	८	३२	४८	६४	८०	९६	११२

दीर्घ	६१	६३	६३	६३	६३	६३	६३	६३	६५	६५	६५	६५	६५	६५	६५	६७	६७	६७	६७	६७
विस्तार	६१	५१	५३	५५	५७	५९	६१	६३	५३	५५	५७	५९	६१	६३	६५	५५	५७	५९	६१	६३
पिण्ड	३७२१	३२१३	३३३९	३४६५	३५९१	३७१७	३८४३	३९६९	३४४५	३५७५	३७०५	३८३५	३९६५	४०९५	४२२५	३६८५	३८१९	३९५३	४०८७	४२२१
आय	१	५	३	१	७	५	३	१	५	७	१	३	५	७	१	५	३	१	७	५
वार	१	७	७	७	७	७	७	७	२	३	४	५	६	७	१	६	१	३	५	७
अंश	६	९	९	९	९	९	९	९	६	३	९	६	३	९	६	६	९	३	६	९
द्रव्य	८	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	८	१२	४	८	१२
ऋण	३	७	१	३	५	७	१	३	७	५	३	१	७	५	३	७	१	३	५	७
ऋक्ष	१४	२७	९	१८	२७	९	१८	२७	२०	७	२१	८	२२	९	२३	२३	१५	७	२६	१८
तिथि	८	९	१२	१५	३	६	९	१२	५	१०	१५	५	१०	१५	५	५	१२	४	११	३
योग	७	२७	१८	९	२७	१८	९	२७	१०	१७	२४	४	११	१८	२५	२५	२१	१७	१३	९
आयुः	८	२४	७२	१२०	४८	९६	२४	७२	८०	४०	१२०	८०	४०	१२०	८०	८०	७२	६४	५६	४८

गृहपिण्डसारणी ।

दीर्घ	६७	६७	६९	६९	६९	६९	६९	६९	६९	७१	७१	७१	७१	७१	७१	७१	७१	७३	७३	७३
विस्तार	६५	६७	५७	५९	६१	६३	६५	६७	६९	५७	५९	६१	६३	६५	६७	६९	७१	५९	६१	६३
पिण्ड	४३५५५	४४३८९	३९३३३	४०७०१	४२००९	४३३४७	४४८८५	४६२२३	४७७६१	४०४४७	४१८८९	४३३२१	४४४७३	४६२१५	४७५५७	४८८९९	५०४४१	४३३०७	४४८५३	४५९६९
आय	३	१	५	७	१	३	५	७	१	७	५	३	१	७	५	३	१	३	५	७
वार	२	४	५	१	४	७	३	६	२	२	६	३	७	४	१	५	२	४	२	७
अंश	३	६	९	९	९	९	९	९	९	९	६	३	९	६	३	९	६	३	६	९
द्रव्य	४	८	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	४	८	१२
ऋण	१	३	७	५	३	१	७	५	३	५	७	१	३	५	७	१	३	१	७	५
ऋक्ष	१०	२	९	६	३	२७	२४	२१	१८	३	५	७	९	११	१३	१५	१७	४	११	१८
तिथि	१०	२	९	३	१२	६	१५	९	३	६	२	१३	९	५	१	१२	८	१	१४	१२
योग	५	१	१८	३	१५	२७	२१	२४	९	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२	१९	९
आयुः	४०	३२	२४	४८	७२	९६	१२०	२४	४८	९६	३२	८८	२४	८०	१६	७२	४८	१६	१०४	७२

दीर्घ	७३	७३	७३	७३	७३	७५	७५	७५	७५	७५	७५	७५	७५	७७	७७	७७	७७	७७	७७	७७
विस्तार	६५	६७	६९	७१	७३	६१	६३	६५	६७	६९	७१	७३	७५	६५	६७	६९	७१	७३	७५	७७
पिण्ड	४७७४५	४८८९१	५०३३७	५११८३	५३३२९	४५५७५	४७०२५	४८५७५	५०२२५	५१५७५	५३३२५	५४४७५	५६२२५	५००७५	५१५५९	५३२१३	५४९६७	५६२२१	५७६७५	५९२२९
आय	१	३	५	७	१	७	५	३	१	७	५	३	१	५	७	१	३	५	७	१
वार	५	३	१	६	४	१	७	६	५	४	३	२	१	७	७	७	७	७	७	७
अंश	३	६	९	३	६	९	९	९	९	९	९	९	९	६	३	९	६	३	९	६
द्रव्य	४	८	१२	४	८	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	८	४	१२	८	४	१२	८
ऋण	३	१	७	५	३	५	७	१	३	५	७	१	३	७	५	३	१	७	५	३
ऋक्ष	२५	५	१२	१९	२६	१५	२७	१२	२४	९	२१	६	१८	२६	१६	६	२३	१३	३	२०
तिथि	१०	८	६	४	२	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	५	७	९	११	१३	१५	२
योग	२६	१६	६	२३	१३	२१	२७	६	१२	१८	२४	३	९	१३	८	३	२५	२०	१५	१०
आयुः	४०	८	९६	६४	३२	१२०	१२०	१२०	१२०	१२०	१२०	१२०	१२०	८०	११२	२४	५६	८८	१२०	३२

२२

श्रीगणेशायनमः ।

अथ शिलान्यासपद्धतिः ।

जगदम्बावलम्बाय निरालम्बाय शूलिने ।
जगत्त्रयकुटुम्बाय नमः साम्बाय शम्भवे ॥ १ ॥
जनकं ज्ञानदं नत्वा प्रभुदत्ताग्निहोत्रिणम् ।
तद्दर्शितपथां कुर्वे शिलान्यासस्य पद्धतिम् ॥ २ ॥

यजमानः सस्त्रीकः शुचिः प्राङ्मुख उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य प्राणानायम्य शान्तिपाठादि पठित्वा कुशयवजलादीन्यादाय सङ्कल्पं कुर्यात् । ॐ तत्सदद्य अमुकोऽहं गृहनिर्माणाय शिलान्यासं करिष्ये । तत्पूर्वाङ्गत्वेन गणपति पूजनं स्वस्तिवाचनं च करिष्य इति सङ्कल्प्य ते कुर्यात् ।

(१) वास्तुशान्तिकरणपक्षे "तत्रादौ सर्वोपद्रवशान्तिपूर्वकं आयुरारोग्यपुत्रपौत्रद्विपद-चतुष्पद-धनधान्यादिसमृद्धये ग्रहयज्ञसहितां वास्तुशान्तिं करिष्ये" इति च सङ्कल्पयेत् ।

तत उपशिलासहिताः पञ्चशिलाः (२) पीठे संस्थाप्य ताम्रमयान् मृन्मयान्

---

१ "प्रासादभवनोद्यानप्रारम्भे परिवर्तने । पुरवेश्मप्रवेशेषु सर्वदोषापनुत्तये" इति मात्स्यात सर्वदोषापनोदफलार्थं गृहप्रारम्भ-गृहप्रवेशयोर्वास्तुशान्तिरावश्यकी । गृहप्रारम्भश्च शिलान्यासरूप एव । सवास्तुशान्तिशिलान्यासे मण्डपकुण्डादिकरणं च सति संभवे विधेयम् । मण्डपसत्त्वे सदस्य-होतृ-द्वारपालादिवरणमप्यावश्यकमिति । वास्तुशान्तिश्च केवलं पौराणकी शिलान्यासेऽनुष्ठेया, न समुच्चिता । समुच्चितताया गृहप्रवेश एव विधानादिति ।

(२) शिलाश्च शिरःपृष्ठेषु कृतचिन्हाः, पाषाणमयं चेद् गृहं तदा एकविंशत्यङ्गुलदीर्घाः सप्तदशाङ्गुलदीर्घाः, त्रयोदशाङ्गुलदीर्घाः नवाङ्गुलदीर्घाः क्रमेण विप्र-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्राणाम्, तथा दैर्घ्यप्रमाणार्धप्रमाणविशालाः, विशालतोऽर्धोच्छ्रायाश्चतुरस्राः समाः श्लक्ष्णाः कार्याः । "शिलाप्रमाणं क्रमशः प्रदिष्टं वर्णानुपूर्व्येण तथाऽङ्गुलानाम् । अथैकविंशद्-घन-विश्व-नन्दा विस्तारके व्यासमितं तदर्धम् । तदर्धमानं त्वथ पिण्डिका स्यात् ऊर्ध्वाधिका न्यूनतरा न कार्या" इति विश्वकर्मोक्तेः । "एकविंशद् द्विजाग्र्याणां क्षत्राणां दश सप्त च । त्रयोदश तु वैश्यानां शूद्राणां तु नवाङ्गुलम्" इति स्मृत्यन्तराच्च । प्रासादे तु हस्तायामाः कार्याः—"प्रासादादौ विधानेन न्यस्तव्याः सुमनोहराः । चतुरस्राः समाः कृत्वा समन्ताद्धस्तसंमिताः इति विश्वकर्मोक्तेः । ऐष्टकं चेद् गृहं तदा वितस्त्यायताः षडङ्गुलविस्ताराः द्वि-चतुरङ्गुलोच्छ्राया इष्टकाः कारयितव्याः । "इष्टकाश्च सुपक्वाः स्युर्द्वादशाङ्गुलसंमिताः । विस्तारस्य त्रिभागेण वैपुल्येन समन्विताः" इत्यग्निपुराणे (अ० ४९) उक्तेः । आयामतुल्यविस्तारकरणे चतुरङ्गुलस्थूलाः, तदर्धविस्तारकरणे द्व्यङ्गुलस्थूला इष्टकाः कार्याः शिलाविस्तारस्य द्विविधस्य दृष्टत्वेन इष्टकाविस्तारस्यापि तथाविधस्य ग्रहीतुमुचितत्वादिति ।

वा द्वाविंशति कलशान् आजिघ्रेति संस्थाप्य तेषु (३) मृत्-पञ्चपल्लववृत्तीय-कषाय-गन्ध-गोमूत्र-गोमय-मिलितपञ्चगव्य-दुग्ध-गन्धोदक-दधि-गन्धोदक-घृत-गन्धोदक-मधु-गन्धोदक-शर्करा-गन्धोदक-फल-रत्न-वृषश्टङ्गोदक-सप्तधान्य-तीर्थ जल-गन्धान् क्रमेण प्रक्षिप्य शिला वस्त्रेणाच्छाद्य मन्त्रैः स्नापयेत्—

तद्यथा—प्रथमं सप्तमृत्तिकोदकेन—ॐ अग्निमूर्द्धा० अश्वत्थ-प्लक्ष-वटो-दुम्बर-वेतसमूलसंभवैः पञ्चकषायैः ॐ यज्ञायज्ञा वो अ० इति, गायत्र्या गोमूत्रेण, गन्धद्वारामिति गोमयेन, गन्धद्वारातिति गन्धोदकेन, पयः-पथिव्याम् इति मिलितपञ्चगव्येन, गन्धोदकेन, दधिक्राव्ण इति दध्ना, गन्धोदकेन, घृतवती इति घृतेन, गन्धोदकेन, मधुव्वाता इति घृतेन, गन्धोदकेन, आयं गौः इति शर्करया, गन्धोदकेन, याः फलिनीरिति फलेन, परि वाजपतिरिति रत्नोदकेन, हिरण्यगर्भ इति सुवर्णोदकेन, हविष्मतीरिति वृषश्टङ्गोदकेन, ओषधय इति सप्त-धान्योदकेन, इमं मे इति तीर्थोदकेन, गन्धद्वारामिति गन्धोदकेन च संस्नाप्य वस्त्रेण परिमार्ज्य सुवर्णादिशलाकया कुङ्कुमादिना नन्दा-भद्रा-जया-रिक्ता-पूर्णेति नाम्नीषु पञ्चसु शिलासु क्रमेण (४) पद्मम्, सिंहासनम्, तोरण-छत्रे कूर्मम्, चतुर्भुजं विष्णुं च लिखित्वा शिलानां मूलेषु अभिषेकं कुर्यात् पञ्चभिर्मन्त्रैः क्रमेण-(५) ॐ आ ब्रह्मन्, ॐ भद्रं कर्णेभिः, ॐ जातवेदसे, ॐ यमाय त्वाऽङ्गिरस्वते; ॐ पूर्णा दर्वि; इति।

ततः शिलानां मध्येऽभिषिञ्चेत्—ॐ नाभिर्मे १० ॐ ब्रह्म यज्ञानम्, ॐ विष्णो रराटम् ॐ नमस्ते रुद्र, ॐ इमं देवाः इति मन्त्रैः—

ततः शिलानां शिरसि अभिषिञ्चेत्-तत्र मन्त्राः—ॐ तद्विष्णोः परमं, ॐ इदं विष्णुः, ॐ समख्ये, ॐ त्र्यंबकं, ॐ मूर्द्धानम् इति।

ततः शिलानां शिरस्सु (६) क्रमेण ब्रह्माणं, विष्णुम्, रुद्रम्, ईश्वरम्, सदा-शिवं च क्रमेणावाह्य ततो नन्दायै नमः नन्दामावाहयामि इत्येवं भद्रा जया रिक्ता

---

(३) मृद्भिर्गोमयगोमूत्रकाषायैर्गन्धवारिणा। विधिना पञ्चगव्येन स्नानं पञ्चामृतेन च। गन्धतोयान्तरं कुर्याच्चि ननामाङ्किताणुता। फलरत्नसुवर्णानां गोश्टङ्गसलिलैस्ततः। चन्दनेन समालभ्य वस्त्रैराच्छादयेच्छिलाः" इति स्नानप्रकारः अग्निपुराणे (अ० ९२) उक्तः, मन्त्राश्च "अग्निर्मूर्द्धा" इत्यादयो विश्वकर्मप्रकाशे (अ० ९ श्लो ६४) उक्ताः।

(४) नन्दा-भद्रा-जया-रिक्ता-पूर्णा इत्याख्यासु पञ्चसु शिलासु क्रमेण पद्मं, सिंहासनं, तोरणच्छत्रे, कूर्मं, चतुर्भुजं विष्णुं च टङ्केन लेखयेत्। नन्दादिशिलानां च स्थापनार्थं किंचित्तद-धिकप्रमाणान् शिलामयानेवाधारान् कल्पयेत् ता उपशिला इत्युच्यन्ते। उपशिलासु पद्मादि निधिकुम्भस्थापनार्थं मध्ये एकैकं गर्तं कारयेत्।

(५) "आ ब्रह्मन्निति नन्दाया भद्रं कर्णेति वै तथा। जातवेदसेति. च तथा यमायत्वेतिमन्त्र-कैः। पूर्णा दर्वीति पूर्णायाः क्रमेणापि समाचरेत्। मूले, मध्येऽपि च तथा नाभिर्मेति च मन्त्रकैः ब्रह्म यज्ञानमिति च विष्णो रराटमिति तथा। नमस्ते रुद्र इति च इमं देवेति संस्नपेत्।

(६) शीर्षे चावाहनं कुर्यात् तद्विष्णोः परमं पदम्। इदं विष्णुः समख्ये च त्र्यंबकं मूर्द्धानं मेदिवः" इति नन्दादिशिलानां क्रमशः मध्यशिरःसु अभिषेकः, शिरःसु आवाहनं चोक्तम्।

पूर्णाश्चावाह्य सम्पूज्य अग्निं प्रतिष्ठाप्य ॐ नन्दायै स्वाहा १ ॐ भद्रायै स्वाहा ॐ जयायै स्वाहा ॐ रिक्तायै स्वाहा ॐ पूर्णायै स्वाहा इति घृतेनाष्टोत्तरशतमष्टा विंशत्यष्टान्यतमसङ्ख्ययाहुत्वा याते रुद्र शिवा तनूरघोरा इति अष्टोत्तरशतमाहुतीः शान्त्यर्थं हुत्वा प्रोक्षणीस्थान् संस्रवान् स्थण्डिलस्योत्तरतः स्थापितकलशे निक्षिप्य (७) तेनोदकेन शिलानां मूलमध्यशिरःसु कुशैरभिषिच्य भूमिं संपूज्य वास्तुभूमेरीशानादिकोणेषु चतुर्हस्तं गर्तं खात्वा गोमयेनोपलिप्य तत्र सर्पाकारं वास्तुपुरुषमक्षतैर्लिखित्वा "आवाहयाम्यहं देवं भूमिष्ठं चाप्यधोमुखम् । वास्तुनाथं जगत्प्राणं पूर्वस्यां प्रमथाश्रितम्" इत्यावाह्य ॐ वास्तोष्पते इति संपूज्य प्रार्थयेत् । ॐ वास्तु पुरुष नमस्तेऽस्तु भूशय्याभिरत प्रभो । मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा" इति ।

(८) तत ईशानकोणे उपशिलां संस्थाप्य तस्या मध्यगर्ते अध्वाज्यपारदपञ्चरत्नगर्भितं पिहितमुखं पद्मकलशं (९) गन्धपुष्पादिभिरलङ्कृतं निधाय ॐ पद्माय नमः ॐ आधारशिलायै नमः इति संपूज्य तस्य वामभागे दीपं संस्थाप्य (१०)

---

(७) "प्रोक्ष्याः शान्तिजलैः शिलाः" इत्यग्निपुराणात् (अ० ९२) संस्रवजलैरभिषेकः ।

(८) अनेन हि खननेऽपि ईशानादिक्रम एव लभ्यते । "खननावटसंस्कारे प्रारम्भो वह्निगोचरः" इत्यादि तु संपूर्णवास्तुभूमिनिखनने आरम्भस्य आग्नेये कर्तव्यताबोधकम् । शिलान्यासस्य आग्नेयोपक्रमपक्षे तत्र खननोपक्रमकर्तव्यताबोधकं वा ।

कन्यासिंहे तुलायां भुजगपतिमुखं शम्भुकोणेऽग्निखातं वायव्ये स्यात्तदास्यं त्वलिधनुमकरे, ईशखातं वदन्ति । कुम्भे मीने च मेषे निर्ऋतिदिशि मुखं, खात वायव्यकोणे अग्नेः कोणे मुखं वै वृषमिथुनगते कर्कटे, रक्ष खातम् । अस्यार्थः—सिंहकन्यातुलासु वास्तुसर्पस्य मुखमीशान कोणे भवति । अतः खातं खातस्योपक्रमः सिंहकन्यातुलाख्ये सूर्ये अग्निकोणे कार्यः । वृश्चिकादिराशित्रयसंस्थे सूर्ये सर्पास्यं वायव्ये भवति, ततस्तदा ईशाने खातोपक्रमः वृषादिराशित्रये सूय अग्निकोणे सर्पमुखम् नैर्ऋते तदा खातोपक्रम इति । इदमपि शिल्पिशास्त्रवचनं भित्त्यर्थं समन्ततः कर्तव्यस्य, भूमिदोषनिवारणार्थं समस्तवास्तु भूमौकर्तव्यस्य वा खातस्योपक्रमे दिग्विशेषनियामकम् । ननुशिलान्यासाय कर्तव्यखातस्योपक्रमे दिग्विशेषनियामकम् । तत्र सर्वदा दिग्विशेषस्य व्यवस्थितत्वेन कालविशेषे दिगन्तरमनियमयितुमशक्यत्वात । इत्थमेव सामञ्जस्ये बाध्यबाधकभावकल्पनाऽनवकाशादिति दिक् ।

(९) पद्मादिनिधिकुम्भाश्च ताम्रमया मृन्मया वा विप्रादीनां क्रमेण पञ्चाङ्गुलाः, सार्द्धद्व्यङ्गुलाः, सपादाङ्गुलाः पञ्च कार्याः । शूद्राणामपि सपादाङ्गुला एव, चतुर्थमानस्यानुक्तेः "ध्रुवे शिलायास्तु ततः खनित्वा कुम्भं प्रतिष्ठाप्य शराङ्गुलीयम् । विप्रादिवर्णानुगतः प्रशस्तः तदर्धमा ं तु तदर्धमानम्" इति विश्वकर्मोक्तेः । कुम्भानां पिधानानि च कार्याणि ।

(१०) "ततः सुलग्ने संप्राप्ते पञ्च वाद्यानि वादयेत् । नन्दां प्रगृह्य च शिलां तथाधारशिलां न्यसेत् ॥ ८२ ॥ तस्योपरि न्यसेत्पद्मकलशं मन्त्रवर्जितम् । सर्वौषधिजलोपेतं पारदाज्यघृतप्लुतम् ॥ ८३ ॥ पिहितं रत्नगर्भं च तेजोराशिभिरञ्जितम् । सदाशिवस्य रूपं च ध्यात्वा पञ्चोपचारकैः । संपूज्य दीपं विन्यस्य वामभागेऽथ गर्तके । तत्रोपरि न्यसेन्नन्दां संपूज्य च

कलशोपरि प्राक्शिरसं नन्दाम् ॐ स्थिरो भव ॐ नाभिर्मे इति मन्त्रद्वयेन संस्थाप्य संपूज्य प्रार्थयेत्—ॐ नन्दे त्वं नन्दिनी पुंसां त्वामत्र स्थापयाम्यहम्। वेश्मनि त्विह सन्तिष्ठ यावच्चन्द्रार्कतारकाः। आयुः कामं श्रियं देहि देववासिनि नन्दिनी। अस्मिन् रक्षा त्वया कार्या सदा वेश्मनि यत्नतः" इति। एवमेव आग्नेयादिकोणचतुष्टये मध्ये च चतुर्हस्तं गर्तं खात्वा वास्तुं विलिख्य संपूज्य आधारशिलासु कलशान् संस्थाप्य तद्वामपार्श्वेषु दीपान् संस्थाप्य तत्र शिलाः संस्थाप्य संपूज्य प्रार्थयेत्—

भद्राप्रार्थनामन्त्रः—भद्रे त्वं सर्वदा भद्रं लोकानां कुरु काश्यपि। आयुर्दा कामदा देवि सुखदा च सदा भव। त्वामत्र स्थापयाम्यद्य गृहेऽस्मिन् भद्रदायिनि।

जयाप्रार्थनामन्त्रः—गर्गगोत्रसमुद्भूतां त्रिनेत्रां च चतुर्भुजाम्। गृहेऽस्मिन् स्थापयाम्यद्य जयां चारुविलोचनाम्। नित्यं जयाय भूत्यै च स्वामिनो भव-भार्गवि।

रिक्ताप्रार्थनामन्त्रः—रिक्ते त्वं रिक्तदोषघ्ने सिद्धिभुक्तिप्रदे शुभे। सर्वदा सर्वदोषघ्नि तिष्ठास्मिंस्तत्र नन्दिनि।

पूर्णाप्रार्थनामन्त्रः—पूर्णे त्वं सर्वदा पूर्णान् लोकानां कुरु काश्यपि। आयुर्दा-कामदा देवि धनदा सुतदा तथा। गृहाधारा वास्तुमयी वास्तुदीपेन संयुता। त्वामृते नास्ति जगतामाधारश्च जगत्प्रिये"

ततः सदीपं पायसबलिं माषभक्तबलिं वा नन्दायै नमः इत्यादिनाममन्त्रैर्दत्वा शान्तिकाध्यायं च पठित्वा दक्षिणां दत्वा ब्राह्मणभोजनं भूयसीं च संकल्प्य कर्मेश्वरार्पणं कुर्यादिति शिलान्यासः।

यथाविधि ॥ ८९ ॥ नाभिर्मेति च मन्त्रेण स्थिरो भवेति वै तथा। प्रार्थनां च तथा कुर्यादागमोक्तेन मन्त्रवित् ॥ ८६ ॥ नन्दे त्वं ॥ ८७ ॥ ८८ महापद्मं न्यसेत्तत्र (आधारशिलायाम्) पूजयेद्रत्नगर्भितम्। तत्र भद्रां च संस्थाप्य पूजयेत्तं च मन्त्रकैः ॥ ८८ ॥ भद्रं कर्णेति च तथा स्थापयेद्वारुणैस्तथा। भद्रे त्वं ॥ ९० ॥ ९१ ॥ आधारोपरि विन्यस्य कलशं शङ्खसंज्ञकम्। कोणे संपूज्य-विधिवज्जयां संस्थापयेत्ततः ॥ ९२ ॥ जातवेदसेति मन्त्रेण पूर्वोक्तेन च मन्त्रतः। गर्गगोत्रस० ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ आधारोपरिविन्यस्य विजयं कलशं ततः। रिक्तां संस्थापयेत्तत्र मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥ ९५ ॥ त्र्यंबकं यजामहेति तथा वरुणमन्त्रकैः। पूजयेत्प्रार्थयेत्तद्वद्रिक्तां रिक्तार्त्तिहारिणीम् ॥ ९६ ॥ रिक्ते त्वं० ॥ ९७ ॥ आधारे विन्यसेन्मध्ये सर्वतोभद्रसंज्ञकम्। पूर्णं रत्नान्वितं पुष्टं सर्वमन्त्राभिमन्त्रितम् ॥ ९८ ॥ तं च संपूज्य विधिवद् ध्यात्वा तत्र सदाशिवम्। तत्रोपरि न्यसेत्पूर्णां पूर्णानन्दप्रदायिनीम् ॥ ९९ ॥ पूर्णे त्वं ॥ १०० ॥ १०१ ॥ पूर्णा दर्वीति-मन्त्रेण इमं देवेति वै तथा। मूर्द्धानं दिवेति तथा शान्तिमन्त्रैस्तथैव च ॥ १०२ ॥ सहस्रशीर्षेति षोडशभिररग्निमीडेति वै तथा। इषे त्वोर्जेत्वेत्यग्न आयाहीति तथा पुनः ॥ १०३ ॥ शन्नो देवीति मन्त्रेण स्थापयेत्प्रयतः शुचिः" इति शिलानां स्थापनप्रकारः उपदिष्टो विश्वकर्मप्रकाशे (अ० ९)।

अथवास्तुशान्तिपद्धतिः

श्रीगणेशायनमः गृहप्रवेशदिनात् पूर्वे शुभे दिने पूर्वाह्ने यजमानः सस्त्रीकः प्राङ्मुखो दीपं प्रज्वलय्य आचमनादि—देशकालस्मरणान्ते मम पुत्रपौत्रादि-सहितस्य अस्मिन् नूतनगृहे चिरकालसुखनिवास-सर्वसङ्कट नानाविधरोगादि सर्वो-पद्रवशान्ति सम्पदायुरारोग्यधनधान्य द्विपदचतुष्पद पुत्रपौत्राद्यभिवृद्धिपूर्वकम् सुवर्ण रजत ताम्र त्रपु सीस कांस्य लोह पाषाणाद्यष्टशल्यमेदिनीदोष-आयव्ययाद्य-न्यथाभवन-नानाविधहिंसादोषपरिहारद्वारा एतद् गृहक्षेत्रावच्छिन्न भूम्यधिष्ठित देवतोपरोधजनितोपसर्गनिवृत्तिपूर्वकवास्तोः शुभता सिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वर प्रीत्यर्थं गृहप्रवेशनिमित्तां (१) सग्रहमखां (२) वास्तुशान्तिं गृहप्रवेशाख्यं कर्म चाहं करिष्ये। तदङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याहवाचनं, मातृकापूजनं वसोर्धारापूजनम्, आयुष्यमन्त्रजपं साङ्कल्पिकं नान्दीश्राद्धं च करिष्ये, तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनं च क० तत आचार्यब्रह्मणोः अष्टानां चतुर्णां वा ऋत्विजाम् सति सम्भवे पौराणिकशान्तिकाध्याय सप्तशती विष्णुसहस्रनामादि पाठकानाम्, गणेश-ग्रह-वास्तुप्रभृति मन्त्रजापकानां च सम्प्रदायागतानां वरणं कुर्यात् ।

"इति वास्तुविधानं तु कृत्वा ताः स्नानमण्डपात् । समानीय शिलास्तत्र सूत्रधारो गुणान्वितः । तत्र दिक्साधनं कुर्यात् गृहमध्ये सुसाधिते । ईशानादिक्रमेणैव स्वर्णकुद्दालकेन तु । खनित्वा कोणदिग्भागे आग्नेये च विशेषतः । नाभिमात्रे तथा गर्तं शिलानां स्थापनं शुभम्" (अ० ९ श्लो० ४२-४४) "गृहकोणेषु सर्वेषु पूजां कृत्वा विधानतः । ईशानमादितः कृत्वा प्रादक्षिण्येन विन्यसेत् । नन्दाभद्राजयारिक्तापूर्णानाम्नीर्यथाक्रमम् । नन्दायां पद्ममालिख्य भद्रा सिंहासनं तथा । जयायां तोरणच्छत्रे रिक्तायां कूर्ममेव च । पूर्णायां च चतुर्बाहुं विष्णुं संलेखयेद्बुधः । भूर्भुवः स्वरिति तथा तासामावाहनं स्मृतम् । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईशानश्च सदाशिवः । भूतान्येतानि पञ्चैव पञ्चस्वावाहयेत्पुनः । स्नपनं च ततः कुर्याद्विधिदृष्टेन च कर्मणा इति" विश्वकर्मप्रकाशेऽभिहि-तम् (अ० ९-५७-६२)

१ "एतद्वास्तूपशमनं कृत्वा कर्म समाचरेत् । प्रासादभवनोद्यानप्रारम्भे परिवर्तने पुरवेश्मप्रवेशे च सर्वदोषोपशान्तये । वास्तूपशमनं कृत्वा ततः सूत्रेण वेष्टयेत् । रक्षोघ्नपावमानेन सूक्तेन भवनादिकम् । नृत्यमङ्गलवाद्यैश्च कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् । अनेनविधिना यस्तु प्रति संवत्सरं बुधः । गृहं वाऽऽयतने कुर्यान्नस दुःखमवाप्नुयात्" इति हेमाद्रौ मत्स्यपुराणे गृहनिर्माण-प्रवेशादौ वास्तुशान्तिः सर्वाशुभनिवृत्त्यादिफलिका विहिता

२ "कार्यारम्भेषु सर्वेषु नववेश्मप्रवेशने । ग्रहशान्तिं विधानेन कृत्वाऽभीष्टं समश्नुते" इति शौनकेन ग्रहयागस्यापि वास्तुशान्तौ विधानात् सति संभवे ग्रहयागसहिता वास्तुशान्तिः प्रकर्तव्या । ग्रहपूजनं च वास्तुदेवतापूजनापेक्षया पूर्वमेव कार्यम् । होमोऽपि ग्रहोद्देश्यको वास्तु-देवतोद्देश्यकहोमापेक्षया पूर्वमेव कार्यः । ग्रहशान्तेः सकलकर्मसाधारण्येन पुण्याहवाचनादीनामिव कर्मारम्भात्पूर्वमेव अनुष्ठातुमुचितत्वात् । ततो ग्रहार्चनं वास्तुपूजाविधिमतः परम् (८।२७) इति विश्वकर्मप्रकाशे वचनात् । "होमं कुर्याद् ग्रहाणां तु स्वशाखोक्तविधानतः । वास्तुहोमं ततः कुर्यात्" (११।४०) इति तत्रैव होमेपि ग्रहहोमस्यैव पूर्वतोक्तेति ।

(१) मण्डपकरणे जापकानां द्वारपालानां च वरणं कुर्यात् । अस्मिन् सग्रहमखे वास्तुशान्तिकर्मणि वृतान् ऋत्विजो मधुपर्केणार्चयिष्ये इति संकल्प्य मधुपर्केणार्चयित्वा प्रार्थयेत् ।

"ब्राह्मणाः सन्तु शास्तारः पापात्पान्तु समाहिताः ।
वेदानां चैव दातारः पातारः सर्वदेहिनाम् ॥
जपयज्ञैस्तथा होमैर्दानैश्च विविधैः पुनः ।
देवानां च ऋषीणां च तृप्त्यर्थं याजकाः स्मृताः ॥ २ ॥
येषां देहे स्थिता वेदाः पावयन्ति जगत्त्रयम् ।
रक्षन्तु सततं ते मां जपे यज्ञे व्यवस्थिताः ॥ ३ ॥
ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तेषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥ ४ ॥
पावनाः सर्ववर्णानां ब्राह्मणा ब्रह्मरूपिणः ।
सर्वकर्मरता नित्यं वेदशास्त्रार्थकोविदाः ॥ ५ ॥
श्रोत्रियाः सत्यवाचश्च देवध्यानरताः सदा ।
यद्वाक्यामृतसंसिक्ता ऋद्धिं यान्ति नरद्रुमाः ॥ ६ ॥
अङ्गीकुर्वन्तु कर्मैतत् कल्पद्रुमसमाशिषः ।
यथोक्तनियमैर्युक्ता मन्त्रार्थे स्थिरबुद्धयः ॥ ७ ॥
यत्कृपालोचनात्सर्वा ऋद्धयो वृद्धिमाप्नुयुः ।
वास्तुयागे च मे पूज्याः सन्तु ते नियमान्विताः ॥ ८ ॥
अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः ।
देवध्यानरता नित्यं प्रसन्नमनसः सदा ॥ ९ ॥
अदुष्टभाषणाः सन्तु मा सन्तु परनिन्दकाः ।
ममापि नियमा ह्येते भवन्तु भवतामपि ॥ १० ॥
ऋत्विजश्च यथापूर्वं शक्रादीनां मखेऽभवन् ।
यूयं तथा मे भवत ऋत्विजोऽर्हणसत्तमाः ॥ ११ ॥
अस्मिन् कर्मणि ये यत्र वृता गुरुमुखादयः ।
सावधानाः प्रकुर्वन्तु स्वं स्वं कर्म यथोदितम् ॥ १२ ॥
अस्य यागस्य निष्पत्तौ भवन्तोऽभ्यर्थिता मया ।
सुप्रसन्नैः प्रकर्त्तव्यं कर्मेदं विधिपूर्वकम् ॥ १३ ॥

ततो यजमानः सम्पूर्णकलशहस्त आचार्यादिसहितो दीपादीनि सर्वोपकरणानि द्विजैर्ग्राहयित्वा मण्डपं सुसंस्कृतं स्थलं वा प्रदक्षिणीकृत्य पश्चिमद्वारेण भद्रं कर्णेभिरिति प्रविशेत् ।

---

(१) "नित्यं नैमित्तिकं हित्वा सर्वमन्यत्समण्डपम्" इति शारदातिलकात्, मत्स्यपुराणे-गृहप्रवेशविधिमुक्त्वा-'प्रासादवास्तुशमने च विधिर्यं उक्तः" (२९७) इति प्रसादवास्तु शान्त्युक्तविधानस्य गृहवास्तुशान्तौ अतिदिष्टत्वाच्च मण्डपकरणं सति संभवे भवति । प्रासाद-वास्तुशान्तौ च मण्डपो मात्स्ये उक्तः, तदनुसृत्य मयूखादौ चोक्तः ।

(अथातः शालाकर्म) ततः शुद्धे देशे प्रादेशमात्रं स्थण्डिलं कृत्वा तत्र पञ्चभू-संस्कारपूर्वकमग्निं प्रतिष्ठाप्य कुशकण्डिकां विनैव पूर्णाहुतिवदाज्यं संस्कृत्य (का० श्रौ० ४) निरुप्याज्यम्-अधिश्रित्य स्रुवं कुशैः संमृज्य आज्यमुद्वास्य उत्पूय अवेक्ष्य स्तम्भावटेषु चतुर्षु कोणेषु-आग्नेयकोणादारभ्य जुहुयात्-तत्रमन्त्रः ॐ अच्युताय भौमाय स्वाहा इदमच्युताय भौमाय नमम । एवं नैर्ऋत्ये वायव्ये ईशान्ये च । गृहनिर्माणानन्तरं तु अवटाभावात् स्तम्भेष्वेव होमः । मुख्यकाले कर्माकरणे गौणकालेऽपि कर्त्तव्यमिति नियमात् । ततः स्तम्भचतुष्टयोच्छ्रयणम् । उच्छ्रितानां स्तम्भानां तु स्पर्शमात्रम् "सिद्धे मन्त्राः प्रयोक्तव्याः" इति नियमात् । तत्र मन्त्रः-ॐ इमामुच्छ्रयामि भुवनस्य नाभिं वसोर्द्धारां प्रतरणीं वसूनाम् ।

इहैव ध्रुवां निमिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठतु घृतमुक्षमाणा ॥ १ ॥
अश्वावती गोमती सूनृतावत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय ।
आ त्वा शिशु राक्रन्दत्वा गावो धेनवो वाश्यमानाः ॥ २ ॥
आ त्वा कुमारस्तरुण आ वत्सो जगदैः सह ।
आ त्वा परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरुप ॥ ३ ॥
क्षेमस्य पत्नी बृहती सुवासा रयिं नो धेहि सुभगे सुवीर्यम् ।
अश्वावद्गोमदूर्जस्वत् पूर्णं वनस्पतेरिव ।
अभि नः पूर्यता ँ रयिरिदमनु श्रेयो वसानः ॥ ४ ॥ इति ।

एषामेव मन्त्राणामावृत्तिः स्तम्भान्तरेषु कर्तव्या । यजमानानुज्ञात आचार्यः अस्यां वास्तुशान्त्याम् आचार्यकर्म करिष्यामि इति संकल्प्य ततो दिग्रक्षणं कुर्यात् । यदत्र संस्थितं० अपक्रामन्तु भूतानि पि० २, अपसर्प० ३, भूतानि राक्षसा-वापि० ४, ततो "गायत्र्याऽऽदाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् । आप्यायस्वेति च क्षीरं, दधिक्राव्णेति वै दधि तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम्, आलोडय प्रणवेनैव प्रणवेनाभिमन्त्रयेत्' इति पञ्चगव्यं निष्पाद्य कुशैः सर्वंगृहं, मण्डपकरणे मण्डपभूमिं च प्रोक्षेत् । मण्डपकरणे मण्डपाङ्गवास्तुपूजां विधाय मण्डपपूजां कुर्यात् ॥

ततो गृहमध्ये निर्मिते, मण्डपमध्ये वा निर्मिते कुण्डे स्थण्डिले वा अग्निं (१) प्रतिष्ठाप्य तदीशान्यां चतुरङ्गुलोन्नतां वितस्त्युन्नतां हस्तोन्नतां वा हस्तमितां वास्तुवेदिं वप्रद्वयावृतां वप्रत्रयावृतां वा कृत्वा तद्दक्षिणतो ग्रहवेदीं वितस्तिहस्ता-न्यतरोन्नतां हस्तमितां वप्रत्रयावृतां द्विवप्रां वा कुर्यात् । ग्रहाणां पूर्वाङ्गत्वात् प्राक्पू-जनीयत्वेन पश्चाद् वास्तुपूजाया उदक् संस्थत्वापेक्षणात् । ततो ग्रहवेद्यां ग्रहान् सम्पूज्य तदीशान्यां कलशं स्थापयेत् । वेद्युपरि वितानं बध्नीयात् । अथास्मिन्वा-स्तुशान्तिकर्मणि कुण्डादिषु गृहे च न्यूनाधिकाङ्गतादिवास्तुदोषसंसूचितसर्वारि-ष्टनिवर्हणार्थं वास्तुमण्डलदेवतास्थापनं पूजनमहं करिष्ये । वास्तुवेदेरीशानादि

---

(१) वास्तुशान्तौ वरदो नामाग्निः । "वास्तुयागे प्रजापतिः" इति वास्तुतत्वे वचना-त्प्रजापतिर्वा ।

कोणचतुष्के (१) आग्नेयादिक्रमेण वा शङ्कुचतुष्टयं दद्यात् (२)। तत्र मन्त्रः (वि० प्र० १४) विशन्तु भूतले नागा०, अस्मिन् गृहे तु तिष्ठन्तु आ०, प्रतिरोपणं मन्त्रावृत्तिः । कीलकारोपणक्रमेण शङ्कपार्श्वे माषभक्तबलिदानम् । तत्र मन्त्राः । अग्निभ्योऽप्यथ स. १, नैर्ऋत्याधि २, ओं नमो वायुरक्षेभ्यो ये चा० ३, रुद्रेभ्यश्चैव सर्पेभ्यो ये चा० गृह्णन्तु सततोत्सुकाः ४ इति (ईशानादिक्रमेण शङ्कुरोपणपक्षे अग्निभ्य इत्येकेनैव मन्त्रेण सर्वत्र आवृत्त्या बलिर्देय इति विशेषः) ।

ततो वास्तुवेद्युपरि वस्त्रे कुंकुमादिना सुवर्णादिशलाकया पश्चादारभ्य प्रागन्ता उदक्संस्थाः समा अङ्गुलद्वयान्तराला दश रेखाः कुर्यात् (वि० प्र० ५।१७।१८) तन्मन्त्राः क्रमेण-(वि० प्र० १६-२१) ।

ॐ शान्तायै नमः	१	ॐ सत्यै नमः	६
ॐ यशोवत्यै नमः	२	ॐ सुमत्यै नमः	७
ॐ कान्तायै नमः	३	ॐ नन्दायै नमः	८
ॐ विशालायै नमः	४	ॐ सुभद्रायै नमः	९
ॐ प्राणवाहिन्यै नमः	५	ॐ सुरथायै नमः	१०

अथ दक्षिणारम्भा उदगन्ताः प्राक्संस्थाः दशरेखाः कार्याः—तत्र मन्त्राः ।

ॐ हिरण्यायै नमः	१	ॐ प्रियायै नमः	६
ॐ सुव्रतायै नमः	२	ॐ जयायै नमः	७
ॐ लक्ष्म्यै नमः	३	ॐ कलायै नमः	८
ॐ विभूत्यै नमः	४	ॐ विशोकायै नमः	९
ॐ विमलायै नमः	५	ॐ इडायै नमः	१०

---

(१) "ईशान्यां चतुरस्रां चतुरङ्गुलमुच्छ्रितां हस्तमानां वेदिं कृत्वा" (आश्व० गृ० प०) इति सूत्राद्वास्तुवेदिः चतुरस्रा चतुरङ्गुलोच्छ्रिता हस्तमाना कार्या । शान्तिसार-शान्तिकमलाकर-मयूखकारादिभिः सर्वैः परिशिष्टवचनमनुसृत्य ईशान्यामेव वास्तुवेदिकरणमुक्तम् । "गर्त्तस्योत्तरपूर्वेण स्थण्डिलं हस्तमात्रकम् । द्विवप्रं चतुरस्रं च वितस्त्युच्छ्रायसम्मितम्" इति पूजार्थवेदिनिर्माणस्य ईशान्यामुक्तेश्च । सर्वशान्तिकपौष्टिकानां नवग्रहमखवि-कृतित्वेन वास्तुशान्तेरपि ग्रहमखविकृतित्वादीशान्यामेव वास्तुवेदिकरणं युक्तम् । पूर्वतो वेदिकरणं तु निर्मूलमेव । ग्रहवेदिश्च वास्तुवेदितो दक्षिणतः कार्या, वास्तुवेदिश्च तदुत्तरतः । ग्रहाणां पूर्वाङ्गत्वात् प्राक्पूजनीयत्वेन पश्चाद्रुद्रपूजाया उदक्संस्थत्वापेक्षणात् । अत एव-"अथ प्रधानादपि यत्र पूर्वं ग्रहाधिवासश्च तदा प्रधानम् । ईशानदेशे च, ततस्त्ववाच्यां श्रीखेऽष्टवेदिः कर-विस्तृतोच्चा" इति कुण्डरत्नावल्यामुक्तम् । भट्टकृतमहारुद्रपद्धतौ च-"महारुद्र-वास्तुशान्त्यादौ प्रधानमीशान्यां तद्दक्षिणे ग्रहा इत्युक्तम् । "अवाङ्मुखो निपतित ईशान्यां दिशि संस्थित" इति (४।३) विश्वकर्मप्रकाशवचनमप्यत्रानुकूलमिति ।

(२) "वास्तुमण्डलकोणेषु ईशानादिक्रमेण च । शङ्कूनां रोपणं शस्तं प्रादक्षिण्येन मार्गतः" (वि० प्र० ९।१३) इति वचनात् "कुर्याद् वेदिं हस्तमितां चतुरस्रामुदक्प्लवाम् । तदीशानादि कोणेषु लोहकीलान् निवेशयेत" इत्युक्तेश्च ईशानादितः शङ्कुरोपणम् । "स्तम्भोच्छ्राये

ईशानकोणपदादारभ्य प्रदक्षिणक्रमेण तण्डुलपुञ्जेषु पूगीफलेषु वा (१) शिख्यादि पञ्चचत्वारिंशद्देवताः स्वस्वपदेषु प्रणवव्याहृतिभिस्तत्तन्नाम्ना (२) आवाह्य स्थापयेत् ॐ तमीशानम् (३) आवाहयाम्यहं देवं रक्तवर्णं सुशोभनम् । शिखिनं ज्वलनप्रख्यं नागहारविभूषितम् ॥ १ ॥ ईशानकोणपदे रक्तवर्णं वास्तोः शिरसि ॐ भू० शिखिने नमः ॥ १ ॥ ॐ महाँ २ इन्द्रः० (४) आवाहयाम्यहं देवं पर्जन्यं पीतवर्णकम् । चतुर्वक्त्रं महौजस्कं चतुर्बाहुविभूषितम् तद्दक्षिणपदे दक्षिणनेत्रे पीतवर्णं ॐ भू० पर्जन्याय० ॥ २ ॥ ॐ धन्वना गा० (५) आवाहयाम्यहं देवं जयन्तं भुवनेश्वरम् पीतवर्णं महान्तं च खड्गखेटकधारिणम् ॥ तद्दक्षिणपदे तदधःपदे च दक्षिणश्रोत्रे द्विपदे पीतवर्णं ॐ भू० जयन्ताय० ॥ ३ ॥

ॐ महाँ २ इन्द्रो० (६) "आवाहयाम्यहं देवं महेन्द्रं च महाप्रभुम् । पीतवर्णं महाघोरं वज्रपाणिं सुरेश्वरम्" । तद्दक्षिणपदद्वये दक्षिणांसे पीतवर्णं ॐ भूः कुलिशायुधाय ॥ ४ ॥ ॐ सूर्यरश्मि० (७) आवाहयाम्यहं देवमादित्यं दिव्यतेजसम् । द्विभुजं च सहस्रांशुं सूर्याय० ॥ ५ ॥ ॐ व्रतेन दीक्षाम्० (८) आवाहयाम्यहं देवं सत्यं सत्यैकदेवतम् । शुक्लाभं शुक्लवर्णञ्च शुक्लमालावि-

---

शिलान्यासे सूत्रयोजन-कीलके । खननेऽत्रटसंकारे प्रारम्भो वन्हिगोचर" इति वचनादाग्नेयादित इति केचित । शङ्कवश्च सारदारुमया इति श्लोकशुल्वे ।"कुर्याद्वेदिम्" इत्युक्तवचनाल्लोहमया वा इत्यपि जीर्णसंप्रदायः ।

(१) वास्तुदेवतास्थापने शिख्यादिक्रमः "शिखी चैवाथ पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः" इत्यादिना (मत्स्यपुराणे) उक्तः । आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टेऽपि—"ब्राह्मणमादितः कृत्वाऽदित्यन्तमेके" इति शिख्यादिक्रममुक्त्वा उक्तम् । अत एवात्र एकग्रहणात् ब्रह्मादिक्रमेऽनादरता प्रदर्शिता । मयूखशान्तिसार—शान्तिकमलाकरादिभिरपि अयमेव क्रमोऽङ्गीकृतः । शारदातिलके परं "ब्रह्माणं पूजयेदादौ" इत्यादिना ब्रह्मादिक्रम उक्तः ।

(२) वास्तुपूजनं वेदमन्त्रैर्नाममन्त्रैः समुच्चितैः प्रणवव्याहृतियुतैः "ॐ भूर्भुवः स्वः शिखिने नमः" इत्याकारकैर्विधेयम् "शिख्यादिपञ्चचत्वारिंशद्देवांस्तत्र प्रपूजयेत् । वेदमन्त्रैर्नाममन्त्रैः प्रणवव्याहृतिभिस्तथा (५।१०) इति विश्वकर्मप्रकाशे वचनात् ।

(३, ॐ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये २५।१८।

(४) ॐ महाँऽ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ।

(५) ॐ धन्वना गा धन्वनाऽऽजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम । धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ।

(६) ॐ महाँ इन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु । हन्तु पाप्मानं योऽस्मान् द्वेष्टि ।

(७) ॐ सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँऽ अजस्रम् । तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्सम्पश्यन् विश्वा भुवनानि गोपाः ।

(८) ॐ व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम् । दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ।

भूषितम् । तद्दक्षिणपदद्वये दक्षिणप्रवाहौ शुक्लवर्णं ॐ भूः सत्याय० ॥ ६ ॥ ॐ भद्रं क० (१) । आवाहयाम्यहं देवं भृशं च परमेश्वरम् । कृष्णाब्जं नीलकण्ठञ्च चतुर्बाहुं सुरेश्वरम् ॥ तद्दक्षिणपदद्वये दक्षिणकूर्परे कृष्णवर्णं ॐ भूः भृशाय ॥ ७ ॥ ॐ व्वय ठं० सोम० (२) । आवाहयाम्यहं देवमाकाशञ्च महाबलम् । शब्दब्रह्मपरं देवं हैमञ्च कृष्णसन्निभम् । तद्दक्षिणोपरिस्थितैकपदे— दक्षिणप्रवाहौ कृष्णवर्णं ॐ भूः आकाशाय ॥ ८ ॥

ॐ आवायो० (३) । आवाहयाम्यहं देवं देवदेवं महाजवम् । जगद्रूपं जगद्व्याघ्रं स्थितिसंहारकारकम् ॥ दक्षिणाग्नेयकोणपदे दक्षिणप्रवाहौ धूम्र-वर्णे—ॐ भु० वायवे नमः ॥ ९ ॥ ॐ पूषन्तव० (४) । आवाहयाम्यहं देवं पूषणं महसाम्पदम् । जगन्नेत्रं महान्तञ्च स्थितिसंहारकारकम् ॥ तत्पश्चिमैकपदेदक्षिण-मणिबन्धे रक्तवर्णं ॐ भूः पूष्णे नमः ॥ १० ॥ सविता प्रथमे (५) आवाहयाम्यहं देवं वितथं दिव्यतेजसम् । ब्रह्मरूपं जगन्नाथं चतुर्वक्त्रं प्रजापतिम् ॥ तदधः द्विपदे-दक्षिणपार्श्वे शुक्लवर्णं ॐ भू० वितथाय ॥११॥ ॐ सविता त्वा (६) । आवा-हयाम्यहं देवं पीतवर्णं गृहक्षतम् । कमलाक्षं चतुर्बाहुं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम् । तत्पश्चिमपदद्वये दक्षिणपार्श्वे पीतवर्णं ॐ भूः गृहक्षताय नमः ॥ १२ ॥ ॐ यमाय त्वा० (७) । अहमावाहयिष्यामि यमं महिषवाहनम् । ऊर्ध्वकेशं विरूपाक्षं भैरवं रक्तलोचनम् ॥ तत्पश्चिमपदद्वये-दक्षिणोरौ-कृष्णवर्णं ॐ भूः यमाय० ॥१३॥ ॐ प्र तद्वोचे० (८) । अहमावाहयिष्यामि गन्धर्वगणशोभितम् । गीतनृत्यसमायुक्तं सुगन्धकुसुमान्वितम् ॥ तत्पश्चिमपदद्वये-दक्षिणजानुप्रदेशे रक्तवर्णं ॐ भूः गन्धर्वाय ॥ १४ ॥

---

(१) ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।

(२) ॐ व्वय ँ सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ।

(३) ॐ आ वायो भूष शुचिपा उपनः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार । उपो तेऽ अन्धौं मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं व्वायवे त्वा ।

(४) ॐ पूषन्तव व्व्रते व्वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त ऽइह स्मसि ।

(५) ॐ सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये व्वायुस्तृतीयऽ आदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः पञ्चमऽ ऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे । मित्रो नवमे व्वरुणो दशमऽ इन्द्रऽ एकादशे व्विश्वे देवा द्वादशे ।

(६) ॐ सविता त्वा सवाना ँ सुवतामग्निर्गृहपतीना ँ सोमो व्वनस्पतीनाम् । बृहस्पतिर्व्वाच ऽइन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो व्वरुणो धर्मपतीनाम् ।

(७) ॐ यमाय त्वाऽङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा । स्वाहा घर्माय स्वाहा घर्मः पित्रे ।

(८) ॐ प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत् । त्रीणि पदानि निहिता गुहाऽस्य यस्तानि व्वेद स पितुः पिताऽसत् ।

(१) ॐ सुपर्णः पार्ज्जन्यः० । आवाहयाम्यहं देवं भृङ्गं च परमेश्वरम् । कृष्णाङ्गं नीलकण्ठञ्च चतुर्बाहुं महद्युतिम् ॥ तत्पश्चिमपदद्वये दक्षिणजंघायां कृष्णवर्णे ॐ भूः भृङ्गराजाय ॥१५॥ ॐ तद्विष्णोः (२) प० १६। अहमावाहयिष्यामि मृगं च परमेश्वरम् । सुवर्णाभं नीलकण्ठं चतुर्बाहुं सुशोभनम् ॥ तत्पश्चिमोपरिस्थैकपदेदक्षिणस्फिचि-पीतवर्णे-ॐ भूः मृगाय नमः ॥१६॥ ॐ पितृभ्यः स्व० (३) अहमावाहयिष्यामि पितरञ्च सुधाकृतिम् । उद्दीप्य लोके तिष्ठन्तं चन्द्रार्कसदृशद्युतिम् ॥ तत्पश्चिमे नैर्ऋत्यकोणपदे-पादयोः रक्तवर्णेषु ॐ भूः पितृभ्यो नमः ॥ १७ ॥ ॐ द्रविणोदाः पि० (४) आवाहयाम्यहं देवं विभुं दौवारिकं तथा । जीवरूपं त्वयैकेन यदिदं धार्यते जगत् ॥ तदुत्तरैकपदे-वामस्फिचि रक्तवर्णे ॐ भूः दौवारिकाय नमः ॥१८॥ ॐ सुषुम्णः सूर्यः० (५) । अहमावाहयिष्यामि सुग्रीवं शुक्लवर्णकम् । पिङ्गनेत्रं महास्थूलं भैरवं तीक्ष्णदंष्ट्रकम् । तदुत्तरपदे तत्प्राक्पदे च वामजङ्घायां-शुक्लवर्णे-ॐ भूः सुग्रीवाय नमः ॥ १९ ॥

(६) ॐ नक्षत्रेभ्यः स्वाहा० । अहमावाहयिष्यामि पुष्पदन्तं सुशोभनम् । रक्ताभं रक्तवर्णञ्च रक्तमालाविभूषितम् ॥ तदुत्तरपदद्वये वामजानौ रक्तवर्णे० । ॐ भूः पुष्पदन्ताय नमः ॥ २० ॥ ओं इमम्मे० (७) । आवाहयाम्यहं देवं वरुणं कमलेक्षणम् । शुक्लाम्बरधरं देवं शुक्लमालाविभूषितम् ॥ तदुत्तरपदद्वये-वामोरौ शुक्लवर्णे ओं भूः वरुणाय नमः ॥ २१ ॥ ओं ये रूपाणि० (८) । आवाहयाम्यहं देवमसुरञ्च मरुत्प्रियम् । पीतरक्तं महारौद्रमसुरं दैत्यमङ्गलम् ॥ तदुत्तर

---

(१) ॐ सुपर्णः पार्जन्यऽ आतिर्व्वाहसो दर्व्विदा ते व्वायवे बृहस्पतये व्वाचस्पतये पङ्गराजोऽलजऽ आन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः ।

(२) ॐ तद्विष्णोः परमं पदँ० सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुरा ततम् ।

(३) ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । अक्षन्पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम् ।

(४) ॐ द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ।

(५) ॐ सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम । स नऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा व्वाट् ताभ्यः स्वाहा ।

(६) ॐ नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाऽहोरात्रेभ्यः स्वाहाऽर्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहाऽऋतुभ्यः स्वाहार्तवेभ्यः स्वाहा संव्वत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याँ स्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा व्वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहाऽऽदित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा व्विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा व्वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ।

(७) ॐ इमं म्मे व्वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके ।

(८) ॐ ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाऽ असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति । परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टांल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात्

पदद्वये-वामपार्श्वे पीतवर्णे-ओं असुराय० ॥ २२ ॥ ओं असवे स्वाहा० (१)। अहमावाहयिष्यामि शोषं च कृष्णवर्णकम्। रक्ताम्बरं विशालाक्षं यज्ञमूर्त्तिं सुरेश्वरम् ॥ तदुत्तरपदद्वये-वामपार्श्वे कृष्णवर्णे- ओं भूः शोषाय० ॥ २३ ॥ ओं सूर्य्यरश्मि० (२)। अहमावाहयिष्यामि पापं यक्ष्माणमेव च। पापरूपं पीतवर्णं पापकर्मरतं सदा ॥ तदुत्तरोपरिस्थैकपदे वाममणिबन्धे पीतवर्णे-ओं भूः पापाय नमः॥ २४ ॥ ओं शिरो मे० (३)। अहमावाहयिष्यामि रोगं रोगेण सन्निभम्। रक्ताक्षं रक्तवर्णं च रक्तमालाविभूषितम् ॥ तदुत्तरे वायव्यकोणपदे वामप्रबाहौ रक्तवर्णे ओं भूः रोगायनमः ॥ २५ ॥

(४) ॐ नमोस्तु सर्पे०। अहमावाहयिष्यामि अनन्तं वासुकिन्तथा। कालं कर्कोटकं चैव कुण्डलीकृष्णपिङ्गलम् ॥ तत्प्रागेकपदे वामप्रवाहौ रक्तवर्णे—ॐ भूः अहये नमः ॥ २६ ॥ ॐ इषे त्वोर्ज्जे० (५)। अहमावाहयिष्यामि मुख्यं देवं महाबलम्। अरुणश्मश्रुकेशान्तं त्रिनेत्रं चैव षड्भुजम् ॥ तत्प्राक्पदे ततोऽपि दक्षिणे चेति पदद्वये रक्तवर्णे ॐ भूः मुख्याय नमः ॥ २७ ॥ ॐ वण्महाँऽ असि० (६)। अहमावाहयिष्यामि भल्लाटं धूम्रलोचनम्। कृष्णवर्णं विशालाक्षं यज्ञ-कर्तुर्वरप्रदम् ॥ तत्प्राक् पदद्वये वामबाहौ कृष्णवर्णे ॐ भूः भल्लाटाय नमः ॥ २८ ॥ ॐ व्वयर्ठ० सोम० (७)। अहमावाहयिष्यामि सोमं च सौम्यदैवतम्। अमृत-स्राविणं देवं सर्वं लोकोपकारकम् ॥ तत्प्राक्पदद्वये श्वेतवर्णे ॐ भूः सोमाय० ॥ २९ ॥ ॐ उदु त्यं० (८)। आवाहयाम्यहं देवमुरगं रत्नभूषितम् ॥ तत्प्राक्-

---

(१) ॐ असवे स्वाहा व्वसवे स्वाहा व्विभुवे स्वाहा व्विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहा ऽभिभुवे स्वाहाऽधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा सर्ठ० सर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतये स्वाहा।

(२) ॐ सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ अजस्रम्। तस्य पूषा प्रसवे याति व्विद्वान्त्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः।

(३) ओं शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि। राजा मे प्राणोऽ अमृतर्ठ० सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोम्।

(४) ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु। येऽ अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः।

(५) ॐ इषे त्वोर्जे त्वा व्वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽ आप्यायध्वमघ्न्याऽ इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽ अयक्ष्मा मा व स्तेनऽ ईशत माऽघशर्ठ० सो ध्रुवाऽ अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि।

(६) ॐ वण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँऽ असि। महस्ते सतो महिमा पनस्य-तेऽद्धा देव महाँऽ असि।

(७) ॐ व्वयर्ठं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः। प्रजावन्तः सचेमहि।

(८) ॐ उदु त्यं जातवेदसं देवं व्वहन्ति केतवः। दृशे व्विश्वाय सूर्यम्।

पदद्वये वामांसे कृष्णवर्णे वर्षाय० ॥ ३० ॥ ॐ उत नो० (१)। अहमावाहयिष्यामि अदितिञ्च सुरेश्वरीम् । मातरं सर्वदेवानां पीतवर्णां सुशोभनाम् ॥ तत्प्राक्पदद्वये वामश्रोत्रे पीतवर्णे ॐ भूः अदितये नमः ॥ ३१ ॥

ॐ अदितिर्द्यौ० (२) अहमावाहयिष्यामि दितिं चैव सुरेश्वरीम् । पीतवर्णां महाकायां सर्वदानवमातरम् ॥ तत्प्रागेक पदे वामनेत्रे पीतवर्णे ॐ भूः दित्यै नमः ॥ ३२ ॥ ततः शिखिपदाधःस्थितकोणपदे मुखे शुक्लवर्णे ॐ आपो अस्मान्० (३)। अहमावाहयिष्यामि आपो याः स्फटिकप्रभाः । कर्पूरसदृशाः सौम्याः क्षीरोदकपरिप्लुताः ॐ भूः अद्भ्यो नमः ॥ ३३ ॥ आग्नेये वायुकोणपदाधःकोणपदे दक्षिणहस्ते शुक्लवर्णे ॐ उपया० सावित्रोऽसि० (४) सावित्रं स्वर्धुनीलोके विमलं च गजाननम् । एकाक्षरं शिवं सौरिं सवितारं महेश्वरम् ॥ ॐ भूः सावित्राय० ॥ ३४ ॥ नैर्ऋत्ये पितृपदाधः कोणपदे मेढ्रे श्वेतवर्णे ॐमर्माणि ते० (५) आवाहयाम्यहं देवं जयं देवेन्द्रपूजितम् । विद्युद्ध्वजनिभवं भीमजवं हि विजयप्रभुम् ॥ ॐ भूः जयाय नमः ॥ ३५ ॥ वायव्ये रोगपदाधः कोणपदे वामहस्ते रक्तवर्णे ॐ सुत्रामाणं० (६)। आवाहयाम्यहं देवं रुद्रञ्च जगतः प्रभुम् । चतुर्भुजं वृषारुढं सर्वलोकनमस्कृतम् । ॐ भूः रुद्राय नमः ॥ ३६ ॥ ततो मध्यगतनवकोष्ठकसंलग्नपूर्वपदत्रये दक्षिणस्तने कृष्णवर्णे ॐ अर्यमणं० (७)। आवाहयाम्यर्यमणमहं देवं त्रिलोचनम् । वनस्पतिसमाकारं कृष्णवर्णं महाप्रभुम् ॐ भूः अर्यम्णे नमः ॥ ३७ ॥

तद्दक्षिणाग्नेयकोणपदे दक्षिणहस्ते रक्तवर्णे ॐ उपया० सावित्रो० (८) ॐ सावत्रे नमः । आवाहयाम्यहं देवं सवितारं दिवाकरम् । सप्ताश्वरथसंयुक्तं

---

(१) ॐ उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज ऽएकपात्पृथिवी समुद्रः । व्विश्वे देवाऽ ऋतावृधो हुवाना स्तुता मन्त्राः कविशस्ताऽ अवन्तु ।

(२) ओं अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः । व्विश्वे देवाऽ अदितिः पञ्च जनाऽ अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ।

(३) ओं आपोऽ अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु । व्विश्वᳬं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूतऽ एमि ।

(४) ओं उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनोधाऽ असि चनो मयि धेहि । जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे ।

(५) ओं मर्माणि ते व्वर्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजाऽमृतेनानु वस्तान् । उरोर्वरीयो व्वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वाऽनु देवा मदन्तु ।

(६) ओं सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसᳬं सुशर्माणमदितिᳬं० सुप्रणीतिम् । दैवी नावᳬं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ।

(७) ओं अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय । व्वाचं व्विष्णुᳬं सरस्वतीᳬं सवितारं च व्वाजिनᳬं स्वाहा ।

(८) ओं उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनोधाऽ असि चनो मयि धेहि । जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे ।

तमोवृन्दनिवारणम् ॥ ३८ ॥ तदधः पश्चिमपदत्रये जठरदक्षिणभागे शुक्लवर्णे ॐ विवस्वन्ना० (१)। अहमावाहयिष्यामि विवस्वन्तं महाबलम्। रक्तनेत्रं विशालाक्षं यज्ञमूर्त्तिं सुरेश्वरम् ॥ ॐ भूः विवस्वते० ॥ ३९ ॥ तत्पश्चिमनैर्ऋत्यकोणपदे वृषणयोः रक्तवर्णे--ॐ इन्द्रः सुत्रामा० (२) । अहमावाहयिष्यमि विबुधाधिपतिं प्रभुम् । नाकाधिपं सहस्राक्षं खड्गखेटकधारिणम् ॥ ॐ विबुधाधिपायनमः ॥४०॥ तदुत्तरपदत्रये जठरवामभागे श्वेतवर्णे ॐ तन्मित्रस्य० (३) । अहमावाहयिष्यामि मित्रं चारुणसन्निभम् । वज्रहस्तं सुरश्रेष्ठं यज्ञकर्मवरप्रदम् ॥ ॐ भूः मित्राय० ॥४१॥ तदुत्तरैकपदे वामहस्ते श्वेतवर्णे ॐ अभि गोत्राणि० (४) । आवाहयामि तं देवं द्विभुजं राजयक्ष्मणम् ॥ धनुर्वाणसमायुक्तं यज्ञकर्मवरप्रदम् । ॐ भूः राजयक्ष्मणे नमः ॥४२॥ तत्प्राक्पादत्रये वामस्तने रक्तवर्णे ॐ पृथिवीच्छन्दः० (५) । पृथ्वीधरं महत्तेजः स्फटिकच्छविमीश्वरम् । भूतनाथं महाकायं देवमावाहयाम्यहम् ॐ भूः पृथ्वीधराय० ॥४३॥ तत्प्रागीशानकोणपदे उरसि शुक्लवर्णे ॐ आ ते वत्सो० (६) अहमावाहयिष्यामि आपवत्सं महाप्रभुम् । कर्पूरसदृशं सौम्यं क्षीरोदपरिपूरितम् ॥ ॐ भूः आपवत्साय नमः ॥४४॥ मध्ये नवपदे हृदये नाभौ च अष्टदले ॐ आ ब्रह्मन्० (७) सर्वदेवप्रधानञ्च सर्वकामफलप्रदम् । अग्रतः सर्वसम्पूज्यं प्रारम्भे यज्ञकर्म्मणि ॥ ॐ भूः ब्रह्मणे नमः ॥४५॥ ईशान्यां धूम्रवर्णायाम् ॐ ईशा व्वास्यम्० (८) ॐ भूः चरक्यै० ॥१॥ आग्नेय्यां रक्तवर्णायाम् ॐ अग्निंदूतम् भूः ॐ विदार्यै० ॥२॥ नैर्ऋत्यां

---

(१) ॐ विवस्व- न्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन्मत्स्व । श्रदस्मै नरो व्वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती व्वाममश्नुतः । पुमान्पुत्रो जायते विन्दते व्वस्वधा व्विश्वाहाऽरप ऽएधते गृहे ।

(२) ॐ इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु व्विश्ववेदाः । व्वाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्य्यस्य पतयः स्याम ।

(३) ॐ तन्मित्रस्य व्वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणते द्योरुपस्थे । अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः संभरन्ति ।

(४) ॐ अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो व्वीरः शतमन्युरिन्द्रः । दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकꣳ सेनाऽ अवतु प्र युत्सु ।

(५) ॐ पृथिवी च्छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि च्छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजा च्छन्दोऽश्वश्छन्दः ।

(६) ॐ आ ते व्वत्सो मनो यमत्परमा चित्सधस्थात् । अग्ने त्वाङ्कामया गिरा ।

(७) ॐ आ व्ब्रह्मन्-ब्राह्मणो व्ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य व्वीरो जायतां निकामेनिकामे नः पर्जन्यो व्वर्षतु फलवत्योऽ नऽ ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ।

(८) ॐ ईशा व्वास्यमिदꣳ० सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।

पीतहरितवर्णायां ओं नमः स्रुत्याय० (१) ओं भूः पूतनायै० ॥३॥ वायव्ये कृष्णवर्णायाम् वायव्यै वा० (२) ओं भू, पापराक्षस्यै० ॥४॥ पूर्वे रक्तवर्णे ओं यत्र बाणाः सं० । (३) ओं भूः स्कन्दाय० ॥१॥ तद्दक्षिणे कृष्णवर्णे अर्यमणम्० ओं भूः अर्यम्णे० (४) ॥२॥ पश्चिमे रक्तवर्णे ओं सरोभ्यो० (५) ओं भूः जृम्भकायन० ॥३॥ उत्तरे वर्णे ओं का स्विदासी० (६) ओं भूः पिलिपिच्छाय ॥ ४ ॥ ईशा० रक्तवर्णे यमाय त्वा (७) भीमरूपाय नमः ॥१॥

अग्निकोणे कृष्णवर्णे त्र्यम्बकं० (८) त्रिपुरारये० २ ॥ नैर्ऋत्ये पीतवर्णे ॐ असुन्वन्त० (९) अग्निजिह्वाय० ॥३॥ वायव्ये ओं वातो वा० (१०) रक्तवर्णे करालाय ॥४॥ पूर्वे हेतुकाय० ओं हेमन्तेन ऋ० (११) कृष्णवर्णे दक्षिणे कृष्णे अग्नि-वेतालकाय० ओं अग्निं दूतम् (१२) । पश्चिमे कृष्णे ओं वरुणस्योत्तम्भनम् (१३) ।

---

(१) ॐ नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कूल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च व्वैशन्ताय च ।

(२) ॐ व्वायव्यैर्व्वायव्यान्याप्नोति स तेन द्रोणकलशम् । कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभि स्थालीराप्नोति ।

(३) यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा व्विशिखाऽइव । तन्नऽ इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु व्विश्वाहा शर्म यच्छतु ।

(४) ॐ अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय । व्वाचं व्विष्णु ꣳ० सरस्वती ꣳ सवितारं च व्वाजिनꣳ० स्वाहा ।

(५) ॐ सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं व्वैशन्ताभ्यो व्वैन्दंन्न ड्वलाभ्यः शौष्कलं पाराय मार्गारमवाराय केवर्तं तीर्थेभ्यऽ आन्दं विषमेभ्यो मैनाल ꣳ स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातꣳ० सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किंपूरुषम् ।

(६) ॐ का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किꣳ स्विदासीद् बृहद्वयः । का स्विदासीत्पि-लिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ।

(७) ॐ यमाय त्वाऽङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा । स्वाहा घर्माय स्वाहा घर्मः पित्रे ।

(८) ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ।

(९) ॐ असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य । अन्यमस्मदिच्छ सा तऽ इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ।

(१०) ॐ वातो वा मनो वा गन्धर्व्वाः सप्तविꣳ० शतिः । तेऽ अग्रेऽश्वमयुञ्जँस्तेऽ अस्मिन्नवमादधुः ।

(११) ॐ हेमन्ते न ऋतुना देवास्त्रिणवे मरुतस्तुताः । बलेन शक्करीः सहो हविरिन्द्रे व्वयो दधुः ।

(१२) ॐ अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे । देवाँ आसादयादिह ।

(१३) ॐ व्वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो व्वरुणस्यऽ ऋतसदन्यसि व्वरुणस्य ऋतसदनमसि व्वरुणस्य-ऋतसदनमासीद ।

उत्तरे ओं कुविदङ्ग० (१) पीतवर्णं० ईशानपूर्वयोर्मध्ये गन्धमाल्याय. ओं गन्धद्वारां० (२) ज्वालास्याय० ओं महीद्यौः । बाह्यदेवताः प्रासादे ताः प्रपूजयेत् । इन्द्रादीन् दश दिक्पालांश्च पूजयेत् ।

१ ॐ तमीशानं० शिखिने नमः
२ ॐमहाँ इन्द्रः० पर्जन्याय नमः
३ ॐ धन्वना गाः० जयन्ताय नमः
४ ओं महाँ इन्द्रो य० कुलिशायुधाय नमः
५ ओं सूर्यरश्मि० सूर्याय नमः
६ ओं व्रतेन दीक्षाम्० सत्याय नमः
७ ओं भद्रं कर्णेभिः० भृशाय नमः
८ ओं वषट्‌ते० सोम० आकाशाय नमः
९ ओं आ वायो भूष० वायवे नमः
१० पूषन्तव० पूष्णे नमः
११ सविता प्रथ० वितथाय नमः
१२ सविता त्वा स० गृहक्षताय
१३ यमाय त्वा यमाय नमः
१४ प्र तद्वोचेद्० गन्धर्वाय०
१५ सुपर्णः पार्जन्यः० भृङ्गराजाय०
१६ तद्विष्णोः प० मृगाय नमः
१७ पितृभ्यः स्व० पितृभ्यो नमः
१८ द्रविणोदाः पि० दौवारिकाय
१९ सुषुम्णः सूर्य० सुग्रीवाय नमः
२० नक्षत्रेभ्यः स्वा० पुष्पदन्ताय०
२१ इमम्मे व० वरुणाय नमः
२२ ये रूपाणि० असुराय नमः
२३ असवे स्वा० शोषाय नमः
२४ सूर्यरश्मिर्ह० पापाय नमः
२५ शिरो मे० रोगाय नमः
२६ नमोऽस्तु स० अहये नमः
२७ इषे त्वोर्जे० मुख्याय नमः
२८ वयमहाँ अ० भल्लाटाय०
२९ वषट्‌ते० सोम० सोमाय०
३० उदु त्यम्० सर्पाय नमः
३१ उतनोऽहि० अदितये०
३२ अदितिर्द्यौ० दितये नमः
३३ आपो अस्मान्० अद्भ्यो नमः
३४ उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि० सावित्राय०
३५ मर्माणि ते० जयाय नमः
३६ सुत्रामाणं पृ० रुद्राय नमः
३७ अर्यमणं बृ० अर्यम्णे
३८ उप० सावित्रो० सवित्रे नमः
३९ विवस्वन्ना० विवस्वते०
४० इन्द्रः सुत्रामा विबुधाधिपा म०
४१ तन्मित्रस्य० मित्राय नमः
४२ अग्निगोत्राणि० राजयक्ष्मणे०
४३ पृथिवी छन्दः, पृथिवीधराय०
४४ आ ते वत्सो आपवत्साय०
४५ आ ब्रह्मन्० ब्रह्मणे नमः
१ ईशा वास्यम्० चरक्यै नमः
२ अग्निं दू० विदार्यै०
३ नमः सुत्या० पूतनायै०
४ वायव्यैर्वा० पापराक्षस्यै०
१ यत्र बाणाः, स्कन्दाय०
२ अर्यमणं० अर्यम्णे०
३ सरोभ्यो धै० जृम्भकाय०
४ का स्विदा० पिलिपिच्छाय

इति मन्त्रैः ।

---

(१) ॐ कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय । इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमउक्तिं यजन्ति ।

(२) ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ।

(१) ततो वास्तुमण्डलमध्ये कलशं संस्थाप्य (२) तत्र वरुणमावाह्य वास्तोष्पतिमूर्त्तेः (३) स्थापनं 'वास्तोष्पत इति पूजनं च (४)। प्रार्थना-'यथा मेरुगिरेः शृङ्गं देवानामालयः सदा। तथा ब्रह्मादिदेवानां मम गेहे स्थिरो भव' इति । वेद्यां वितान बन्धनम् । अथ दक्षिणतो ब्रह्माणमुपवेश्य अग्नेरुत्तरतः प्रणीतातोऽतिरिक्तमुदपात्रं प्रतिष्ठाप्य (पार० गृ० ३।४५ कर्क) प्रणीताप्रणयनं विधाय परिस्तरणादि-कुशकण्डिकापूर्वकं चरुं (स्थालीपाकं) श्रपयित्वा प्रोक्षण्युत्पवनान्ते आघारादिहोमात्प्राक् (पा० ३।४।५ क० हरि०) बहिर्निष्क्रम्य द्वारसमीपे गृहाभिमुखः स्थित्वा "ब्रह्मन् प्रविशामि" इति ब्रह्माणं पृच्छेत् यजमानः । "ओं प्रविश" इति ब्रह्मणाऽनुज्ञातः "ओं ऋतं प्रपद्ये शिवं प्रपद्ये" इति मन्त्रेण शालां प्रविश्य स्वासने उपविश्य उपयमनकुशानादाय तिष्ठन् समिधोऽभ्याधाय अग्निं पर्युक्ष्य पवित्रे प्रणीतासु निधाय दक्षिणं जान्वाच्य 'इह रतिरिति षट् आहुतीराज्येन जुहुयात् (पार० ३।४।७ कर्क० हरि०) (५)।

---

(१) "ब्रह्मस्थाने ततो विद्वान् कुर्यादाधारमक्षतैः । तस्मिन् संथापयेत्कुम्भं वर्द्धन्या सह पूरितम् " इति वास्तुयागतत्त्वे वचनात् । विश्वकर्मप्रकाशे तु—" कलशे स्थापयेद्देवं वरुणं वारुणैस्ततः " (६।१७०) इत्यादिना कलशस्थापनमुक्तं, स्थानं नोक्तम् । तत्र सामान्यनियमात् ईशान्यां तत्स्थापनमिति पद्धतिकाराः ।

(२) कलशे सर्वौषध्यादिप्रपेक्षणानन्तरं द्रव्यविशेषाः प्रक्षेप्या उक्ता वास्तुशान्तौ, ते यथा—" वटोर्वटोदुम्बरस्य वेतसस्य तथैव च । अश्वत्थस्यैव मूलं च पञ्च काषायकाः स्मृताः । तुलसी सहदेवो च विष्णुक्रान्ता शतावरी । मूलान्येतानि गृह्णीयाच्छतालाभे विशेषतः " वि० प्र० ६।१०४-१०६ इति ।

(३) वास्तुमूर्तिः सर्पाकारा कार्या—" इति प्रार्थ्य ततो भूमौ संलिखेद्वास्तुपुरुषम् । पिष्टातकैस्तण्डुलैर्वा नागरूपधरं विभुम् " इति (वि० प्र० १अ७) वचनात् । " गृहवास्तुं प्रवक्ष्यामि येन देवमयो भवेत् । ईशानादि निर्ऋत्यन्तं वास्तुः सर्पः प्रकीर्तितः " इति प्रतिष्ठा सरणौ सङ्गमशक्तितन्त्रधृतवचनाच्च ।

(४, अत्र वास्तुदेवतापूजन-बलिदान-होम-प्रतिमानिखननान्तः परिशिष्टाद्युक्तो मुख्यः पक्षः । प्रतिमानिखननरहितो मात्स्योक्तो मध्यमः । पूजाबलिदानमात्रः शारदोक्तः कनिष्ठः । न च मतभेदात्सर्वेऽपि मुख्यकल्पा एवेति वाच्यम् । "एककर्मणि गुणविशेषे फलविशेषः" (का० श्रौ०) इति न्यायेन समानफलानुत्पत्तेः ।

(५) वास्तोष्पत इति मन्त्रैश्चतुर्भिर्होमः शिख्यादिहोमात्पूर्वमेव कार्य इति युक्तं पश्यामः । अत्र वास्तुशान्तौ वास्तोष्पतिदेवस्य प्रधानत्वात् प्रधानहोमस्य च पूर्वमेव न्याय्यत्वात् । परिशिष्टे—" वास्तोष्पत इति चतसृभिश्चरुणा समित्तिलपायसाज्यैः केवलाज्येन वा हुत्वा होमशेषं समाप्य " (आश्व० प०) इत्युक्तेश्च । पद्धतिकारैस्तु सर्वैः शिख्यादिहोम एव पूर्वमुक्तः । तैः शिख्यादयोऽपि प्रधानत्वेनैवाङ्गीकृताः । शिख्यादिहोमानन्तरं वास्तोष्पत इति चतुर्भिर्मन्त्रैः प्रधानहोमः, ततो बिल्वहोम इति पद्धतिक्रमः । अस्माकं मते तु आदौ प्रधानहोमः ततः शिख्यादिहोमः । ततो बिल्वहोमः । प्रधानहोमश्च प्रतिद्रव्यं प्रतिमन्त्रं वा अष्टादिसङ्ख्यया, शिख्यादिहोमश्चाष्टसंख्यया, सामान्यनियमात् । " होमो

ॐ इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वा० । इदमग्नये नमम १ ॐ उपसृजन् धरुणं मात्रे वरुणो मातरं धयन् । रायस्पोषमस्मासु दीधरत्स्वाहा । इदमग्नये नमम २ ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानी० यत्त्वेमहे० इदं वास्तोष्पतये नमम ३ ॐ वास्तोष्पते प्रतर० रश्वेभिरिन्दो । अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व शं नो भ० इदं वास्तोष्पतये न० ४ । ॐ वास्तोष्पते शग्मया शर्ठ० सदा ते सक्षीम हिरण्वया गातुमत्या । पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यू० ५ (ऋ० ५।४।२१-१-१३) ॐ अमीवहा वा० इदं वास्तोस्पतये० ६ (ऋ० ५।४।१२।१) । अथ ब्रह्मणाऽन्वारब्धः आघारावाज्यभागौ हुत्वा (पार० ३।४।७ हरि०) चरुमभिघार्य स्थालीपाकेन स्रुवेण षड़ाहुतीर्जुहुयात् (पार० ३।४।८) तत्र मन्त्राः—ॐ अग्निमिन्द्रं बृहस्पतिं विश्वांश्च देवानुपह्वये । सरस्वतीं च वाजी च वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वा० इदममग्नये इन्द्राय बृहस्पतये विश्वेभ्यो देवेभ्यः सरस्वत्यै वाज्यै च नमम० १ ॐ सर्वदेवजनान् सर्वान् हिमवन्तर्ठ० सुदर्शनम् । वसूंश्च रुद्रानादित्यानीशानं जगदैः सह । एतान् सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वा० इदं सर्वदेवजनेभ्यो हिमवते सुदर्शनाय वसुभ्यो रुद्रेभ्य आदित्येभ्य ईशानाय जगदेभ्यश्च न० २ ॥

ॐ पूर्वाह्णमपराह्णं चोभौ मध्यन्दिना सह । प्रदोषमर्द्धरात्रं च व्युष्टां देवीं महापथाम् । एतान् सर्वान् प्र० स्वाहा, इदं पूर्वाह्णायाऽपराह्णाय मध्यन्दिनाय अर्धरात्राय व्युष्टायै देव्यै महापथायै च नमम ३ ॐ कर्त्तारं च विकर्त्तारं विश्वकर्माणमोषधींश्च वनस्पतीन् । एतान् सर्वान् प्रपद्येऽहं वा० । इदं कर्त्रे विकर्त्रे विश्वकर्मण ओषधीभ्यो वनस्पतिभ्यश्च न० ४ ॐ धातारं च विधातारं निधीनां च पतिर्ठ० सह । एतान् सर्वा० । इदं धात्रे निधीनां च पतये नमम ५ ॐ स्योनर्ठ० शिवमिदं वास्तु दत्तं ब्रह्मप्रजापती । सर्वाश्च देवताः स्वा० । इदं ब्रह्मणे प्रजापतये सर्वाभ्यो देवताभ्यश्च न० ६ अथ द्रव्यत्यागः—ततो ग्रहहोमं समित्तिल चर्वाज्यैः प्रत्येकं प्रतिद्रव्यमष्टसङ्ख्यया अष्टाविंशत्यादिसङ्ख्यया वा विदध्यात् । ग्रहहोमे चरुहोमो वैकल्पिकः । ततोऽत्र वास्तोष्पतेः प्रधानत्वात् प्रधानान्तरस्येव आदौ होमः । तद्यथा- वास्तोष्पते प्रति जानी० चतुष्पदे स्वाहा० इति चतुर्भिः समित्तिलचर्वाज्यैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतं जुहुयात् । ततः "अघोरेणाथ मन्त्रेण घृतेनाष्टोत्तरं शतम् । जुहुयाद्वास्तुपुंसोऽपि सन्धानार्थन्तु मर्मणाम्" इति-गृह्यकारिकोक्तेः 'अघोरेभ्य' इति मन्त्रेण-

ग्रहादिपूजायां शतमष्टोत्तरं भवेत् । अष्टाविंशतिरष्टौ वा यथाशक्ति विधीयते । अष्टोत्तर सहस्रं वा तत्संख्या परिकीर्तिता " इति वचनात् । अथवा शिख्यादिभ्यो दशदशसंख्यया होमः कार्यः । " इतरान् दशभिर्देवानाहुतिभिः प्रकल्पयेत् " इति वास्तुयागतत्त्वे रघुनन्दन धृतवचनात् । अथवा " वास्तोष्पत इति चतसृभिः प्रत्पृचं हुत्वा " इति सूत्रविहितहोमे सक्तत्संख्या यथा गृह्यते, तद्वदत्रापि सक्तत्संख्यैव ग्राह्या, तेन शिख्यादिभ्यः एकैकाऽहुतिरित्यपि पक्षो बोध्यः ।

आज्येनाष्टोत्तरसङ्ख्यया जुहुयात् । ॐ अघोरेभ्योऽथ० भ्यः स्वा० । अयं होमः प्रधानभूतवास्तुपुरुषमुद्दिश्य विहितः, अतोऽस्यापि प्रधानत्वात् अङ्गहोमस्यादावेव कार्यः । अथ अङ्गदेवताभ्यः शिखादिभ्यो (१) वास्तुमण्डलीयेभ्यः समित्तिलचर्वाज्यानि प्रत्येकं प्रतिद्रव्यमष्टादिसंख्यया जुहुयात् । (शिख्यादीनामष्टसङ्ख्यापत्ते चरक्यादिभ्यः चतुःसंख्यया होममाचरन्ति) । ॐ शिखिने स्वाहा इति नाममन्त्रो वैदिको वा मन्त्रो होमे । ततः वास्तोष्पत इति चतसृभिः ॐ वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणां सत्रं सोम्यानाम् । द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा स्वा० (ऋ० ६। १ । २४ । ५) इति प्रत्यृचं पञ्च-पञ्च एकैकं वा घृताक्तं बिल्वं जुहुयात् । ततः पूजा, स्विष्टकृत्, नवाहुतयः । ततो वास्तुमण्डलपश्चिमदेशे शिख्यादिदेवताभ्यः तत्तद्बलिः पायसबलिर्वा देयः (२) । शक्तौ सत्यां सर्वेभ्यः सुवर्णेन बलिदानम् । ब्रह्मणे तु गां पयस्विनीं दद्यादिति विशेषः । चरक्यादिभ्यो माषभक्तबलिरिति कमलाकरादयः । दिक्पालबलिः । क्षेत्रपालबलिः । सार्वभौतिकबलिः—

"बलिं गृह्णन्त्विमे देवा आदित्या वसवस्तथा ।
मरुतो ऽथाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ।
असुरा यातुधानाश्च पिशाचोरगराक्षसाः ।
डाकिन्यो यक्षवेताला योगिन्यः पूतनाः शिवाः ।
जृम्भकाः सिद्धगन्धर्वा देवा विद्याधरा नगाः ।
दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ।
जगतां शान्तिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः ।
मा विघ्नं मा च मे पापं मा सन्तु परिपन्थिनः ।
सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः" इति ।

---

(१) शिख्यादिहोमः पूजान्ते कार्यः—विश्वकर्मप्रकाशे (अ० श्लो० ५०।९९) शिख्यादिपूजनमुक्त्वा ततः कलशस्थापनं च (वि० प्र० ५।१००।१०९) उक्त्वा अनन्तरं "होमश्चि मेखले कार्यः" (वि० प्र० ५।११०-११२) इत्यादिना पूजनानन्तरमेव होमविधानात् ।

(२) वास्तुबलिर्होमान्ते कार्यः—"होमान्ते भक्ष्यभोज्यैस्तु वास्तुदेशे बलिं हरेत् । नमस्कारान्तयुक्तेन प्रणवाद्येन सर्वतः" (विश्वकर्म प्र० ५।११३) इति वचनात् । स च बलिः—"घृतान्नं शिखिने दद्यात्" (वि० क० ५।११६-१३३) इत्यादिना शिख्यादि देवेभ्यः पृथक् पृथग्द्रव्यैर्विहितेभ्यस्तत्तद्द्रव्येण देयः । "अथवा पायसं दद्यात् सर्वेभ्यश्च सदीपकम्" (वि० प्र० ५।१३४) इति वचनात्, "पायसं वाऽपि दातव्यं स्वनाम्ना सर्वतः क्रमात् । नमस्कारान्तयुक्तेन प्रणवाद्येन सर्वतः" इति मात्स्यात् "पायसान्नैर्बलिं हरेत्" इति शारदातिलकाच्च सर्वेभ्यः पायसद्रव्येण वा बलिर्देयः । आग्नेये तु बलिविशेषमभिधाय "यजेत सकलं वास्तु दध्यक्षतकुशैर्जलैः" (अग्निपु० इत्युक्तम्) । बलिश्च कुक्कुटाण्डप्रमाणं तु बलिरित्यभिधीयते" इति स्मृत्यर्थसारोक्तः कार्यः । सति सम्भवे—"सर्वेभ्योऽपि हिरण्यं च ब्रह्मणे गां पयस्विनीम्" (वि० प्र० ५ । १३३) इति वचनात् शिख्यादिभ्यश्चतुश्चत्वारिंशद्भ्यः सुवर्णं, ब्रह्मणे च गां तन्निष्क्रयं, वा दद्यात् ।

ततो नवपदे ब्रह्मस्थाने (१) पृथिवीं सुभूषितां स्त्रीरूपां ध्यात्वा "ॐ भूर्भुवः स्वः धरायै नमः" इति विश्वकर्मप्रकाशोक्तमन्त्रेण सम्पूज्य "ॐ सर्वदेवमयं वास्तु वास्तुदेवमयं परम्" इति पठेत् । ततो गृहं प्रागादितस्त्रिसूत्र्या रक्षोघ्नेन पवमानेन च सूक्तेन वेष्टयेत् (२) ॐ कृणुष्वपाजः प्र० प्रमृणीहि शत्रून् ५ इति रक्षोघ्नं सूक्तम् । ॐ पुनन्तु मा पितरः सोम्या० रयीणाम् इति अष्टकण्डिकात्मकं पवमानसूक्तम् । ततो दुग्धपूर्णया जलपूर्णया च स्तनकुम्भीभ्यां गृहं प्रागादितः अविच्छिन्नधाराद्वयेन सिञ्चेत् (३) सप्तधान्यबीजानि प्रक्षिपेच्च । (४) अथ यजमानः गृहस्य आग्नेये ईशानकोणात् अष्टमे आकाशपदे भूमिं जानुमात्रं खानयित्वा गोमयमृज्जलैरुपलेप्य शुक्लगन्धपुष्पादिभिरलङ्कृत्य सप्तधान्यादीनि दधि च तत्र प्रक्षिप्य जलपूर्णं गन्धादिभिरर्चितं नवं कुम्भं हस्ताभ्यामादाय जानुनी भूमौ निपात्य ॐ नमो वरुणाय इति जलेन गर्त्तं पूरयेत् । ततो मृन्निर्मितपेटिकायां सप्तधान्य-दधि-शैवाल-पुष्पाणि प्रक्षिप्य ब्रह्मस्थाने पूजितमृण्मयवास्तुप्रतिमामानीय तस्यां संस्थाप्य गन्धादिभिः सम्पूज्य--

पूजितोऽसि मया वास्तो होमाद्यैरर्चनैः शुभैः ।
प्रसीद पाहि विश्वेश देहि मे गृहजं सुखम् ॥ १ ॥

---

(१) 'ततः संपूजयेत्तस्मिन् सर्वलोकवसुन्धराम् । सुरूपां प्रमदारूपां दिव्याभरणभूषिताम् । ध्यात्वा तमर्चयेद्देवीं परितुष्टां स्मिताननाम्" इति वास्तुयागतत्त्वे रघुनन्दनोक्तेः । वास्तुमण्डलमध्ये तु ब्रह्मस्थाने प्रपूजयेत् । सुरूपां पृथिवीं दिव्यरूपाभरणसंयुताम्" (वि० प्र० ६ । ३४) इति वचनाच्च ब्रह्मस्थाने ब्रह्मपूजोत्तरं तस्मिन्नेव पदे तदुत्तरतो धरापूजनमाचरन्ति । केचित्तु अस्मिन्नेवावसर इति ।

(२) "वास्तूपशमनं कृत्वा ततः सूत्रेण वेष्टयेत् । रक्षोघ्नपवमानेन सूक्तेन भवनादिकम्" इति मात्स्यात् । कृणुष्वपाज इति पञ्चर्चं रक्षोघ्नसूक्तम् , पुनन्तु मा पितर इत्यादिकं नवर्चं पवमानसूक्तम् ।

(३) "बलिं च सम्यग्विधिवत्प्रयुज्य क्षीरेण धारां परितस्तु दद्यात्" इति मात्स्यात् । "वाचयित्वा ततः स्वस्ति कर्करीं परिगृह्य च । सूत्रमार्गेण तोयस्य धारां कुर्यात्प्रदक्षिणाम् । प्रक्षिपेत्तेन मार्गेण सर्वबीजानि चैव हि" (६ । ८७-८८) इति विश्वकर्मप्रकाशोक्तेश्च जलदुग्धोभयधाराकरणमत्र कर्तव्यम् ।

(४) "होमशेषं समाप्याथ यजमानो वास्तुमूर्तिं रौद्रकोणेऽधोमुखीं गर्ते प्रच्छादयेत्" इति आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टे (४ ।२) पूजितवास्तुप्रतिमाया गर्ते प्रच्छादनमीशानकोणेऽभिहितम्, "मृत्पेटिकां स्वर्णरत्नधान्यशैवालसंयुताम् । गृहमध्ये हस्तमात्रे गर्ते न्यासाय विन्यसेत्" इति नारदसंहितायां मृत्पेटिकाया गृहमध्ये गर्ते निधानमुक्तम् । शान्तिसारादिकारैस्तु उभयैकवाक्यतया वास्तुप्रतिमां मृत्पेटिकायां निधाय गर्ते तस्या निधानमुक्तम् । अथ च वास्तुभूमेरेकाशीतिपदानि कल्पयित्वा ईशानकोणादष्टमे आकाशपदे निधानमुक्तम्, तच्च परिशिष्टोक्तसंहितोभयविरुद्धमिति चेन्न । आकाशपदस्यैव रौद्रत्वस्वीकारात् । लिङ्गतोभद्रादिमण्डले इन्द्राग्न्योर्मध्यस्य रुद्रायतनत्वकथनात् ।

नमस्ते वास्तुपुरुष भूशय्याभिरत प्रभो ।
मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा ॥ २ ॥
(वि० प्र० ५।११६)

प्रार्थयामीत्यहं देवं शालाया अधिपस्तु यः ।
प्रायश्चित्तं प्रसङ्गेन गृहार्थं यन्मया कृतम् ॥ ३ ॥
मूलच्छेदं तृणच्छेदं कृमिकीटनिपातनम् ।
हननं जलजीवानां भूमौ शस्त्रेण घातनम् ॥ ४ ॥
अनृतं भाषितं यच्च किञ्चिद् वृक्षस्य पातनम् ।
एतत्सर्वं क्षमस्वैनो यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥ ५ ॥
गृहार्थं यत्कृतं पापमज्ञानेनाथ चेतसा ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव गृहशालां शुभां कुरु ॥ ६ ॥
सशैलसागरां पृथ्वीं यथा वहसि मूर्द्धनि ।
तथा मां वह कल्याणसम्पत्सन्ततिभिः सह ॥ ७ ॥ इति

ततः मृन्मयपिधानेन पेटिकामाच्छाद्य तस्मिन् गर्त्ते शनैर्निक्षिपेत् । ततः पूर्वखातमृदा पूरयेत् । गर्तोपरि भूमिं गोमयादिनोपलिप्य गन्धादिभिर्भूषयेत् । ततः प्रागादिभित्तीनामभिमर्शनम् । तत्र मन्त्राः क्रमेण—

ॐ श्रीश्च त्वा यशश्च पूर्वे सन्धौ गोपायेताम् १ ॐ यज्ञश्च त्वा दक्षिणा च दक्षिणे सन्धौ गोपायेताम् २ ॐ अन्नं च त्वा ब्राह्मणश्च पश्चिमे सन्धौ गोपायेताम् ३ ॐ ऊर्क् च त्वा सूनृता चोत्तरे सन्धौ गोपायेताम् ४ इति । अथ प्रागादिदिशासुपस्थानम् । तत्र मन्त्राः क्रमेण—ॐ केता च मा सुकेता च पुरस्ताद्गोपायेतामित्यग्निर्वै केताऽऽदित्यः सुकेता तौ प्रपद्ये ताभ्यान्नमोऽस्तु तौ मा पुरस्ताद्गोपायेतामिति १ ॐ गोपायमानं च मा रक्षमाणा च दक्षिणतो गोपायेतामित्यहर्वै गोपायमानꣳ रात्री रक्षमाणा ते प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु ते मा दक्षिणतो गोपायेताम् २ ॐ दीदिविश्च मा जागृविश्च पश्चाद् गोपायेतामित्यन्नं वै दीदिविः प्राणो जागृविस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पश्चाद् गोपयेताम् ३ ॐ अस्वप्नश्च माऽनवद्राणश्चोत्तरतो गोपायेतामिति चन्द्रमा वा अस्वप्नो वायुरनवद्राणस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मोत्तरतो गोपायेताम् ४ इति । (पार. गृ. ३।४।१०—१८) ततः पूर्णाहुतिं कृत्वा संस्रवप्राशनम्, पवित्राभ्यां मार्जनम्, पवित्रप्रतिपत्तिं पूर्णपात्रदानं च कृत्वा आचार्यादिभ्यो दक्षिणां (१) गां च दत्वा भूयसीं च दत्वा

---

(१) वास्तुयागान्ते दक्षिणोक्ता वास्तुयागतत्त्वे—"एवं निष्पाद्य विधिना वास्तुयागं सुरोत्तम । सुवर्णं गां च वस्त्रं च आचार्याय निवेदयेत्" इति । विश्वकर्मप्रकाशे च (६।२५६-२६२) "ततस्तु प्राङ्मुखो भूत्वा आचार्याय निवेदयेत् । दक्षिणां, ब्रह्मणे दद्याद्यथावित्तानुसारतः । उदङ्मुखाय च ततः क्षमस्वेति पुनः पुनः । गां सवत्सां स्वर्णयुतां तथा वासोयुगान्विताम् । यज्ञान्ते आप्लुतान्वस्त्रानाचार्याय निवेदयेत् । दैवज्ञं च ततस्तोष्य स्थपतीन् वैष्णवानपि । दक्षिणां च ततो दद्याद् घृते छायां विलोकयेत् । रक्षाबन्धं मन्त्रपाठं त्र्यायुषं च

ब्राह्मणभोजनं संकल्प्य (१) सपरिवारं यजमानमभिषिञ्चेत् ।

अथाभिषेकमन्त्राः विश्वकर्मप्रकाशे उक्ताः ते यथा—

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ये च वृद्धाः पुरातनाः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च शम्भुश्च साध्याश्च समरुद्गणाः ॥ १ ॥
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च भिषग्वरौ ।
अदितिर्देवमाता च स्वाहा सिद्धिः सरस्वती ॥ २ ॥
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः श्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा ।
दितिश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेवच ॥ ३ ॥
देवपत्न्यश्च याश्चोक्ता देवमातर एव च ।
सर्वास्त्वामभिषिञ्चन्तु शुभाश्चाप्सरसां गणाः ॥ ४ ॥
नक्षत्राणि मुहूर्ताश्च पक्षाहोरात्रसन्धयः ।
संवत्सरा दिनेशाश्च कलाकाष्ठालवक्षणाः ॥ ५ ॥
सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्यावयवाः शुभाः ।
वैमानिकाः सुरगणा मनवः सागरैः सह ॥ ६ ॥
सरितश्च महाभागा नागाः किंपुरुषास्तथा ।
वैखानसा महाभागा द्विजा वैहायसाश्च ये ॥ ७ ॥
सप्तर्षयः सदाराश्च ध्रुवस्थानानि यानि च ।
मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ॥ ८ ॥
भृगुः सनत्कुमारश्च सनकोऽथ सनन्दनः ।
सनातनश्च दक्षश्च जैगीषव्योऽथ गन्धरः ॥ ९ ॥
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितो जाबालिकश्यपौ ।
दुर्वासा दुर्विनीतश्च कविः कात्यायनस्तथा ॥ १० ॥
मार्कण्डेयो दीर्घतपाः शुनःशेपो विदूरथः ।
और्वः संवर्त्तकश्चैव च्यवनोऽत्रिः पराशरः ॥ ११ ॥
द्वैपायनो यवक्रीतो देवरातश्च सानुगः ।
प्रजापतिर्दितिश्चैव गावो विश्वस्य मातरः ॥ १२ ॥
पर्वतास्तरवः कल्पाः पुण्यान्यायतनानि च ।
वाहनानि च रत्नानि लोकाश्चापि चराचराः ॥ १३ ॥
अग्नयः पितरस्तारा जीमूताः खं दिशो जलम् ।
एते चान्ये च बहवः पुण्यसङ्कीर्त्तनाश्च ये ॥ १४ ॥
तोयैरेतैः पवित्रैश्च मन्त्रौषधिबलान्वितैः ।
शुभैस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वोत्पातनिबर्हणैः ॥ १५ ॥ इति

समाचरेत् । ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याच्छिष्टेभ्यश्च स्वशक्तितः । दीनान्धकृपणेभ्यश्च दद्याद्वित्तानुसारतः । संप्राप्नोति नरो लक्ष्मीं पुत्रपौत्रधनान्विताम्' इति ।

(१) "अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम् । गृहं न प्रविशेद्धीमान् विपदामाकरं हि तत्" इति वचनात् गृहे ब्राह्मणानां भोजनं कृत्वा गृहप्रवेशः कार्यः ।

ततस्तिलकाशीर्वादं रक्षाबन्धनं त्र्यायुषं घृते छायादर्शनं च कृत्वा देवान् विसृज्य यस्य स्मृत्येत्यादि पठेत् ॥

अथ प्रवेशसमये गणपतिं सम्पूज्य ब्राह्मणैः कृतस्वस्त्ययनः मङ्गलतुर्यशान्तिपाठेन सजलकलशः ब्राह्मणपुरस्सरं पुत्रपौत्रकलत्रादियुतः सतोरणां सध्वजपताकं (१) गृहमागत्य द्वारसमीपे उपविश्य "अस्मिन्पुण्याहे श्रौतस्मार्त्तकर्मकरणार्थं संस्कारानेकभोगैश्वर्यादि विविधमङ्गलोदयसिद्धये एतन्नवीनगृहप्रवेशमहं क० । द्वारशाखापूजनम् । तत्र तन्मन्त्रौ-स्थापितेयं मया शाखा शुभदा ऋद्धिदाऽस्तु मे । सुपूजिता-मया शाखा सर्वदा सुस्थिराऽस्तु मे १ यो धारयति सर्वेशो जगन्ति स्थावराणि च । धाता दक्षिणशाखायां पूजितो वरदोऽस्तु मे २ ॐ धात्रे नमः । यः समुत्पाद्य विश्वेशो भुवनानि चतुर्दश । विधाता वामशाखायां स्थिरो भवति पूजितः ॐ विधात्रे नमः ।

ऊर्ध्वम्—गजवक्त्र गणाध्यक्ष हे हेरम्बाम्बिकात्मज । विघ्नान् निवारयाशु-त्वमूर्ध्वोदुम्बरसंस्थितः । ॐ गणपतये नमः । अधो देहल्याम्—यस्याः प्रसादात् सुखिनो देवाः सेन्द्राः सहोरगाः । सा वै श्रीर्देहलीसंस्था पूजिता ऋद्धिदाऽस्तु मे । देहल्यै नमः । अथ द्वाराभिमुखो भूत्वा "धर्मार्थकामसिद्ध्यर्थं पुत्रपौत्राभिवृद्धये । त्वामहं प्रविशाम्यद्य भगो मन्दिर ते नमः ॥ १ ॥ यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी । तावत्त्वं मम वंशस्य मङ्गलाभ्युदयं कुरु ॥ २ ॥ इत्युक्त्वा प्रविशेत् । तत्र मन्त्रः—(पार०गृ० ३।४) ॐ धर्मस्थूणाराज श्रीस्तुपमहोरात्रे द्वारफलके इन्द्रस्य गृहा वसुमन्तो वरूथिनस्तानहं प्रपद्ये सह प्रजया पशुभिः सह । यन्मे किञ्चिदस्त्युपहूतः सर्वगणः सखायः साधु संवृतः । तां त्वा शालेऽरिष्टवीरा-गृहान्नः सन्तु सर्वतः" इति देहलीमस्पृशन् दक्षिणपादपुरःसरमन्तः प्रविश्य प्रधानगृहमध्ये आग्नेय्यां दिशि तं कलशं संस्थाप्य अस्मिन्नूतनगृहे पुण्याहं कल्याणं श्रीरस्तु इति वाचयित्वा लक्ष्मीं सम्पूजयेत् । गृहस्य धारकं स्तंभं पूजयेत् —धारणार्थं महाभाग निर्मितो विश्वकर्मणा । स्थापितः शुभदो नित्यं गृहभारक्षमो भव ॥ १ ॥ दीपस्थाने दीपं प्रज्वाल्य "तिमिरस्य तिरस्कर्त्ता ज्योतीरूपः सुविश्रुतः । विघ्नान्धकारनाशाय पूजयामि सुसिद्धिदम् । ॐ दीपाय नमः ।

महानस इति ख्यातो देवयज्ञादिसिद्धिकृत् । अन्नादिसाधनं स्थानं धर्ममूलं शुभप्रदम् ॥ चुल्ह्यां धर्माय नमः । सम्मार्जनस्थाने—पूतना शुभदा ज्येष्ठा

---

(१) गृहप्रवेशाङ्गत्वेन पताकादिरोपणप्रकारो विश्वकर्मप्रकाशे (१०।९८-१०१) विहितः । "वितानैस्तोरणैः पुष्पैः पताकाभिर्विशेषतः । अलङ्कृत्य नवं गेहं देहलीं पूजयेत्ततः । दिक्पालांश्च तथा क्षेत्रपालं ग्रामाधिदैवतान् । प्रणम्य विधिवत्पूज्य द्वारमार्गे विशेद् गृहम् । पूजयेद्गणनाथं च मातृकाश्च विशेषतः । वसोर्धारां पातयित्वा ग्रहांश्चैव तु पूजयेत् । वास्तुनाथं च संपूज्य ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः । गोदानं भूमिदानं च कुर्याच्चैव यथाविधि" इति । गृहेऽपि पताकाः कुण्डसिद्ध्युक्तवर्णाचिता दश कार्या इत्युक्तं विश्वकर्मप्रकाशे (१३।१०-१०९) यद् द्वारमार्गे पूर्वे तु ध्वजः षोडशहस्तकः । स्तंभोऽस्य विधिवत् स्थाप्यः सघण्टाकिङ्किणीयुतः" इति ।

सदा सन्धानसंस्थिता । स्थानं चोत्करसम्पत्तेरस्तु मे सर्वसिद्धिदम् । ज्येष्ठायै नमः । जलस्थाने—शङ्खस्फटिकवर्णाभश्वेतहाराम्बरावृत । पाशहस्त महाबाहो दयां कुरु दयानिधे । वरुणाय नमः । पेषण्याम्—सौभाग्यं सुभगे देहि पेषणी संस्थिता सदा । पिष्टनिष्पादनार्थं त्वं पूजिता शुभदाऽस्तु मे । ॐ सुभगायै नमः ।

उलूखले—व्रीहीणां कण्डनं यच्च तुषाणाश्च विमोचनम् ।
त्वदधीनमतः पूजां करोमि तव सिद्धये ॥ रौद्रपीठये नमः ।
शय्यायाम्—कामः कामप्रदो मेऽस्तु शयनीये सुपूजित ।
पूजां गृहाण सुमुख धनधान्यसमृद्धये ॥ ॐ कामाय नमः ।
गृहमध्ये—मध्ये सुपूजिता देवाः सन्तु मे सर्वसिद्धिदाः ।
नश्यन्तु सर्वविघ्नानि देवानां पूजनादिह ॥ सर्वदेवेभ्यो नमः ।
पशुस्थाने—सर्वाधिपो महादेव ईशानः शुक्लशङ्करः ।
पशूनां पतिरस्माकं पूजितः शुभदः सदा ॥ ॐ पशुपतये नमः ।

एतदनन्तरं वा पूर्णाहुत्यादि विजसर्जनान्तं पूर्वोक्तं कुर्यात् ।

इति श्रीविद्याधरशर्मसंगृहीतो गृहप्रवेशः ॥ शुभम् ॥

अथ परिशिष्टम् ।

अथ ग्रन्थादौ वास्तुपुरुषस्वरुपकथनं परमावश्यकम् तच्चमया न लिखितम् अतोऽत्र वास्तुपुरुषस्वरुपं प्रदर्श्यते ।

तथाच बृहस्पतिः

पुराकृतयुगे ह्यासीन्महद्भूतं समुत्थितम् ।
व्याप्यमानं शरीरेण सकलं भुवनं ततः ॥
तद्दृष्ट्वा विस्मयं देवा गताः सेन्द्रा भयावृताः ।
ततस्तैः क्रोधसन्तप्तैर्गृहीत्वा तमथासुरम् ॥
विनिक्षिप्तमधोवक्त्रं स्थितास्तत्रैव ते सुराः ।
तमेव वास्तुपुरुषं ब्रह्मा समभिकल्पितम् ॥

पूर्वं ध्रुवादीनां नामानि लिखितानि ध्रुवश्च धान्यञ्चेत्यादिना तत्र प्रस्तार प्रकारो रत्नमालायाम् ।

स्थापयेल्लघुमधोगुरोः परंस्याद्यथोपरि तथैव पूरयेत् ।
पश्चिमं च गुरुभिः पुनः पुनः सर्वलघ्ववधिरित्ययं विधिः ॥

इत्यादिना ध्रुवादिगृहाणांप्रस्तारवशेन षोड़शप्रकाराः सिद्धयन्ति यथोक्तम् रत्नमालायाम्—

प्रदक्षिणं सद्ममुखादलिन्दं विद्याल्लघुस्थानसमाश्रितञ्च ।
गृहस्य पूर्वादिगतेष्वलिन्देष्वेवं भवेयुर्दशषट्कभेदा इति ॥

तद्यथा—

पू.द.प.उ.=दिशा
ऽ ऽ ऽ ऽ=ध्रुवम्
। ऽ ऽ ऽ=धान्यम्
ऽ । ऽ ऽ=जयम्
। । ऽ ऽ=नन्दम्
ऽ ऽ । ऽ=खरम्
। ऽ । ऽ=कान्तम्
ऽ । । ऽ=मनोरमम्
। । । ऽ=सुमुखम्
ऽ ऽ ऽ ।=दुर्मुखम्
। ऽ ऽ ।=उग्रम्
ऽ । ऽ ।=रिपुदम्
। । ऽ ।=वित्तदम्
ऽ ऽ । ।=नाशम्
। ऽ । ।=आक्रान्तम्
ऽ । । ।=विपुलम्
। । । ।=विजयाख्यम्

अत्रेदमवधेयम्, प्रथमभेदे ध्रुवाख्यमूर्ध्वमुखं गृहम्, द्वितीयेपूर्वद्वारं धान्याख्यं, तृतीये दक्षिणद्वारं जयाख्यम् । चतुर्थे प्राग्दक्षिणद्वारं नन्दाख्यम् । पञ्चमे पश्चिमद्वारं खराभिधम् षष्ठभेदे पूर्व पश्चिमद्वारं कान्ताख्यम् । सप्तमे दक्षिणपश्चिमद्वारं मनोरमम् । अष्टमे पूर्व दक्षिण पश्चिमद्वारं सुमुखम् । नवमे सौम्यद्वारं दुर्मुखाख्यम् । दशमे पूर्वोत्तरद्वारमुग्राख्यम् । एकादशे याम्यसौम्यद्वारं रिपुदम् । द्वादशे पूर्व दक्षिणोत्तरद्वारं धनदाख्यम् । त्रयोदशे पश्चिमोत्तरद्वारं नाशाख्यम् । चतुर्दशे पूर्वपश्चिमोत्तरद्वारमाक्रन्दम् । पञ्चदशे याम्य पश्चिम सौम्यद्वारम् विपुलाख्यम् षोड़शभेदे चतुर्दिक्षुद्वारं विजयाख्यमिति ।

पिण्डानयने इष्ट नक्षत्र कल्पनायां ज्योतिःसागरे—

आर्द्रादितिर्गुरुश्चैव सर्पश्चैवपिताभगम् । शतभंपूर्वयुग्मं च नवेष्टा गृहतारकाः । एवमेव वास्तुप्रदीपे—त्रिभिस्त्रिभिर्वेश्मनिकृत्तिकातः उद्वेगपुत्राप्ति धनातिशोकः । शत्रोर्भयं राजभयश्चमृत्युः सुखंप्रवासश्चनवप्रभेदा इति ।

विष्णुं व्यकायेत्यस्योपपत्तिः—

अत्र प्रथमालापघटितमेव कल्प्यते पिण्डमानं=८ या + आ, इदं पिण्डमानं पुनरष्टगुणितं सप्तविंशतिभक्तं तथा स्वरूपान्तरादिकरणेन यातं

$$\frac{१० \text{ या} + ८ \text{ आ}}{२७} = \frac{१० \text{ या} + ८ \text{ आ} + ८ - ८}{२७} = \frac{१० \text{ या} + ८(\text{आ} - १) + ८}{२७}$$

$$= \frac{१० \text{ या} + ८ \text{ व्येकाय} + ८}{२७} = \frac{१० \text{ या} + २७ \text{ व्येकाय} - १९ \text{ व्येकाय} + ८}{२७}$$

$$= \frac{१० \text{ या} - १९ \text{ व्येकाय} + ८}{२७}$$ =अत्र लब्धिमानं कालकं शेषं नक्षत्रसंख्यासमं, तथा हरलब्धिघातः शेषयुतो भाज्यसमो भवतीति जातंतुल्यं पक्षद्वयम् १० या—१९ व्येकाय + ८=२७ का + न, ततः समशोधनादिना जातं कालकमानम्

$$= \frac{१० \text{ या} - १९ \text{ व्येकाय} + ८ - \text{न}}{२७} = \frac{१० \text{ या} - (१९ \text{ व्येकाय} + \text{न}) + ८}{२७}$$

अत्र यदि १९ व्येकाय + न=शे कल्प्यते तदा जातं कालकमानम्= $\frac{१० \text{ या} - \text{शे} + ८}{२७}$

अत्र रूपसमे धनक्षेपे १०, २७ दृढ़ भाज्य हाराभ्यां जातेगुणलब्धी ८, ० तथा "यदागतौ लब्धिगुणावित्यादिना ऋणक्षेपे गुणः" १६ तथात्र "अभीप्सितक्षेप विशुद्धिनिघ्ने" इत्यादिना यदि—शे+८ इदं मानं धनं भवेत्तदा पूर्वागतेनानेन ८ गुणेन गुणितं २७ तष्टमभीष्टो गुण एव "ते भाज्यतद्भाजक वर्णमाने" इत्यादिना यावत्तावन्मानं भवति । तथात्र यदि—शे+८ मानं ऋणं तदा द्वितीयेनानेन १६ गुणेन गुणितं २७ तष्टं शेषं यावन्मानं भविष्यति । अत्राचार्येण शे इत्यस्य मानं एकद्वित्र्यादि संख्यातुल्यं प्रकल्प्य अभीष्टानि यावत्तावन्मानानि साधितानि तद्यथा यदि शे=१ तदा—शे+८=—१+८=७ इदं धनमतः इयंसंख्या पूर्वगुणेन ८ गुणिता सप्तविंशतिभक्ता जातं =२ शेष मिदमेव यावत्ता-वन्मानम् एवं यदि शे=२ तदा—शे+८=—२+८=६ धनम् तदात्रापि कुट्टकेन=२१ इदं द्विशेषे यावन्मानम् एवं यदा शे=८ | तदा—शे+८=० तदा यावन्मानं शून्यसमं वा "इष्टाहत स्वस्वहरेणे" त्यादिना सप्तविंशतिसमं भविष्यति । अथ यदि शे=६ तदा—शे+८=—१ इदं ऋणात्मकम् । अत इयं संख्या द्वितीयेन गुणेना १६ नेन गुणिता सप्तविंशति भक्ता लब्धं यावन्मानम् =१६ एवं मानानि आगच्छन्ति । तत एभियावत्तावन्मानैः पिण्डमानेऽस्मिन् ८ या+आ । उत्थापनेन पिण्डमानमुपपद्यते ।

अथ यदि पिण्डे नक्षत्रायतक्षणयोः सप्तविंशति भाग २७, ८ तुल्ययोर्घातो निक्षिप्यते तदा तक्षणाभ्यां भक्ते क्षेपस्य निःशेषत्वात् त एव नक्षत्रायमाने आग-मिष्यतस्तेन सोऽपि पिण्डो भवितुमर्हतीत्युपपद्यते श्रीसुधाकर द्विवेदि कृतं "इष्टायनन्देन्दुहतिरित्यादि पद्यम् ।

"इष्टभात्यष्टिघाते य" इत्यस्योपपत्तिः ।

अत्र पिण्डमानं प्रथमं तथा कल्प्यं येन प्रथमालापो घटते इत्येतदर्थं या संख्याऽष्टभिर्गुणिता रूपोना सप्तविंशतिहृता निःशेषा भवति तादृशी प्रथमा संख्या कुट्टकेन १७ अतः कल्पितं पिण्डमानं २७ या+१७ न इदमिष्टगुणं २७ भक्तं शेषमिष्टनक्षत्रमेव तेन प्रथमालापः स्वयं घटते । पुनरिदमष्टभिस्तष्टं प्रथम-स्थाने ३ या द्वितीयस्थाने सप्तदशेष्टनक्षत्रघातोत्पन्न आय एव तज्ज्ञापकः यदि आ कल्प्यते तथेष्टायश्च इआ कल्प्यते ततो जातं शेषमानं ३ या+आ इदमष्टहृतम् । अत्र कल्प्यते लब्धिः=का, तथा हरलब्धिघातः इष्टायरूप शेष युतो भाज्यसम इत्यनेन जातौ पक्षौ ३ या+आ=८ का +इआ समशोधनादिना यावन्मानम्=

$$\frac{८\text{का}+\text{इआ}-\text{आ}}{३}$$

अत्र यदि इआ—आ इदं ऋणात्मकं तथा का=नी+१ प्रकल्प्य जातं यावतावन्मानस्य रूपान्तरमिदम्=

$$\frac{८(\text{नी}+१)+\text{इआ}-\text{आ}}{३}$$

$$=\frac{८\text{नी}+८+\text{इआ}-\text{आ}}{३}$$

उभयत्र यदि भाज्यमानं त्रिभिर्निःशेषं भवति तदैव यावत्तावन्मानमभिन्नं भविष्यतीतिस्पष्टम् अतो कालकमानं नीलकमानं वा

तथा कल्प्यं यथा यावत्तावन्मानमभिन्नं स्यात् ततो यावत्तावन्मानेन पूर्वकल्पित-पिण्ड २७ या + १७ न इदं समुत्थाप्य स्फुटा पिण्डमिति बोध्येति सर्व-मुपपन्नम् ।

गजैस्तष्टमिष्टोङ्गशोध्यमिति ।

कुट्टकेन ज्ञातं या संख्या सप्तविंशतिगुणाऽष्टभक्ता शेषं रूपमुत्पादयति सा त्रिमिता ततः कल्पितं पिण्डमानम् ८१ या + १७ न येन प्रथमालापस्य संगति-र्भवति । पुनः पिण्डमानमिदं ८१ या + १७ न अष्टभिर्भक्तं जातं या + न अस्य द्वितीयखण्डे 'न' इत्यत्र पुनर्वसुभिर्भक्ते शेषं = शे तथा कृतेजातं या + शे इदमप्यष्ट-भक्तमत्रलब्धिः = का शेषमिष्टायसममिति । अत्रापि हरलब्धिघातस्य इष्टाय-रूपशेषयुतस्य भाज्यराशेस्तुल्यत्वात् जातौ तुल्यौ पक्षौ या + शे = ८का + इआ समशोधनादिना या = ८ का + इआ − शे अत्रापि यदि इआ − शे इदं ऋणात्मकं तदा नी + १ = का प्रकल्प्यजातं यावन्मानम् = ८(नी + १) + इआ − शे = ८ नी + ८ + इआ − शे, यावत्तावन्मानद्वये कालकनीलकयोर्मानं शून्यसमं प्रकल्प्य जातं यावत्तावन्मानम् = इआ − शे वा, ८ + इआ − शे आभ्यां यावत्तावन्मानमिदं ८१ या + १७ न समुत्थाप्य व्यक्तं पिण्डमानं ज्ञेयम् । नक्षत्रायतत्क्षणयोरनयो २७, ८ घातस्य २१६ रूपस्य योजनेनापि विकाराभावात् पिण्डमानमागच्छती-त्युपपन्नं सर्वम् ।

नागघ्नेष्टायात्स्यतेदिष्टमृक्षमिति ।

प्रथमं या संख्याऽष्टगुणिता सप्तविंशतिहृता २६ शेषमुत्पादयति तादृशी प्रथमा संख्या कुट्टकेन ज्ञाता ६४ अतः कल्पितं पिण्डमानम् = ६४ या + इआ इदं वसुभिर्भक्तं शेषमिष्टायसमो भवतीति प्रथमालापः स्वयं घटते । पुनरिदं पिण्डमानं नागैर्गुणितं २७ भक्तं जातं शेषं—या + ८ इआ इदमपि सप्तविंशति-भक्तं लब्धं कालकं शेषमिष्टनक्षत्रतुल्यं तथा शेष युतस्य हरलब्धिघातस्य भाज्यराशेस्तुल्यत्वात् जातौ पक्षौ −या + ८इआ = २७का + इन अत्र समशोधनादिना लब्धं यावत्तावन्मानं = − २७ का + ८ इआ − इन यद्यत्र ८ इआ − इन = ऋणात्मकं तदा नी = १ + का प्रकल्प्य यावत्तावन्मानस्य स्वरूपान्तरमिदम् = —२७(नी—१) + ८इआ—इन = —२७नी + २७ + इआ —इन । उभयत्र क्रमेण कालकमानं नीलकमानं च शून्येनोत्थाप्य जातं या = ८ इआ—इन वा इआ—इन + २७ ततो यावत्तावन्मानेन पिण्डमानेऽस्मिन्—६४ या + इआ उत्थापनेन पिण्डमानं सुबोधं भवति । अत्र पिण्डे नक्षत्राय-तत्क्षणयोर्घातस्य २७ × ८ = २१६ निक्षेपणेनापि विकाराभावात् पिण्डमानं भवती-त्युपपन्नं सर्वम् ।

व्यकेष्टर्क्षहताः द्विवाण शशिनइत्यादेः ।

कल्प्यते पिण्डमानम् = या, इदं नागैर्गुणितं २७ भक्तं लब्धं कालकं प्रकल्प्य शेषं नक्षत्रमानं तथा हरलब्धिघातः शेषयुतो भाज्यराशि तुल्यो भवतीति

नियमात् जातौ तुल्यौ पक्षौ ८ या = २७ का + इन अतः या = $\frac{\text{२७ का + इन}}{\text{८}}$
पुनः पिण्डमानमिदं या वसुभिर्भक्तं लब्धं नीलकं शेषमिष्टं प्रकल्प्य पुनर्जातं यावत्तावन्मानम् = $\frac{\text{८ नी + इआ}}{\text{१}}$ अत्र यावत्तावन्माने तुल्ये अतः $\frac{\text{२७ का + इन}}{\text{८}}$ = ८ नी + इआ समशोधनादिना जातं कालकमानम् = $\frac{\text{६४ नी + ८ इआ — इन}}{\text{२७}}$ ततः ६४, २७ दृढ़ भाज्यहाराभ्यां रूपक्षेपे जातौ लब्धिगुणौ १६, ८ अत्र "ते भाज्यतद्भाजक वर्णमाने" इत्यादिना गुण एव नीलकनानं तेन अभीप्सितक्षेप विशुद्धिनिघ्ने "इत्यादिना रूपक्षेपीयो गुणोऽय ८ मिष्ट क्षेपेणानेन ८ इआ —इन गुणिते । जातः ६४ इआ—८ इन स्वहारेणानेन २७ भक्ते जातः १० इआ—८ इन ततः इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्त" इत्यादिना कल्पितेष्टपीतक गुणित तद्धारेण सहितो जातं २७ पी × १० इआ — ८ इन = नीलकमानम् नीलकमानेन यावत्तावन्माने उत्थाप्यजातं यावत्तावन्मानम् = २१६पी + ८१ इआ —६४ इन, अत्र कल्प्यते पीतकमानं = लो + (न—१) तत उत्थापनेन जातं यावत्तावन्मानम् = २१६ लो + २१६ इन— २१६ + ८१ इआ — ६४ इन

= २१६ लो + १५२ इन—२१६ + ८१ इआ

= २१६ लो + १५२ इन—१५२—८१ + १७ + ८१ इआ

= २१६ लो + १५२ (इन—१) + ८१ (इआ—१) + १७

अत्रान्तिमखण्डत्रये यदि संख्या २१६ तोऽधिकाभवेत्तदा लोहितकस्य तथा ऋणमानं कल्प्यं यथा तन्मान गुणित भूपाश्विभी रहिता सा खण्डत्रयभवा संख्या धनात्मिका भूपाश्विभ्योऽल्पा च स्यात् । अर्थात् सा संख्या २१६ भिस्तष्टाऽवशेषं तदेवपिण्डमानं ज्ञेयं तस्मिन्नेकादि गुणित भूपाश्विसमां संख्यां प्रक्षिप्यानेकधा पिण्डमानं साध्यमित्युपपन्नम् अनयैवोपपत्त्या एकोनिनेष्टघ्नेत्यादि रामदैवज्ञकृतं पिण्डानयनमुपपद्यते ।

टेड़ूराहीति प्रसिद्धे हरपुरनगरे मण्डले सारनाख्ये
विप्रोऽभूद्देविदत्तःप्रथितगुणगणो यो द्विवेदीति वित्तः ।
तस्यासन् वह्निसंख्या निजतनुमहसा वह्निवद्भासमानाः
पुत्रास्तेष्वग्रजोऽयं भवति बुधवरः श्रीगरीव द्विवेदी ॥ १ ॥
सूनुना तस्य श्रीरामनिहोरेण सतांमुदे ।
वास्तुमाला सुवृहती संगृहीता प्रयत्नतः ॥ २ ॥
चन्द्रवाणवसुचन्द्र सम्मिते शालिवाहन शकेऽथ फाल्गुने ।
कृष्णापक्ष शिवरात्रिके वृहद्वास्तुमालिक कृतिः समापिता ॥ ३ ॥

॥ शुभम्भूयात् ॥

शुद्धि पत्रम् ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
२	२५	गणेय	गणये
५	८	भिश्र	मिश्र
८	२१	करी	करीं
१२	१६	थोगदम्	थादगम्
१५	६	र्कतुराधुंध	कर्त्तुरायुर्ध
३०	५	यमराक्षयो	यमराक्षसयो
३२	२६	शल्य	शल्यं
३६	१२	प्रथमे	प्रथमं
३६	१२	स्फुटम्	स्फुटाम्
३७	२	कृतेक्षिति	कृताक्षिति
४१	२४	उनाघ्ने	नागघ्ने
४५	२	भ्रमं	भ्रमो
५०	६	पिण्ड	पिण्डं
६२	१०	वज्रावपि	वज्राअपि
६७	१६	भङ्ग	भङ्गः
७४	१६	समन्विता	समन्विताः
७४	१८	वसते	वसतिः
७६	४	संयुतं	संयुक्तं
८५	२६	देर्ध्येण	दैर्ध्येण
८६	१५	धिष्णय	धिष्णये
६३	७	वक्क	वक्त्रे
१००	१५	श्रीग्न	अग्नि
१०२	६	दक्षिणे	दक्षिणे
१०३	१४	भागत्रय	भागत्रयं
१०८	१	ताह	आह
१३३	१३	सूर्नोनाशः	सूनोर्नाशः
१३६	६	प्राजापात्यं	प्राजापत्यं
१३६	१२	पालविता	पालीवता
१४४	२	वल्लाकि	वल्लीक
१४८	२७	काष्ठक	कोष्ठक
१५१	१५	विमानन्द	विमाननन्द
१५६	३	ब्राह्म	ब्राह्मे
१५७	७	मार्गशीर्ष	मार्गशीर्षे
१६५	५	असिद्धि	सिद्धिः ।

पृष्ठ १३६ में श्लोक १२६ के बाद श्लोक १३३ तक श्लोकाङ्क में भूल है

सूचना

अर्थ धर्म काम और मोक्ष इन चारो फलों का मूल आरोग्यता है अतएव इसका यत्न मनुष्य मात्र को करना चाहिये जिससे किसी प्रकार रोग उपस्थित न हो यदि कदाचित् हो भी जाय तो शीघ्रही आरोग्यता के निमित्त चाहिये कि किसी उत्तम चिकित्सक द्वारा आयुर्वेदीय औषधियों का सेवन करे। हमारे औषधालय में शास्त्रोक्त विधि से तैयार की हुई सभी औषधियां मिलती हैं। जैसे धातुभस्म, अभ्रकभस्म, चन्द्रोदयादि रस, लवङ्गादि चूर्ण, चन्द्रप्रभा वटी, चन्दनादि एवं लाक्षादि तैल, द्राक्षासव, अशोकारिष्ट महा-ज्वरांकुश रस आनन्दभैरव रस वगैरह, यहां पर विस्तार के भय से संज्ञा मात्र दिया हूं विशेष बातों का ज्ञान सूचीपत्र से होगा।

पता—वैद्यराज—

रामनन्दन द्विवेदी,

पो० मु० बरौली (सारन)

दैवज्ञ समिति काशी।

सर्व साधारण को विदित हो कि इस परम पवित्र काशी पुरी में उक्त नाम की समिति बहुत दिनों से सर्व साधारण के ज्यौतिष सम्बन्धि यावत्कार्यों को करती आरही है। आज तक यह समिति अपने जन्मदाता काशी हिन्दूविश्वविद्यालय के प्रधान ज्यौतिषशास्त्राध्यापक ज्यौ० पं० श्रीरामयत्न ओझाजी के संरक्षण में पालित हुई हैं। परन्तु अब कार्य विशेष बढ़ जाने और पाठन इत्यादि से अवकाश कम मिलने के कारण इसकी वृद्धि की आवश्यकता समझ कर निम्नलिखित सुयोग्य विद्वानों को उक्त पं० जी ने सदस्य नियुक्त किया है। आजकल यह समिति बड़ी सावधानी से अपने कार्य कलाप का परिचय दे रही है।

दैवज्ञ समिति के सदस्य।

(१) ज्यौ० आ० पं० श्रीहृषीकेशोपाध्याय प्रो० सं० का० काशी
(२) ज्यौ० आ० पं० श्रीरामयत्न ओझा
(३) ज्यौ० आ० पं० श्रीरघुनाथ त्रिपाठी
(४) ज्यौ० आ० पं० श्रीचन्द्रशेखर झा
(५) ज्यौ० आ० पं० श्रीरामानन्द मिश्र
(६) ज्यौ० आ० पं० श्रीरामव्यास पाण्डेय

मन्त्री—
रामनिहोर द्विवेदी
मारवाड़ी संस्कृत कालेज,
काशी।